हिन्दी-समिति-ग्रन्थमाला—६८

गुजराती साहित्य का इतिहास

लेखक
श्री जयन्तकृष्ण हरिकृष्ण दवे
एम० ए०, एल-एल० बी०, एडवोकेट

हिन्दी समिति, सूचना विभाग
उत्तर प्रदेश, लखनऊ

प्रथम संस्करण
१९६३

मूल्य
६.५० रुपये

मुद्रक
नरेन्द्र भार्गव,
भार्गव भूषण प्रेस, गायघाट, वाराणसी

प्रकाशकीय

देश की एकता के लिए जहाँ इस बात की नितान्त आवश्यकता है कि उत्तर से दक्षिण तथा पूरब से पश्चिम तक सम्पूर्ण भारत में, कम से कम, राष्ट्रीय कार्यों तथा अन्तःप्रान्तीय व्यवहार के लिए हिन्दी का ही प्रयोग हो वहाँ यह भी उचित और वांछनीय है कि हिन्दी भाषा भाषी क्षेत्रों के निवासी भी एक या दो अन्य भाषाओं एवं उनके साहित्य की थोड़ी-बहुत जानकारी प्राप्त करें। इस लक्ष्य की सिद्धि में अधिक योगदान करने के उद्देश्य से हिन्दी समिति ने बंगला, मराठी, तमिल आदि भाषाओं के साहित्य का संक्षिप्त इतिहास हिन्दी में प्रकाशित करने की योजना बनायी थी। तदनुसार अभी तक मलयालम्, बंगला और उर्दू साहित्य के इतिहास प्रकाशित किये जा चुके हैं तथा अन्य भाषाओं के भी लिखाये जा रहे हैं।

प्रस्तुत पुस्तक का प्रकाशन भी समिति की उक्त योजना का ही अंग है। इसके लेखक संस्कृत शिक्षा-परिषद् के मानद सभासद, भारतीय विद्या भवन के मानद नियामक एवं गुजराती भाषा के ममज्ञ विद्वान् हैं। उन्होंने बड़े परिश्रम से इसकी रचना की है और इसे यथेष्ट सरल और सुबोध बनाने का प्रयत्न किया है। आशा है हिन्दी के पाठकों के हृदय में गुजराती साहित्य के प्रति रुचि उत्पन्न करने और गुजराती भाषा भाषियों से अधिक निकट का सम्बन्ध स्थापित कराने में भी लेखक की यह कृति यथेष्ट सहायक होगी।

ठाकुर प्रसाद सिंह
सचिव, हिन्दी-समिति

विषय-सूची

भाग—१

भाग—२

भाग १

मध्यकालीन
गुजराती साहित्य का इतिहास

अध्याय १

गुजराती और उसका मूल

न्धा के दोनों तटों के क्षेत्र के लिए भी प्रयुक्त होता था, जिसकी राजधानी माहिष्मती थी।

इस सारे प्रदेश की संज्ञा गुजरात होने के पूर्व केवल भिन्नमाल क्षेत्र गुर्जरत्रा नाम से प्रसिद्ध था। ह्वेनसांग ने (६४१ ई०) इस नाम का उल्लेख किया है। सन् ८०८ ई० के मध्य में भड़ौंच के चारों ओर एक छोटा-सा गुर्जर राज्य था। प्रतिहार भोज प्रथम (८८८ से ८६२ ई० तक) के शिला लेखों के अनुसार भिन्नमाल के चारों ओर का क्षेत्र गुर्जर भूमि नाम से विख्यात था तथा लगभग ७०० ई० में आनर्त इस गुर्जरत्रा अथवा गुर्जरदेश अथवा गुर्जर मण्डल का एक भाग था। अल्बरूनी (ईसा की १० वीं शताब्दी) के काल में पश्चिमी राजस्थान का भाग भी गुजरात में सम्मिलित था। कुछ समय बाद गुजरात की सीमा दक्षिण में नर्मदा तक पहुँच गयी, किन्तु राजस्थान वाला भाग इससे निकल गया। गुजरात की वर्तमान राजनीतिक सीमाओं द्वारा आवेष्टित क्षेत्र का आधुनिक नाम, गुजरात, लगभग १४०० ई० में पड़ा और इसमें कच्छ तथा सौराष्ट्र भी सम्मिलित हो गये।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, ५५० ई० में आधुनिक मारवाड़ ही गुर्जर क्षेत्र था, जिसकी राजधानी भिन्नमाल अथवा श्रीमाल थी। यहाँ के राजा गुर्जर कहलाते थे, जो अपनी वंशावली का आरम्भ हरिश्चन्द्र नामक ब्राह्मण तथा श्रीराम के भाई लक्ष्मण से मानते थे (मिहिरभोज की ग्वालियर-प्रशस्ति)। परंतु कुछ विद्वानों की मान्यता है कि गुर्जर एक विदेशी जाति—सम्भवतः शक—थी, जो भारत में ईसा की ५वीं शताब्दी में आयी। १०वीं शताब्दी में ये गुर्जर भिन्नमाल से चलकर उत्तर गुजरात में पहुँचे। इस समय वे जहाँ जाकर बसे, वह क्षेत्र गुजरात नाम से प्रसिद्ध हुआ। गुजराती इसी क्षेत्र की भाषा है।

यद्यपि 'गुजरात' शब्द का सम्बन्ध गुर्जरों से है, तथापि इसकी व्युत्पत्ति के विषय में विद्वानों का मतभेद है और इसके गुर्जर+त्रा, गुर्जर+राष्ट्र, गुर्जर+राष्ट्र आदि अनेक आदि रूप बताये जाते हैं। प्राचीन साहित्य में गुर्जरत्रा, गुर्जर देश तथा गुर्जर मंडल शब्दों का प्रयोग हुआ है, किन्तु इनमें से किसी भी शब्द के आधार पर गुजरात शब्द की संतोषजनक व्युत्पत्ति नहीं की जा सकती। श्री एन० बी० दिवेटिया ने अपने ग्रंथ 'गुजराती भाषा और साहित्य' भाग २,

पृष्ठ १९९–२०० में एक अनुमान दिया है कि संभवतः 'गुज्जर' शब्द में अरबी का प्रत्यय 'आत' जुड़ने पर ही गुजरात बना है, जैसे जाहिर से जाहिरात। 'आत' प्रत्यय स्थल का भी सूचक है जैसे ठाकर से ठकरात अथवा भाववाचक संज्ञा बनाने के लिए प्रयुक्त शब्दों की अन्तिम ध्वनि भी यह हो सकती है, जैसे बर्कत से बरकात।

गुजरात की भाषा के लिए 'गुजरात' शब्द का प्रयोग १० वीं शताब्दी में अबू जईद, अलमसूदी तथा अलबरूनी नामक ३ अरब-यात्रियों द्वारा किया गया है किन्तु इस भाषा के लिए 'गुजराती' शब्द का प्रयोग, जहाँ तक ज्ञात हुआ है सर्वप्रथम प्रेमानंद (१६४९ से १७०० ई० तक) ने अपने दशम स्कंध में किया है। भालण (१४२६-१५०० ई०) इसे अपभ्रंश या गुर्जर भाषा कहता है, मार्कण्डेय (१४५० ई०) अपने 'प्राकृत सर्वस्व' में इसे गौर्जरी अपभ्रंश की संज्ञा देता है, पद्मनाभ (१४५६ ई०) इसे प्राकृत, नरसिंह मेहता (१४५० ई०) अपभ्रंश गिरा तथा अखा (१६५०) इसे प्राकृत अथवा भाषा नाम से पुकारता है। प्रेमानंद का समकालीन कवि पुस्तकालय का पुस्तकाध्याय इसे गुजराती कहता है। इस प्रकार लगभग १७०० ई० में इस भाषा के लिए 'गुजराती' शब्द का प्रयोग प्रचलित हुआ।

विद्वानों ने उत्तर भारत की अनेक भाषाओं को इस परिवार के अन्तर्गत माना है, जिसे 'भारोपीय' परिवार कहते हैं। इस परिवार में कुछ तो ग्रीक-लैटिन आदि यूरोपीय भाषाएँ हैं और अवेस्ता के समान कुछ एशियाई भाषाएँ हैं। इस परिवार की भारतीय शाखा का नाम भारतीय-आर्य-परिवार है जिसमें वैदिक संस्कृत, उच्च साहित्यिक संस्कृत, पाली, प्राकृत तथा अपभ्रंश आदि प्राचीन उत्तर भारतीय भाषाएँ सम्मिलित हैं साथ ही कालान्तर में इन भाषाओं से विकसित भाषाएँ भी हैं जैसे गुजराती, हिन्दी, बंगला, मराठी आदि। ये आधुनिक भारतीय भाषाएँ नवीन भारतीय आर्य भाषाएँ कहलाती हैं।

उपर्युक्त भारतीय आर्य भाषाओं का विकास तीन शाखाओं में विभक्त है— (१) प्राचीन भारतीय आर्यभाषाएँ, जैसे वैदिक भाषा, वेदकालीन बोलचाल की भाषा संस्कृत आदि (२) मध्य भारतीय आर्य भाषाएँ जैसे पाली, प्राकृत तथा अपभ्रंश, (३) नवीन भारतीय आर्य भाषाएँ जो उत्तर भारत

और १२वीं शताब्दी के गुजरात की भाषा अपभ्रंश या प्राचीन गुजराती कही जा सकती है। श्री के० के० शास्त्री छठवीं से लेकर १४वीं शताब्दी तक के गुजरात की भाषा को प्राचीन गुजराती अथवा गौर्जर अपभ्रंश मानते हैं। श्री एन० बी० दिवटिया भी ११वीं से १४वीं शताब्दी के गुजरात की भाषा को गौर्जर अपभ्रंश कहते हैं।

ग्रियर्सन की मान्यता थी कि अपभ्रंश प्राकृत और आधुनिक भारतीय भाषाओं के बीच की अवस्था है किन्तु अब इस मान्यता को स्वीकार नहीं किया जाता।

हेमचन्द्र ने अपने सिद्धहैम में व्याकरण के अपभ्रंश भाग की रचना ईसा की १२वीं शताब्दी में की। सबसे आधुनिक और विश्वसनीय धारणा यह है कि व्याकरण में हेमचन्द्र द्वारा दिये गये उद्धरण उस अपभ्रंश का प्रतिनिधित्व करते हैं जो साहित्य में प्रयुक्त होती थी, न कि तत्कालीन लोगों की बोल-चाल में, साथ ही आभीरों एवं अन्य लोगों की मूल भाषा तथा पश्चिमी तट पर बोली जानेवाली भाषा, जिसने हेमचन्द्र से बहुत पहले किसी प्रकार साहित्यिक महत्त्व प्राप्त कर लिया था, अपभ्रंश नाम से प्रसिद्ध हो गयी थी, हेमचन्द्र ने केवल नागर अपभ्रंश का व्यवहार किया है, जो शिष्ट लोगों द्वारा साहित्य की भाषा मान ली गयी थी और जो व्राचड तथा ग्राम्य अपभ्रंश से भिन्न थी। इस मत के अनुसार साहित्यिक अपभ्रंश केवल एक था, न कि क्षेत्रीय विभागों के अनुसार अनेक।

व्राचड का सम्बन्ध सिंधी से अधिक है। आभीरों की बहावना से युक्त एक दूसरा विभेद गौर्जर है। प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी तथा व्रज भाषा का भी अपभ्रंश से बहुत अधिक सम्बन्ध है। इस प्रकार अपभ्रंश का जन्म सिंध राजस्थान और गुजरात में हुआ।

यह अपभ्रंश प्राकृत की अन्तिम विकसित अवस्था है। इसमें प्राकृत के लगभग ८०-९० प्रतिशत शब्द वही हैं, किन्तु इसका व्याकरण प्राकृत के व्याकरण से बहुत भिन्न है तथा इसके शब्दों की ध्वनियाँ या तो नवीन हैं या ध्वनि-विकास की सूचक हैं, जिनमें नवीन भारतीय आर्यभाषाओं की महान ध्वनियों का पूर्वरूप है।

लगभग १२वीं शताब्दी से अपभ्रंश से भिन्न रूप मे गुजराती का विकास आरंभ हुआ। सुविधा के लिए हम गुजराती को दो मोटे भागों में बाँट सकते हैं—(१) प्राचीन गुजराती (११०० से १८५० ई० तक) और (२) आधुनिक गुजराती।

प्राचीन गुजराती को अपभ्रंश से भिन्न करनेवाली मुख्य विशेषताएँ ये हैं—संस्कृत और प्राकृत अपभ्रंश संयोजक वर्ग की भाषाएँ है, पर प्राचीन गुजराती विकसित होकर विभाजक वर्ग की हो जाती है और प्रत्यय तथा विभक्तियों को छोड़ देती है। पुरानी गुजराती में संयुक्त व्यंजनों को दबाकर उनके पहलेवाले स्वर को लंबा कर दिया जाता है। शब्द के आदि मे अस्पष्ट रूप से उच्चरित स्वर लुप्त हो जाता है। अपभ्रंश शब्दों के स्थान पर संस्कृत पर्याय शब्दों के प्रयोग की प्रवृत्ति है। लगभग १३५० ई० तक 'छड' शब्द सहायक क्रिया के रूप मे प्रयुक्त होता आया। लगभग १५०० ई० मे गुजरात एक पृथक् राज्य बना और राजस्थान पर से इसका प्रभुत्व हट गया। अत इसकी भाषा मे नये लक्षणों का विकास आरंभ हुआ और १६५० ई० तक गुजराती को उसका वर्तमान स्वरूप प्राप्त हो गया। (मुंशी—गुजराती भाषा और साहित्य, पृष्ठ १२८-१३०)।

डॉ० बी० के० एच० ध्रुव के अनुसार १०वीं शताब्दी से १४वीं शताब्दी तक गुजरात की भाषा अपभ्रंश या पुरानी गुजराती नाम से कही जा सकती है, १५वीं से १७वीं शताब्दी तक की भाषा को मध्यकालीन गुजराती तथा १७वीं शताब्दी से अब तक की भाषा को आधुनिक गुजराती कह सकते हैं। श्री एन० बी० दिवेटिया के अनुसार गुजरात की भाषा वि० सं० ९५० तक अपभ्रंश; वि० सं० ९५० से १३०० तक मध्यकालीन अपभ्रंश, वि० सं० १३०० से १५५० तक अंतिम अथवा गुर्जर अपभ्रंश (तेसीतोरी के अनुसार प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी की भाँति); वि० सं० १५५० से १७५० तक मध्य गुजराती और १७५० से आगे आधुनिक गुजराती थी। श्री मधुसूदन मोदी आधुनिक गुजराती का आरंभ एक शताब्दी पहले मानते हैं।

× × ×

अभी तक नरसिंह मेहता (१४१५ से १४८१ ई०) को गुजराती का आदि कवि माना जाता रहा किन्तु बाद में उनसे पहले के पुरानी गुजराती के कई कवियों की कृतियाँ प्रकाश में आयीं। इसके अतिरिक्त ५०० से १४०० ई० तक के अनेक अपभ्रंश ग्रंथों का प्रकाशन हुआ। इससे पहले जो कुछ विद्वानों की धारणा है कि अपने पुराने रूप में गुजराती अपभ्रंश ही था, इससे भिन्न और स्पष्ट धारणा यह है कि लगभग १२०० ई० में गुजराती अपभ्रंश से भिन्न हो गयी। इन अवस्थाओं में गुजराती के विशिष्ट रूप से सम्बद्ध अपभ्रंश के साहित्य पर एक दृष्टि डालना समीचीन होगा।

चण्ड के व्याकरण 'प्राकृत लक्षण' में जो दोहा [illegible] का माना जाता है—अपभ्रंश साहित्य का सबसे पुराना है। ५८० ई० के कुछ समय पूर्व भद्रबाहु द्वारा रचित 'कल्पसूत्र [illegible]' में अपभ्रंश के [illegible] पाये जाते हैं। ७३० ई० में उद्योतन द्वारा रचित 'कुवलयमाला' में अपभ्रंश के कुछ पद्य हैं। इसमें १८ देशों, उनकी भाषा तथा वहाँ के निवासियों का वर्णन है यथा— मारवाड़ के बहुत [illegible] हैं तथा [illegible] बोलते हैं, गुर्जर [illegible] और [illegible] तथा पुष्ट और अनुरंजन में [illegible] हैं [illegible] के [illegible] हैं, [illegible] बहुत [illegible] है और [illegible] 'आहट' [illegible]। [illegible] (८०० ई०) में [illegible] अपभ्रंश के उद्धरण पाये जाते हैं। [illegible] रचित [illegible] के [illegible] भी अपभ्रंश में ही [illegible], और [illegible] नहीं है, तो [illegible] अपभ्रंश कविता में [illegible] का [illegible] माना जा सकता है। [illegible] अपभ्रंश [illegible] में [illegible] नाम के [illegible] कवि के, [illegible] और [illegible]' के [illegible] का [illegible] ने [illegible] किया है। [illegible] स्वयंभू [illegible] पुत्र त्रिभुवन स्वयंभू (नवीं [illegible]) ने [illegible] और [illegible] की रचना की है। [illegible] एक [illegible] है, जिसमें [illegible] है [illegible] विशिष्ट [illegible]। [illegible] (लगभग [illegible] ९०० के पूर्व) [illegible] में [illegible]'

अथवा 'पचमी कहा' की रचना की। वे धक्कडवश के दिगबर जैन थे। उनका ग्रथ अपभ्रश मे अबतक प्राप्त सर्व-प्रथम उत्तम लोककथा है। जैकोबी ने उनकी भाषा को नागर अपभ्रश माना है। धवल (दसवी शताब्दी) ने १८ हजार पदो मे हरिवश पुराण की रचना की, जिसमे १२२ सधियो मे जैन तीर्थंकरो का जीवन-चरित्र वर्णन है। लगभग दसवी शताब्दी में चन्द्र मुनि ने ५३ सधियो मे कथाकोश की रचना की। राजा भोज द्वारा प्रेरित होकर 'तिलक मञ्जरी' की रचना करनेवाले प्रसिद्ध कवि धनपाल ने भी 'पाइअलच्छीमाला' नामक प्राकृत कोश की रचना की थी। उन्होने ९५ गाथाओ से युक्त एक अपभ्रश स्तोत्र की भी रचना की थी, जिसमे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक तथ्यो का पता चलता है। उसमे वर्णित है कि तुर्कों ने (गजनी का महमूद) सोमनाथ के मदिर को तो नष्ट कर डाला, परतु वे सत्यपुर (मारवाड स्थित साचोर) के महावीर के जैनमदिर को छू भी नही सके। दसवी शताब्दी का धनिक मालवा के राजा मुज का समकालीन था, उसने धनजय के दशरूपक की टीका लिखी है, जिसमे कई अपभ्रश पद्यो को उद्धृत किया गया है। सागरदत्त (स० १०७६) ने 'जम्बु स्वामि चरित्र' तथा नयनदी ने सुदर्शन-चरित्र एव आराधना की रचना की। धार के राजा भोज ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ 'सरस्वती कठाभरण' मे कई अपभ्रश उद्धरण प्रस्तुत किये हैं। उनका कथन है कि गुर्जर केवल अपनी अपभ्रश से ही सतुष्ट है, किसी अन्य वस्तु से नही। ऐसा कहा जाता है कि राजा सिद्धराज ने राजा भोज के ग्रथो की होड़ मे ही हेमचन्द्र को प्रसिद्ध व्याकरण 'सिद्ध हैम' की रचना करने को प्रेरित किया। ग्यारहवी शताब्दी के आसपास कनकामर ने दस सधियो का एक अपभ्रश काव्य करकडुचरिउ' लिखा। लगभग उसी समय एक श्वेताबर जैन महेश्वर सूरि ने ३५ दोहो मे 'सजम मजरी' की रचना की।

हेमचन्द्र का जन्म १०८९ ई० मे हुआ था और वे सन् ११७३ तक जीवित रहे। मोटे तौर पर ग्यारहवी शताब्दी की अतिम चौथाई और लगभग पूरी बारहवी शताब्दी हेमचन्द्र का युग समझा जाता है। हेमचन्द्र से कुछ पहले अभय-देवसूरि ने पार्श्वनाथ की प्रशसा मे ३३ गाथाओ वाले 'जयतिहुअण' नाम के ग्रथ की रचना की। कवि साधारण ने स० ११२३ मे 'विलासवइ कहा' की रचना

की। हेमचन्द्र के गुरुदेव चन्द्र ने स० ११६० में १६ हजार पदों का एक अपभ्रंश काव्य 'नेमिनाथचरित्र' लिखा। उन्होंने एक दूसरा छोटे अपभ्रंश काव्य 'सुलसाख्यान' की भी रचना की। 'पउमसिरिचरिउ' के प्रणेता धाहिल थे। जिनदत्त सूरि ने तीन अपभ्रंश काव्यों की रचना की। 'पट्टावली' के रचयिता पल्ह थे। वादिदेव सूरि ने 'गुरुस्तवन' तथा लक्ष्मणगणी ने 'सुपासनाह चरित्र' प्राकृत में लिखा। इन दोनों काव्यों में अपभ्रंश के पद्य जहाँ-तहाँ बिखरे पड़े हैं। ये अन्तिम दो कवि हेमचन्द्र के समकालीन थे।

आचार्य हेमचन्द्र गुजरात के सर्वश्रेष्ठ एवं महान पंडित माने जाते हैं। उन्होंने 'अनेकार्थ संग्रह' तथा 'अभिधान चिन्तामणि'—जैसे कोशों की रचना की और 'छंदानुशासन' एवं 'काव्यानुशासन' का सर्जन किया। हेमचन्द्र ने आयुर्वेद का एक ग्रंथ 'निघण्टुशेष', योग संबंधी ग्रंथ 'योगशास्त्र' तथा तीर्थंकरों और महापुरुषों के चरित्रों से युक्त 'त्रिषष्टि-शलाका-पुरुषचरित' नामक ग्रंथ लिखा। उनका 'सिद्ध हैम' ग्रंथ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसमें संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश के व्याकरणों का वर्णन है। उन्हें अपभ्रंश का पाणिनि कहा जा सकता है। उनके उद्धरण अपभ्रंश के श्रेष्ठ काव्य हैं। उनका वास्तविक नाम चांगदेव था और वे धंधुका के एक मोढ वणिक थे। उन्होंने खंभात में स० ११५० में दीक्षा ग्रहण की, जबकि इस प्रांत के सूबेदार उदा मेहता थे। स० ११६६ में वे हेमचन्द्रसूरि हो गये। स० ११८१ में वे सिद्धराज के सम्पर्क में आये। स० ११९१ में मालवा पर विजय प्राप्त की गयी। जब सिद्धराज ने भोज के ग्रंथों को देखा, तब उसकी इच्छा हुई कि गुजरात के विद्वान् भी ऐसे विद्वत्तापूर्ण ग्रंथ लिखें। हेमचन्द्र ने प्रसिद्ध व्याकरण 'सिद्ध हैम' की रचना आरम्भ की, जिसका नामकरण उनके आश्रयदाता सिद्धराज और स्वयं हेमचन्द्र के अर्द्धनामों को मिलाकर हुआ। 'सिद्ध-हैम' में आये व्याकरण के अनेक नियमों की व्याख्या करते हुए उन्होंने 'द्व्याश्रय काव्य' की भी रचना की। उन्होंने 'देशी नाममाला' भी लिखी जो देशी शब्दों का एक कोश है। अपभ्रंश तथा पुरानी गुजराती की शुद्ध रूपरेखा और विकास को निश्चित करने में हेमचन्द्र के ये ग्रंथ बहुत बड़े सहायक हैं। युग का निर्माण करनेवाले उनके ग्रंथ 'सिद्ध हैम' का सिद्धराज ने बहुत अधिक आदर किया। उसकी अनेक प्रतिलिपियाँ कराकर उन्होंने भारत के विभिन्न भागों में भेजी।

हेमचन्द्र के समकालीन अन्य कवियो में से हरिभद्रसूरि ने 'नेमिनाहचरिउ' की रचना की। इस ग्रथ की भाषा को डा० जैकोबी ने गुर्जर अपभ्रश की सज्ञा दी है। ये कवि सस्कृत एव, प्राकृत के बहुत बडे विद्वान् थे। देवसेनसूरि ने 'श्रावकाचार', वरदत्त ने 'वैरसामि चरिउ' तथा रत्नप्रभ ने 'अन्तरग सन्धि' की रचना की। कवि सोमप्रभ हेमचन्द्र के समकालीन कवियो मे छोटे थे और सस्कृत तथा प्राकृत के वे अच्छे विद्वान् थे। उन्होंने 'कुमारपाल प्रतिबोध' की रचना की, जिससे हेमचन्द्र और राजा कुमारपाल के विषय की अच्छी ऐतिहासिक जानकारी मिलती है। उन्होंने अनेक दूसरे ग्रथों की भी रचना की है। वाग्भट के ग्रथ 'काव्यानुशासन' की टीका करनेवाले सिहदेव गणी ने प्रादेशिक विभागो के अनुसार कई प्रकार की अपभ्रशो का वर्णन किया है। एक नागर ब्राह्मण कवि, जो बाद मे जैन हो गये थे, 'षट्कर्म प्रवेश' के रचयिता थे। जयदेव गणी का ग्रथ 'भावना सधिप्रकरण' १३ वी तथा १४वी शताब्दी मे प्रसिद्ध था। जयमगलसूरि ने 'महावीर जन्माभिषेक' की रचना की। जिन-प्रभसूरि के अनेक ग्रथ है, जो छोटे होने पर भी पठनीय हैं। उनके शिष्यो मे से एक ने 'नर्मदा सुन्दरी कथा' तथा 'गौतम स्वामिचरित्र' की रचना की। 'प्रबध चिन्तामणि' के रचयिता मेरुतुङ्ग ने बहुत-से अपभ्रश दोहो को उद्धृत किया है। उन्होंने वढवाण मे स० १३६१ मे अपने ग्रथ की रचना की। इसमे प्रसिद्ध लोक-कथाओ के बीच बहुत-से ऐतिहासिक तथ्य छुपे है। उनके अनेक अपभ्रश-दोहे हेमचन्द्र के दोहो से मिलते-जुलते है। १६वी शताब्दी तक हमे विभिन्न कवियो के ग्रथो मे बराबर साहित्यिक अपभ्रश के दर्शन होते है।

गुजरात-कवियो द्वारा रचित अपभ्रश-काव्यो के अतिरिक्त भारत के अन्य प्रान्तो मे भी अनेक अपभ्रश-ग्रथो की रचना हुई है और वे भी बडे महत्त्व के हैं। ग्यारहवी शताब्दी मे तिल्लोपाद, सरहपाद तथा कण्हपाद मे से प्रत्येक ने एक-एक 'दोहाकोश' की रचना की। ये आसाम और बगाल की कृतियाँ है तथा इनके रचयिता बौद्ध है। 'दुहा-सग्रह' भी एक अन्य बौद्ध कृति है। 'डाकार्णव' बगाली अपभ्रश का क तान्त्रिक ग्रंथ है। विद्यापति की 'कीर्तिलता" (पन्द्र-हवी शताब्दी), 'प्राकृत पिङ्गल' (पन्द्रहवी शताब्दी), त्रिविक्रम की 'प्राकृत व्याकरण', मार्कण्डेय की 'प्राकृत सर्वस्व', लक्ष्मीधर की 'षड्भाषा चन्द्रिका'

तथा सिद्धराज की 'प्राकृत रूपावतार' ऐसी रचनाएँ हैं, जिनमें या तो अपभ्रंश के पदों को उद्धृत किया गया है अथवा जिनका विषय ही अपभ्रंश है। अधिक जानकारी के लिए अथवा भाषागत विशेषताओं के लिए पाठकों को श्री के० का० शास्त्री का ग्रंथ 'आपणा कवियो' देखना चाहिए।

अपभ्रंश-साहित्य मुख्यतः धार्मिक अथवा उपदेशात्मक है और प्रकार रूप से इसकी शैली वर्णनात्मक है। चरित्रों के रूप में धर्मकथा-साहित्य में ऐतिहासिक या पौराणिक महापुरुषों की जीवनियाँ हैं, जैसे 'महापुराण'। इसमें ६३ प्रसिद्ध जैन धार्मिक पुरुषों का जीवन चरित्र वर्णित है। महाकाव्य के रूप में इसमें जैन दृष्टिकोण से राम-कृष्ण की कहानियाँ भी हैं तथा कथाओं के रूप में भी यह पाया जाता है। अनेक उद्धरणों से यह सिद्ध होता है कि वीरता और प्रेम सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण अपभ्रंश-साहित्य भी प्रचुर मात्रा में था।

अपभ्रंश ने कड़वा में रचित एक काव्य शैली गुजराती भाषा को प्रदान की है, छप्पय, दोहा और चौपाई-जैसे अनेक छन्द दिये, नया वाक्यालंकार लिये, गद्य शैलियों में से एक शैली प्रदान की, पुरानी गुजराती का तो अपभ्रंश के साथ माँ-बेटी का सम्बन्ध है। (अपभ्रंश पाठावलि की भूमिका, ले०—मधुसूदन मोदी)।

मोटे तौर पर हम गुजराती साहित्य के इतिहास को दो भागों में बाँटेंगे। प्रथम भाग में दयाराम (१८५२ ई०) तक मध्यकालीन गुजराती साहित्य की चर्चा होगी तथा द्वितीय भाग में आधुनिक काल का गुजराती साहित्य होगा।

अगले अध्याय में हम ऐतिहासिक दृष्टि से इस विषय पर विचार करेंगे।

अध्याय २

ऐतिहासिक छानबीन

गुजरात एव सौराष्ट्र के लोथल तथा अन्य स्थानो पर एक सस्कृति के अवशेष प्राप्त हुए है, जिसे सुविधा के लिए सिंधु घाटी की सभ्यता (३५०० से २७०० वर्ष ईसा पूर्व) का नाम दिया गया है। तापी और नर्मदा के उद्गम स्थल से लेकर भडोच और खभात के बन्दरगाह तथा गुजरात और सौराष्ट्र के तट इस सभ्यता के क्षेत्र है। यह निश्चयपूर्वक नही कहा जा सकता कि वैदिक आर्यो का गुजरात मे कब आगमन हुआ। च्यवन का आश्रम नर्मदा के तट पर और वसिष्ठ का आबू पर्वत पर था। विश्वामित्रि नदी का सबध महर्षि विश्वामित्र से है। कार्तवीर्य का साम्राज्य यहाँ था। हैहय क्षत्रियो के विरुद्ध परशुराम ने कई युद्ध यहाँ किये। महाकाव्य तथा पुराणो के अनुसार श्रीकृष्ण ने मथुरा छोडकर सौराष्ट्र स्थित द्वारका मे समुद्र के समीप एक दृढ दुर्ग का निर्माण कराया तथा यादवो के साथ वही बस गये। यह स्थान रैवतक पर्वत के पास था। वृष्णि, सात्वत और यादवो का शासन अल्प जन-शासित अथवा गणतंत्र की कोटि का था। युधिष्ठिर ने गुजरात की तीर्थयात्रा की थी। तापी के तट पर मार्कण्डेय का आश्रम था तथा सिद्धपुर मे कपिल मुनि रहते थे। वडनगर आनर्तपुर कहलाता था, जो गुजरात की अति प्राचीन राजधानियो मे से एक था और जिसकी विशिष्ट ख्याति ईसा की दसवी शताब्दी तक बनी रही। आर्य संस्कृति का यह एक अति प्राचीन केन्द्र था। गिरिनगर, कुशस्थली, प्रभास, भृगुकच्छ तथा शूर्पारक कुछ प्राचीन आर्य-बस्तियाँ थी।

अशोक के समय मे रथ्थीक सौराष्ट्र में निवास करते थे और आभीरो ने भी इस क्षेत्र को अपना निवास-स्थान बना लिया था। ईसा पूर्व ३१९ से १९७ तक मौर्य साम्राज्य की प्रतिष्ठा थी, जिसमे गुजरात भी सम्मिलित था। अशोक ने (ईसा पूर्व २७२ से २३२ तक) अपने यूनानी शासक यवनथेर द्वारा

इस भाग पर शासन किया। मौर्यों के बाद बक्ट्रिया के यूनानी आये, जिनमें मियन्डर (मिलिन्द) का नाम विशेष प्रसिद्ध है। उनके बाद क्षत्रप आये (७० से ३९८ ई०), जो विदेशी होते हुए भी हिन्दूपन में रँग गये थे। क्षत्रप नहपान (७८ से १२० ई०) के गुजरात में राज्य करने के बाद आन्ध्र शासक गौतमीपुत्र शतकर्णी द्वारा इसका शासन हुआ, किन्तु रुद्रदमन प्रथम (१४३ से १५८ ई०) ने फिर से क्षत्रप-राज्य की स्थापना की। वह अत्यन्त कुशल और योग्य शासक था। गिरनार की चट्टानों पर अशोक और रुद्रदमन के लेख बगल-बगल खुदे मिलते हैं। गुप्त-काल में गुजरात गुप्त-साम्राज्य का एक अंग था और उसका शासन उज्जयिनी से होता था। स्कन्दगुप्त (४६७ ई०) की मृत्यु के पश्चात गुजरात पर से गुप्तों का अधिकार हट गया और त्रयकूटक (४५० से ४९५ ई०) दक्षिण गुजरात का शासन करने लगे।

गुप्त राजाओं के बाद गुजरात पर वल्भी के मैत्रकों ने सन् ४३० से ७८९ ई० तक शासन किया। 'कुमारचरित' और 'कथा सरित सागर' में वल्भी का वर्णन एक उन्नतिशील नगर के रूप में है। मैत्रक माहेश्वर थे और लकुलिश द्वारा स्थापित पाशुपत सम्प्रदाय के अनुयायी थे। लकुलिश स्वयं शिव के अवतार माने जाते थे जिन्होंने कायावरोह के समीप अथवा बड़ौदा के पास कारवण नामक ग्राम में एक मृत ब्राह्मण के शव में प्रवेश किया था। सोमनाथ मंदिर का—जिस विषय में किवदन्ती है कि उसकी स्थापना चन्द्र देवता ने की थी और बाद में श्रीकृष्ण ने नवीन रूप दिया था—गुजरात के शासकों द्वारा राज प्रतिष्ठा प्राप्त थी। द्वादश ज्योतिर्लिङ्गों में यह सर्वप्रथम है और समूचे भारत द्वारा इसकी पूजा-आराधना होती थी। मैत्रक राजाओं के लगभग १२५ ताम्रपत्र प्राप्त हुए हैं, जो दान-शासन के अन्तर्गत आते हैं। इनमें से अधिकांश दान-पत्र ब्राह्मणों, मंदिरों या बौद्ध मठों के लिए हैं। आनन्दपुर, गिरिनगर तथा दूसरे स्थानों से ब्राह्मणों को आमंत्रित करके वल्भी एवं दूसरे नगरों में बसाया गया था। प्रसिद्ध 'भट्टि काव्य' या 'रावणवध' छठवीं शताब्दी के अंतिम भाग में, धरसेन के शासन-काल में, भट्ट स्वामी अथवा भर्तृहरि द्वारा वल्भी में रचा गया। वे बहुत बड़े वैयाकरण थे और रावणवध की कथा लिखते समय उदाहरण

संस्कृत-व्याकरण के नियमो का वर्णन किया है। इसी समय में बुद्ध धर्म का भी विशेष प्रचार था। दुद्दा विहार तथा बप्पापादीय विहार बहुत प्रसिद्ध थे। बोधिसत्व गुणमति और स्थिरमति अपनी यात्रा मे वलभी मे ही ठहरे थे और प्रसिद्ध ग्रथो की रचना की थी। यद्यपि वलभी मे हीनयान की प्रमुखता थी, तथापि बौद्धमत के दोनो संप्रदाय महायान और हीनयान का प्रचार वहाँ था। नालन्दा की भाति वलभी की भी ख्याति एक महान् विश्वविद्यालय के रूप मे भारत में तथा भारत के बाहर थी।

जैन-ग्रथो को एकत्रित करने के लिए जैनों की एक सभा मथुरा मे हुई थी और दूसरी नागार्जुन द्वारा वलभी मे। जैन साधुओ की दूसरी सभा देवर्द्धिगणि द्वारा वलभी मे हुई थी, जिसमे जैन धार्मिक ग्रथो का लेखन हुआ था। इस घटना को पुस्तकारोहण की सज्ञा दी गयी थी। वलभी के शासन-काल में नागार्जुन, मल्लवादिन् तथा देवर्द्धिगणि विशिष्ट जैन विद्वान् थे। वलभी के अतिरिक्त शत्रुजय तथा दूसरे स्थान भी जैन-केन्द्रो के रूप में विकसित हुए। आरभ से ही जैनो का सम्बन्ध गुजरात से रहा था। बाईसवें तीर्थङ्कर नेमिनाथ सौराष्ट्र के थे। बीसवें तीर्थङ्कर सुव्रत का शकुनिक विहार भडोच मे था। जैन साधुओं ने धर्मकथाओ और चरितो के साहित्य को आगे बढ़ाया। भद्रबाहु ने ४११ ई० में गुजरात के शासक को जैन कल्पसूत्रो की कथा आनन्दपुर मे सुनायी। 'तरगवती' प्राकृत का एक प्रेम काव्य था। इसके रचयिता पादलिप्त थे, जिन्होने नेमिचन्द्र के 'पलित्तण' और 'तरगालोक' को सक्षेप रूप में प्राप्त किया था। विमल का 'पउमचरिअम्' जैन महाराष्ट्र प्राकृत मे लिखा हुआ है और जैन-सिद्धान्तो के अनुसार परिवर्तित वह रामायण की कहानी है। सिद्धसेन दिवाकर (५३३ ई०) एक प्रसिद्ध जैन तार्किक और अनेक प्रकरणों के लेखक थे। हरिभद्रसेन १४०० प्रकरणो तथा अनेक धर्मकथाओ के लेखक कहे जाते हैं, किन्तु उनमे से केवल 'समराइच्चकहा' और 'धूर्ताख्यान' ही हम तक पहुँचे। ये महाराष्ट्र प्राकृत में है। पहली कथा एक राजकुमार और पुरोहित की है कि द्वेष के कारण किस प्रकार पुरोहित का सर्वनाश हुआ। दूसरी कहानी ठगों की है। उद्योतन हरिभद्र के शिष्य थे, जिन्होने जालोर (७७९ ई०) मे 'कुवलयमाला'

नामक चम्पू काव्य की रचना की। रत्नप्रभ (१४०० ई०) ने इस प्रेमकाव्य का अनुवाद संस्कृत में किया। हरिवंश पुराण की रचना जिनसेनसूरि ने सन् ७८३ में की। इसका कुछ अंश वर्द्धमानपुर अर्थात् वढवाण में लिखा गया था। सिद्धर्षि ने 'उपमिति भव प्रपञ्च-कथा' (९०६ ई०) की रचना की जिसमें बड़े लम्बे-लम्बे उपन्यास हैं। शीलादित्य का प्राकृतग्रंथ 'चौवन्न महापुरुष चरित्रम्', विजयसिंह का 'भुवनसुन्दरी कथा', महेश्वरसूरि का 'कालकाचार्य कथानक' तथा हरिषेण का 'बृहत्कथा कोश' आदि इस काल के महत्वपूर्ण जैन ग्रंथों में से हैं।

वल्भी का प्रसिद्ध विश्वविद्यालय ६०० वर्षों तक सुविख्यात रहा। ८वीं शताब्दी के अन्तिम चतुर्थांश में अरब-सेना ने सिंध से नौकाओं द्वारा वल्भी पर आक्रमण किया जिसमें वल्भी शासक को मार कर वल्भी को नष्ट भ्रष्ट कर दिया गया।

वनराज चावडा ने सन् ७६५ में पाटन की स्थापना की। इसके पूर्व पंचासर चावडा की राजधानी था।

गुर्जर प्रतिहार भिन्नमाल के थे जो लगभग एक शताब्दी तक भारत के इतिहास पर छाये रहे। नागभट्ट प्रथम ८वीं शताब्दी के द्वितीय चतुर्थांश में शक्ति-सम्पन्न हुआ और कन्नौज का प्रतिहार-साम्राज्य १०वीं शताब्दी के मध्य तक रह कर छिन्न-भिन्न हो गया। गुर्जर प्रतिहारों में मिहिरभोज का नाम विशेष प्रसिद्ध है। उसने लगभग आधी शताब्दी तक राज्य किया और एक ऐसे साम्राज्य की स्थापना की, जिसमें पंजाब, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, ग्वालियर, गुजरात, सौराष्ट्र, मालवा आदि सम्मिलित थे। उसकी राजधानी कन्नौज था। वह आदिवराह के नाम से प्रख्यात था। उसी के काल में राजशेखर हुए, उसके सभानिधि थे। गुर्जरेश्वर लाट-के उन लोगों का प्रतिनिधित्व करते हैं जो संस्कृत से घृणा और प्राकृत से प्रेम करते थे। लाट-शैली की एक विशेषता हास विनोद भी है।

११वीं शताब्दी के प्रथम चतुर्थांश में धार के राजा भोज ने एक विशाल साम्राज्य का निर्माण किया। वाक्पतिराज मुंज भोज का चाचा था। वह स्वयं महा विद्वान, विद्वानों का आश्रयदाता तथा मधुर व्यक्तित्व वाला था। 'नव

साहसाङ्क चरित' के रचयिता पद्मगुप्त अथवा परिमल, प्रसिद्ध नाट्य ग्रंथ 'दशरूपक' के लेखक धनजय, 'दशरूपक' तथा 'हलायुध' की टीका करनेवाले धनिक—ये सब मुज के समकालीन तथा सहयोगी थे। भोज के राज्य में गुजरात तथा सौराष्ट्र भी सम्मिलित थे और उसका विस्तार थानेश्वर से तुङ्गभद्र तक तथा द्वारका से कन्नौज तक था। भोज स्वयं श्रेष्ठ कवि, विद्वान् और विद्या-प्रेमी थे। वे लगभग ८४ ग्रथो के रचयिता माने जाते है, जिनमे 'शृगार प्रकाश' सबसे बडा गद्य-ग्रथ है। 'तिलक मजरी' तथा 'प्राकृत कोश रचना-शास्त्र' के रचयिता धनपाल और यजुर्वेद की वाजसनेयी सहिता पर 'मत्रभाष्य' करनेवाले आनन्दपुर के उव्वट भोज के समय मे ही हुए।

पाटण की वास्तविक उन्नति चालुक्य राजाओं के समय में हुई। इस वश का आरभ मूलराज से हुआ था। मूलराज ने कच्छ, सौराष्ट्र, लाट, चन्द्रावती और सिरोही के शासको को परास्त करके अपने राज्य का विस्तार किया। उसने उत्तरापथ के ब्राह्मणो को आमत्रित करके गुजरात मे बसाया। राजा कर्णदेव ने, जो त्रैलोक्यमल्ल की पदवी से विभूषित था और प्रसिद्ध सिद्धराज का पिता था, ग्यारहवी शताब्दी मे कर्णावती नगर—आधुनिक अहमदाबाद—बसाया। काश्मीरी पडित बिल्हण ने कर्णदेव की राजसभा मे रहकर प्रेम-प्रसगपूर्ण 'कर्णसुन्दरी' नामक नाटक की रचना की। गुजरात का आदि नाटक यही है। इसकी रचना सन् १०८० और १०९० के बीच हुई। उस समय तक पाटन एक भारत-प्रसिद्ध श्रेष्ठ सस्कृति-केन्द्र बन गया था। सन् १०२६ और १०५० के मध्य भृगु-कच्छ के कायस्थ सोड्ढल ने 'कादम्बरी' का अनुकरण करते हुए 'उदय-सुन्दरी कथा' नामक ग्रंथ की रचना की। गुजरात के प्रसिद्ध सम्राट् सिद्धराज जयसिंह (१०९४ से ११४३ ई०) ने पौष कृष्ण ३ सवत् ११५० को शासन-भार सँभाला। वह ५० वर्षों तक राज्य करता रहा। उसकी उपाधियाँ थी—महाराजाधिराज, परमेश्वर, त्रिभुवनगण्ड, बर्बरक जिष्णु, सिद्ध चक्रवर्ती तथा अवन्तिनाथ। उसने सौराष्ट्र के खेगार को पराजित करके मालवा को अपने राज्य मे मिला लिया। पाटण, सिद्धपुर, वडनगर, खभात, कर्णावती, वढवाण और डभोई उन्नत नगर थे। उसी के समय मे श्वेताम्बर साधु देवसूरि

और दिगम्बर साधु कुमुदचन्द्र के बीच शास्त्रार्थ हुआ था। सिद्धराज ने मालवा के भोज के साथ प्रतिद्वन्द्विता की। वह विद्वानों का बहुत बड़ा आश्रयदाता बना। उसने परमारों के गुरु भाव बृहस्पति को गुजरात में बसने के लिए आमन्त्रित किया। हेमचन्द्र तथा उनके शिष्यगण सिद्धराज के समय में ही प्रसिद्ध हुए। गुजरात के राज्य मन्त्री मुख्यतः या तो वडनगर के नागर ब्राह्मण थे या जैन। आनवाड और पोरवाड के जैन व्यापारी भिन्नमाल छोड़कर पाटण चले आये थे। जैन साधुओं को सिद्धराज की माता मीनल्देवी तथा कुछ जैन मन्त्रियों की सहानुभूति प्राप्त थी स्वयं हेमचन्द्र एक बहुत बड़े जैन साधु थे। सिद्धराज ने 'सिद्ध हेम' की प्रतिलिपियाँ बराबर भारत के सभी राजाओं के पास भेजी। २० प्रतियाँ काश्मीर गयी थीं। व्याख्यासहित उस ग्रंथ में १ लाख २५ हज़ार पद हैं। उसके ८वें अध्याय में प्राकृत तथा अपभ्रंश पर विचार किया गया है। हेमचन्द्र के काल तथा प्राकृत के अध्ययन के महत्त्वपूर्ण हैं। सिद्धराज ने नगर के बीचो बीच सहस्रलिङ्ग झील का निर्माण कराया और माघ कृष्ण १४ सं० १२०२ को सिद्धपुर के रुद्र महालय को पूरा कराया, जिसका निर्माण मूलराज ने आरंभ किया था। द्वयाश्रय में वैभवपूर्ण पाटण नगर का वर्णन है। सिद्धराज ने अपनी शक्ति का संगठित करके सौराष्ट्र, दक्षिण गुजरात, शाकम्भरी एवं मालवा को जीत लिया और आधुनिक गुजरात का वास्तविक संस्थापक बन गया। उसका परवर्ती कुमारपाल (११४६–११७३ ई०) भी अत्यन्त प्रसिद्ध शासक था। आरंभ में उसे उत्तर और पश्चिम में युद्ध करना पड़ा, किन्तु शीघ्र ही उसने साम्राज्य को संगठित कर लिया। उसके शासन-काल में जैन धर्म की बहुत उन्नति हुई। कुमारपाल एक सदाचारी और भक्त पुरुष था। वह संयम-पूर्ण तथा धार्मिक जीवन व्यतीत करता था। उसने अपने राज्य में पशु वध का निषेध कर दिया। उस काल में हेमचन्द्र का पूर्ण प्रभाव था।

यहाँ गुजरात के कुछ संस्कृत ग्रंथों का उल्लेख भी किया जा सकता है। यद्यपि सांख्य शास्त्र के रचयिता कपिलमुनि का सम्बन्ध सिद्धपुर से बताया जाता है और न्याय तथा वैशेषिक सूत्रों के रचयिता पाशुपत कहे जाते हैं किन्तु ये किंवदंतियाँ हैं। यदि ये सत्य हैं, तो गुजरात गर्वपूर्वक यह दावा कर सकता है

कि नकुलिश पाशुपत, सांख्य, न्याय तथा वैशेषिक दर्शनों का उद्गाता रही है। पाँचवीं शताब्दी में देवर्द्धिगणि की अध्यक्षता में जैन संघ ने समस्त जैन-सिद्धान्तों को लिपिबद्ध किया। सातवीं शताब्दी में दिन्नाग ने वस्तुओं का वर्णन एक सम्पूर्ण विश्वविज्ञान के रूप में किया है। दो प्रसिद्ध दार्शनिकों—गुणमति और स्थिरमति—का निवास स्थान वलभी ही था तथा वलभी में ही भट्टिकाव्य की रचना हुई। कवि माघ का 'शिशुपाल वध' भिन्नमाल में लिखा गया और उसने गिरनार पर्वत का अत्यन्त गौरवपूर्ण वर्णन किया है। यहाँ के सिद्धसेन दिवाकर तथा हरिभद्र नामक दो ब्राह्मणों ने जैनधर्म स्वीकार किया। वे दोनों ही प्रकाण्ड विद्वान् थे। दोनों ने अनेक प्रकरण लिखे हैं। उव्वट ने 'प्रातिशाख्य सूत्र' तथा वाजसनेयी संहिता की टीकाएँ लिखी हैं। द्याद्विवेद ने ग्यारहवीं शताब्दी में 'नीति मंजरी' की रचना की। विष्णु ने 'नारायण पद्धति' लिखी। ग्यारहवीं शताब्दी के अंतिम चरण में कलिकाल सर्वज्ञ हेमचन्द्र तथा उनके शिष्यों ने अनेक ग्रंथ लिखे। हेमचन्द्र ने 'सिद्धहैम', 'द्व्याश्रय', 'शब्दानुशासन', 'काव्यानुशासन', 'त्रिषष्टि-शलाकापुरुष-चरित्र' एवं अनेक अन्य ग्रंथों का सर्जन किया। उन्होंने आयुर्वेद संबंधी कोश 'निघण्टुशेष' की रचना की। वाग्भट्ट ने 'वाग्भट्टालङ्कार' नामक ग्रंथ लिखा। हेमचन्द्र के अनेक शिष्य थे, जिनमें हैं प्रसिद्ध नाटककार रामचन्द्र, गुणचन्द्र, महेन्द्रसूरि, वर्द्धमानगणि, देवचन्द्र, उदयचन्द्र, यशश्चन्द्र तथा बालचन्द्र। रामचन्द्र ने संस्कृत के ग्यारह नाटक लिखे और 'नाट्य दर्पण' नाम से नाटक शास्त्र का एक विद्वत्तापूर्ण ग्रंथ लिखा, जिसमें लुप्त हुए नाटकों के महत्त्वपूर्ण उद्धरण हैं। वे एक मौलिक लेखक थे, जिन्होंने नाटकों से चमत्कारों को निकालकर उनमें यथार्थवाद प्रविष्ट करने की चेष्टा की। गुजरात की यह शती नाटकों की शती थी जबकि २३ संस्कृत नाटक लिखे गये। सिद्धराज के कवीन्द्र श्रीपाल थे। यशपाल (११७४ ई०) ने 'मोहराज-पराजय' लिखा, जिसका विषय था कुमारपाल का जैनधर्म ग्रहण करना। सोमप्रभ ने (११८५ ई०) 'कुमारपाल प्रतिबोध' की रचना की, जिसका कुछ अंश संस्कृत में तथा शेष प्राकृत और अपभ्रंश में है। पूर्णप्रभ का 'पंचाख्यान' (११९९ ई०) प्रसिद्ध 'पंचतंत्र' का संशोधित संस्करण है।

सोमेश्वर नागर ब्राह्मण और मूलराज के पुरोहित थे। वे कुमार के पुत्र

और सिद्धराज के पुरोहित आमिग के पौत्र थे। सोमेश्वर ने कई ग्रंथ लिखे—वस्तुपाल की प्रशंसा में 'कीर्तिकौमुदी', मार्कण्डेयपुराणान्तर्गत चण्डी माहात्म्य के आधार पर 'सुरथोत्सव' आठ अंकों का एक नाटक, 'उल्लाघ राघव', 'रामशतक' और दो प्रशस्तियाँ। वे कालिदास के भक्त और उनकी शैली के बहुत बड़े प्रशंसक थे। उनके काव्य में सौन्दर्य, स्पष्टता और प्रसाद गुण है। उन्होंने राजाओं की अवस्था का वर्णन स्तुति के रूप में किया है, अतः उनसे हमें निष्पक्ष एवं प्रामाणिक जानकारी प्राप्त होती है। अपने समय के वे सर्वश्रेष्ठ कवि थे। तेरहवीं शताब्दी में नानाक, सुभट, अरिसिंह तथा अमरचन्द्र सूरि आदि दूसरे कवि भी थे।

प्रह्लादन परमार राजकुमार थे, जिन्होंने प्रह्लादनपुर अथवा पालनपुर की नींव डाली। उन्होंने व्यायोग नाटक 'पार्थ पराक्रम' की रचना की, जिसमें उन्होंने अर्जुन द्वारा राजा विराट की गायें लौटाने के प्रसंग में दीप्तरस का वर्णन किया है।

स्वयं वस्तुपाल ने १६ सर्गों का एक महाकाव्य 'नरनारायणानन्द' लिखा, जिसमें अर्जुन द्वारा सुभद्रा के हरण का प्रसंग है। 'कीर्ति कौमुदी' का अनुकरण करते हुए अरिसिंह ने 'सुकृतसंकीर्तन' और बालचन्द्र ने 'वसन्त विलास' में वस्तुपाल का यशोगान किया है। जयसिंह के नाटक 'हम्मीर मद मर्दन' में एक मुसलमान आक्रान्ता पर वीरधवल की विजय का वर्णन है।

वस्तुपाल के पूर्ववर्ती उदयप्रभ ने 'संघाधिपतिचरित' तथा 'सुकृत कीर्ति-कल्लोलिनी' नामक ग्रंथ लिखे। ब्राह्मण कवि सुभट ने 'दूतांगद' नाम का नाटक लिखा। वाहड़ एक गुजराती वैद्य थे, जिन्होंने 'गुण संग्रह' और 'रस निधान' की रचना की। शार्ङ्गधर और यशोधर १३ वीं शताब्दी के प्रमुख वैद्य थे, जिन्होंने आयुर्वेद संबंधी ग्रंथ लिखे।

धोलका के राणाओं के दो प्रसिद्ध मंत्री वस्तुपाल और तेजपाल थे। वे सफल प्रशासक, अच्छे विद्वान तथा विद्या एवं कला के प्रेमी थे। उन्होंने बहुत से कलापूर्ण मन्दिर बनवाये, जिनमें आबू का प्रसिद्ध मंदिर लूणसिंह वसाहिका भी है। उन्होंने अनेक ब्राह्मण मंदिरों का भी निर्माण कराया और कई की मरम्मत कराया।

उन दिनों गुजरात असाधारण रूप से वैभव-सम्पन्न था। वहाँ के व्यापारी बड़े साहसी थे और गुजरात के बंदरगाहों पर बराबर काम चलता रहता था। नागर, ओसवाल, परवड, श्रीमाली—इनकी प्रमुखता थी। शिक्षा एवं राजनीति तथा युद्ध-कला में भी जैनों ने अच्छी प्रगति की थी। ब्राह्मण सोमेश्वर, राजकुमार प्रह्लादन और जैन साधु-समाज—इन सभी ने शिक्षा-क्षेत्र में सहयोग दिया। सहिष्णुता इस भूमि की एक दूसरी विशेषता थी। सूर्य-आराधक मागी यहाँ आये और मवेरा में बस गये। एशिया तथा अफ्रीका से मुसलमान आक्रामक आये। समयानुसार पारसी भी यहाँ आये और इसे अपना घर मान लिया।

यहाँ के अधिकांश शासक शैव थे तथा प्रमुख धर्म शैवमत था। भगवान् सोमनाथ यहाँ के अधिष्ठातृदेवता थे। वडनगर के सुसभ्य एवं सुशिक्षित नागर ब्राह्मण, जो गुजरात के इतिहास के प्रमुख पात्र हैं, शैव थे। चालुक्यों के राजपुरोहित वडनगर के एक ब्राह्मण थे। नागर ब्राह्मण पुरोहित, योद्धा और विद्वान् थे। नकुलिप का पाशुपत दर्शन गुजरात में ही प्राप्त हुआ था। श्री नन्दलाल दे अपने प्रसिद्ध ग्रंथ 'प्राचीन तथा मध्य भारत का भौगोलिक कोश' के पृष्ठ १९८ पर लिखते हैं कि आद्य शंकराचार्य का ब्रह्म सूत्र भाष्य सूरत में लिखा गया था। शंकराचार्य के गुरु गोविन्दपाद का आश्रम नर्मदा के किनारे पर था।

गुप्त-काल में विष्णु की आराधना आरंभ हुई, यहाँ तक कि द्वारका के रणछोडजी की मूर्ति गुप्तकाल की मानी जाती है। यह विष्णु-पूजा कुछ लोगों में आगे भी चलती रही। पाटन में विष्णु के मंदिर भी थे। वस्तुपाल शंकर और केशव दोनों का उपासक था। 'सुरथोत्सव' में राधा-कृष्ण का प्रेम वर्णित है; और यह ग्रंथ शक्ति का गुणगान करने के लिए रचा गया था।

इन शताब्दियों में धनी जैनों द्वारा अनेक कलापूर्ण मंदिरों का निर्माण हुआ। गुजरात, मालवा तथा राजस्थान की भाषा और संस्कृति एक थी। पाटन एक सम्पन्न और शक्तिशाली नगर था। गुजरात की कला आबू एवं मवेरा के मंदिरों में व्यक्त हुई। वस्तुपाल का कलाकार सोलन संसार के श्रेष्ठतम कलाकारों में से एक था। गुजरात में बहुत बड़े-बड़े पुस्तकालय थे। पाशुपत और जैनों के भंडारों में अमूल्य ग्रंथ थे। इतनी शताब्दियों के बाद भी जैन

भाडार अनेक दुर्लभ एवं मूल्यवान् पाडुलिपियों को प्रकाश में ले आये। राजसभा की भाषा संस्कृत थी, जो उच्च संस्कृति की द्योतक थी। यह वीर युग था, जिसका आभास उस काल के साहित्य में मिलता है। जन-जीवन में आनंद का उचित स्थान था। किन्तु सन् १२०९ में मुसलमानी आक्रमणों ने इसे उजाड़ दिया और इसकी गौरवपूर्ण बहुरंगीय परम्परा को नष्ट कर दिया।

सन १२९७ से १८६० तक गुजरात में मुसलमानी शासन था। लगभग प्रथम १०० वर्षों तक दिल्ली के सुल्तानों का और १४०३ से १५७३ तक गुजरात के सुल्तानों का राज था। १५७३ से १७६० तक गुजरात मुगल साम्राज्य का एक अंग बना रहा और मुगल प्रशासनाधिकारी द्वारा उसका शासन होता रहा।

अंतिम बघेला शासक कर्ण था, जिसे अलाउद्दीन खिलजी ने १२९७ में पराजित किया। गुजरात की स्वतंत्रता छिन गयी और १०० वर्षों तक दिल्ली के सुल्तानों ने इस पर राज्य किया। विदेशी आक्रमणों के कारण दिल्ली के सुल्तान निर्बल पड़े और गुजरात का मुसलमान सूबेदार जफरखां गुजरात का स्वतंत्र सुल्तान बन बैठा (१४०७ ई०)। उस समय बड़ी गड़बड़ मची। धर्म-परिवर्तन, लूट-खसोट और मंदिरों को तोड़ने की घटनाएँ बराबर होती रहीं। लोग एक स्थान से दूसरे स्थान में जाने के लिए बाध्य किये गये। जैन साधुओं ने अपने धार्मिक ग्रंथ भंडार को भू-गर्भ में छिपा दिया। संस्कृत भाषा के सिर से राजाश्रय हट गया। विद्वानों को जनता की शरण लेनी पड़ी। फलतः साहित्यिक ग्रंथों की रचना जन भाषा में होने लगी। अन्य कई वर्गों के लोगों के सम्पर्क में आने से भाषा में सुधार और विकास हुआ। आत्म रक्षा की भावना से प्रेरित होकर लोगों ने अपनी जाति के अनेक भेद-उपभेद बना लिये। बाल-विवाह को प्रोत्साहन मिला। सामाजिक तथा धार्मिक उत्सवों के साथ साहित्य का सृजन होने लगा। जिन राजपूतों ने बड़ी वीरता से मुसलमानों का सामना किया था, उनका यशगान किया गया। अधिकांश साहित्य भक्तिमय था। उत्तर में रामानन्द ने सब जातियों के लिए भक्ति का द्वार खोल दिया। भक्ति की वह लहर समस्त भारत में फैली और गुजरात में भी आयी। भागवत तथा अन्य पुराणों का प्रभाव लोगों पर बहुत पड़ा और उनका अनुवाद किया गया। इन्हीं संस्कृत ग्रंथों के आधार पर आख्यानों की रचना हुई। इन्हीं अनुवादों ने

जनता के धार्मिक विश्वास पर चेतना की रक्षा की। लोक-कथाओं द्वारा लोगों का मनोरंजन होने लगा। जैन साधुओं ने अपने रासो तथा प्रबन्धों में मनोरंजक वर्णन और धार्मिक शिक्षाओं—दोनों का सम्मिश्रण करने का प्रयत्न किया। इस प्रकार का साहित्य लगभग तीन सौ वर्षों तक चलता रहा।

गुजरात के सुल्तानों के समय में राज्य २५ छोटे-छोटे भागों में विभक्त था और प्रत्येक भाग 'सरकार' कहलाता था। उस समय खंभात सब से उत्तम बंदरगाह था। गुजरात के सुल्तानों ने अनेक विशाल भवन, मस्जिद और कलापूर्ण रोजे बनवाये। अहमदाबाद और चांपानेर अत्यन्त वैभवशाली नगर थे। वस्तुतः दिल्ली और आगरा के मुगल सम्राटों ने गुजरात की वास्तुकला का अनुकरण कुछ अंशों में किया। अहमदशाह ने १४११ ई० में अहमदाबाद को बनाया। महमूद बेगड़ा ने गुजरात में अपनी शक्ति का संगठन किया और चांपानेर तथा जूनागढ़ के दो प्रसिद्ध किले ले लिये। उसका पुत्र सुल्तान मुजफ्फर द्वितीय बहुत धार्मिक था। १५७३ ई० में अकबर ने गुजरात को जीत लिया। मुगल-शासन के समय में ही सूरत भारत का प्रथम और सर्वश्रेष्ठ बंदरगाह बना और १७वीं शताब्दी के आरंभ तक यह नगर वैभव से पूर्ण हो गया। उसके बाद बम्बई एक प्रमुख नगर तथा बंदरगाह के रूप में विकसित हुआ।

गुजरात में इन अनेक राजनीतिक परिवर्तनों के कारण जन-जीवन को धर्म की ओर मुड़ने का अच्छा अवसर मिला। उत्तर में रामानन्द ने जाति-भेद दूर करके भक्ति का उपदेश सबको देना आरंभ कर दिया था, जिसका प्रभाव गुजरात पर भी पड़ा। मध्यकालीन गुजराती कवियों ने भी प्रेमलक्षणा भक्ति का वर्णन करते हुए अनेक काव्य-ग्रन्थ लिखे। भागवत और उसमें वर्णित कृष्ण-भक्ति से भी लोग बहुत प्रभावित हुए। मुसलमान संतों का भी शासकों तथा जनता पर अच्छा प्रभाव था। हज़रत मख्दूम जहानी ने ही ज़फरखाँ को गद्दी पर बैठाया, ऐसा कहा जाता है। इसी प्रकार शेख़ अहमद खत्तु, शेख़ शाह आलम, हज़रत शेखजी तथा कुछ अन्य मुसलमान संतों ने शासक वर्ग एवं जनता को प्रभावित किया। हिन्दू-मुसलिम एकता के लिए अनेक प्रयत्न किये गये। खोजा, बोहरा, मेमन, मोल्सिलम आदि नये-नये फिरकों का जन्म हुआ। कबीर के उपदेशों का भी अच्छा प्रभाव था।

विभिन्न जातियों और वर्गों के परस्पर सम्पर्क से भाषा का स्वरूप कुछ बदला और विवर्धित हुआ। कृष्ण भक्ति सबके लिए सुलभ थी। संस्कृत के धार्मिक ग्रंथ गुजराती भाषा के पद्य और आख्यानों में अनूदित होने लगे। विशेषकर मुगलकाल में गुजरात में शान्ति एवं सम्पन्नता थी। इस युग में प्रेमानन्द हुए जो मध्यकालीन कवियों तथा आख्यानकारों में सर्वश्रेष्ठ हैं, और इसी समय शामल नाम के सर्वश्रेष्ठ लोककथा लेखक भी थे।

औरंगज़ेब की मृत्यु के पश्चात फिर उपद्रव हुआ। मुगल साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो रहा था। गुजरात पर मराठों के आक्रमण बराबर हो रहे थे (१६६४ से १७४३ ई० तक)। किन्तु वे तब तक गुजरात में टिक नहीं सके थे। उसके बाद गुजरात में सामन्तों और पेशवाओं के बीच अधिकार के लिए संघर्ष होता रहा। इस अव्यवस्थित काल में केवल द्वितीय श्रेणी के उसी घिसे पिटे साहित्य का निर्माण होता रहा।

सन् १८१८ ई० के बाद ईस्ट इंडिया कंपनी के हाथों में शक्ति आयी। पुनः शान्ति स्थापित हुई। स्वामी नारायण तथा उनके शिष्यों ने डाकुओं और लुटेरों को समझा-बुझाकर ठीक किया। इस काल में द्वितीय श्रेणी के लेखक तथा प्रथम कोटि के कवि दयाराम हुए। १८५० के बाद आधुनिक काल आरम्भ हुआ।

अध्याय ३

मध्यकालीन साहित्य के रूप

प्राचीन एवं मध्यकालीन गुजराती साहित्य के रूप आधुनिक काल के रूपों से कई दृष्टियों से भिन्न हैं। प्राचीन एवं मध्यकाल में गद्य की अपेक्षा पद्य के रूप अधिक विकसित थे और उनकी मात्रा भी प्रचुर थी। वस्तुत गद्य उस समय नहीं के बराबर था—सभवत. पद्य के पचीसवें भाग से भी कम। व्याकरण-ग्रंथो, व्याख्याओ और धार्मिक कथाओ तक ही गद्य सीमित था। उनमे कई कथाएँ वर्णनात्मक है, जिनमे आचार और धर्म के उपदेश मिलते है। प्राचीन साहित्य में आधुनिक काल की भाँति गद्य की गरिमा, मात्रा और विकास नहीं पाया जाता, किन्तु पद्य के अनेक भेद-उपभेद मिलते है। प्रत्येक शताब्दी में पुराने रूप तो चलते रहे, पर कुछ नये रूप भी सम्मिलित किये गये। नरसिंह मेहता के पूर्व जैन साधुओ ने अपने रास-साहित्य की यहाँ तक उन्नति की कि उस काल को रास-युग की संज्ञा दी गयी। यद्यपि उस काल मे रास की प्रमुखता थी, तथापि उसके साथ फाग, बारहमासा, कक्को और प्रबन्ध आदि का भी प्रचार प्राचीन तथा मध्यकाल में था। यद्यपि इस प्रकार के साहित्य का प्राचीन-तम भाग जैनो द्वारा रचा गया है, किन्तु जैनेतर लेखको ने भी इन रूपो का उपयोग किया। जैनेतर कवियो मे एक श्रीधर व्यास थे, जिन्होने 'रणमल्लछन्द' नाम का एक वीर काव्य लिखा (सन् १३९१ ई०)। मुसलमान कवि अब्दुल रहमान ने 'सन्देश रासक' (१४२० ई०) काव्य की रचना की। अधिकांशत. यह अपभ्रंश में है। १५वीं शताब्दी के आरंभ मे भीम ने 'सदयवत्सचरित्र' की रचना की। इसकी कथा का आधार एक लोक प्रेम-कथा है। कई शताब्दियो तक पद साहित्य भी किसी-न-किसी रूप में चलता रहा। भक्तिपरक पद प्राय. भजन के रूप में थे। इस प्रकार प्राचीन तथा मध्यकालीन काव्य का रूप गीता-त्मक और वर्णनात्मक दोनो था। हम कुछ रूपो पर यहाँ विचार करेंगे।

रास तथा रासो—रास अथवा रासो देशी रागों में रचित वह काव्य है, जिसकी सामग्री या तो धार्मिक होती थी अथवा वर्णनात्मक। कभी-कभी इनकी कथावस्तु किसी सन्त या धार्मिक नेता की जीवनी होता थी। उस काव्य में तत्कालीन देश तथा समाज की अवस्था का परिचय भी होता था। उस समय की भाषा के रूप को समझने में ये काव्य भाषा शास्त्रियों की भी बड़ी सहायता कर सकते हैं। प्रायः ये काव्य बहुत छोटे होते थे और जनता की रुचि के अनुकूल भाषा में रचे गये थे, जिनका तात्पर्य रोचक शैली में लोगों को धार्मिक उपदेश देना होता था। जैन ग्रन्थों का नायक तो प्रायः बहुत बड़ा धार्मिक होता ही है। यद्यपि ग्रन्थ के आरम्भ में कुछ शृंगार रस होता तो भी अन्त ऐसा ही होता है कि अनेक प्रलोभनों के होते हुए भी नायक का चरित्र शुद्ध रहा और बाद में पवित्र आचरण, वासनाओं का दमन तथा तप का उपदेश रहता है। अपभ्रंश साहित्य में भी रासों की रचना हुई है। जैन मंदिरों अथवा उत्सवों में गाने या अभिनय करने के उद्देश्य से ये रचे गये थे। कालान्तर में गायन तथा अभिनय के तत्त्व क्षीण हो गये और वर्णन-तत्त्व की प्रमुखता हो गयी। रास के तीन मुख्य अंग हैं—भाषा, ठवणी और वस्तु। ऋषभदेव, नेमिनाथ एवं महावीर-जैसे तीर्थंकरों के जीवन-चरित्र, जम्बू स्वामी, स्थूलिभद्र तथा दूसरे जैन-सन्त, वस्तुपाल तेजपाल, जाडू, पद्म आदि जैन व्यापारी, पौराणिक पात्र, किसी तीर्थ के माहात्म्य का वर्णन—यही रास के विषय थे। कुछ समय बाद इस प्रकार का साहित्य घिसा-पिटा-सा हो गया, इसमें कोई नवीनता न रही और उसमें काव्यानन्द का लोप होने लगा। आज उनकी एकमात्र उपयोगिता यही है कि उनसे तत्कालीन स्थितियों का ज्ञान होता है। उनके द्वारा ऐतिहासिक, सामाजिक, राजनीतिक, भौगोलिक तथा जीवनी सम्बन्धी अनेक बातें विस्तार से जानी जा सकती हैं।

रासो शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत के 'रासक' शब्द से हुई है। वाग्भट्ट के 'काव्यानुशासन' की वृत्ति में रासक गेय के रूप में वर्णित है और ऐसा बताया गया है कि उसमें बहुत-सी नर्तकियाँ होती हैं, विभिन्न ताल और लय उसमें होती हैं उसमें ६४ जोड़े भाग लेते हैं। नर्तकियों के भाग लेने के कारण तथा विभिन्न रागों में गाये जाने के कारण रास की मौखिक रचना इस प्रकार होती थी

जिससे वह गाया भी जा सके तथा अभिनीत भी हो सके। शारदातनय ने अपने 'भाव प्रकाशन' मे तीन प्रकार के रासक नृत्य बताये है। एक है 'दडरासक', जिसमे लकडी के छोटे डडे बजाकर ताल दी जाती है, दूसरा है 'तालीरासक', जिसमे तालियो से ताल दी जाती है, तीसरा है 'लतारासक', जिसमे हर जोडे का एक व्यक्ति दूसरे जोडे के एक व्यक्ति के साथ बँध जाता है। वर्तमान काल मे जब पुरुप रास नृत्य करते है, तब वह 'होंच' और जब स्त्रियाँ नृत्य करती है, तब वह 'हमची' कहलाता है। कभी-कभी स्त्री-पुरप मिलकर भी यह रास नृत्य करते है। आगे चलकर भाव एव गेयता के तत्त्व क्षीण होने लगे और रास केवल धार्मिक आख्यान अथवा उपदेश-आदेश के रूप मे रह गया। केवल प्राचीन जैन-साहित्य मे ही लंबी धार्मिक कविताओ की यह वर्णन-शैली अनिवार्य रूप मे पायी जाती है। अब्दुल रहमान, एक मुसलमान कवि, ने 'सन्देशरासक' लिखा है। रासक अथवा रास एक छन्द विशेष का नाम भी है और वह छन्द 'सदेश रासक' मे बहुत प्रयुक्त हुआ है। कालिदास के 'मेघदूत' की भाँति यह एक 'दूतकाव्य' है। कोई भी कविता, जिसमे रास छन्द अधिकता से हो, रासक के नाम से पुकारी जा सकती है। इसी दृष्टि से 'सदेश रासक' एक रास है।

फागु अथवा फाग—फागु अथवा फाग फाल्गुन मास से बना है। फाग उस प्रकार की कविता को कहते है, जिसमे वसत ऋतु एव शृगार रस का वर्णन हो तथा जिसमे गेयता का गुण हो। वस्तुत वसत ऋतु मे आमोद-प्रमोद की सभी बाते फाग कहलाती है। कालिदास ने अपने ग्रथ 'ऋतु-सहार' मे सभी ऋतुओ का वर्णन किया है किन्तु वे तत्-तत् ऋतुओ के समय मे केवल प्रकृति के वर्णन है, न तो उनमे कोई धार्मिक भाव है और न उनमे किसी नायक अथवा नायिका का जीवन चरित ही है। जैनो ने इस फाग और वसत को आधारभूमि बनाकर [illegible] का अत सयम तथा त्याग की प्रशसा से किया है। अत मे नायक और नायिका [illegible] धर्म मे दीक्षित होते बताये जाते है। फागु के इन काव्यो मे विविध प्रकार के छन्द है और [illegible]नकी भाषा बड़ी आलकारिक है। आरभ मे नायक-नायिका में वियोग [illegible] है, किन्तु अत मे दोनो का मिलन होता है। यह रासो का ही सक्षिप्त रूप है और चूँकि इसमे नायक-नायिका का प्रेम ही प्रधान रूप

में वर्णित रहता है, इसलिए यह अधिक गीतात्मक हो जाता है। प्रकृति-वर्णन, विशेष कर वसन्त का, तथा विप्रलम्भ और संभोग दोनों शृंगारों के वर्णन भी इसमें होते हैं। इसकी भाषा शब्दालंकारों एवं अर्थालंकारों से पूर्ण होती है। जैनों ने अपने प्रसिद्ध संतों नेमिनाथ तथा स्थूलिभद्र आदि पर ऐसे काव्य रचे हैं। यद्यपि मूलतः वसन्त में ही प्रेम का वर्णन फागु में होता था, तथापि जैनों ने 'सिरिथूलिभद्द फागु' में वर्षा का वर्णन किया है साथ ही अंत में उन्होंने धार्मिक उपदेश भी जोड़ दिये हैं। जैनेतर कवियों ने भी फागु की रचना की है। उन्होंने मुख्यतः कृष्ण-गोपियों का लीलाओं का वर्णन किया है। मध्यकाल की सर्वश्रेष्ठ फागु रचना 'वसंत विलास' है। इसमें शुद्ध रूप में वसन्त ऋतु प्रेमी-प्रेमिका के मिलन-व्यवहार तथा शृंगार रस का वर्णन है। किन्तु जैनेतर कवियों की फागु-संख्या से जैन कवियों की फागु-संख्या बहुत अधिक है।

षड्ऋतु—जैसे फागु में केवल वसंत वर्णन होता है वैसे ही मध्यकाल की ऐसी भी रचनाएँ हैं, जिनमें छः ऋतुओं का वर्णन है। एक रचना है 'षट्ऋतुवर्णन' (१८वीं शताब्दी), जिसकी रचयित्री हैं इन्द्रावती। दूसरी रचना कवि दयाराम का 'षड्ऋतु विहार वर्णन' है (१९वीं शताब्दी)।

बारहमासा—इस प्रकार के काव्य में सभी ऋतुओं और १२ महीनों का वर्णन रहता है। इसमें नायक-नायिका का वियोग वर्णन रहता है अतः मुख्य रूप से इसका स्थायी विषय विप्रलम्भ शृंगार होता है। यद्यपि आरंभ में वियोग बताया जाता है तथापि अंत में दोनों का मिलन करा दिया जाता है। सन् १२८४ ई० में विनयचन्द्रसूरि ने 'नेमिनाथ चतुष्पदिका' की रचना की जिसमें प्रथम-सा जैन-बारहमासियाँ हैं। अनेक जैनेतर कवियों ने भी राधा-कृष्ण तथा सीताराम आदि का वियोग और पुनर्मिलन दिखाने के लिए बारहमासी शैली अंगीकार की है यहाँ तक कि वर्तमान काल के नर्मदाशंकर और दलपतराम ने भी ऋतु वर्णन तथा बारहमासा के रूप को अपनाया है। किन्तु उनके बाद वर्तमान साहित्य में इस रूप की वृद्धि नहीं हुई।

कक्को—कक्का का अर्थ है 'क' से आरम्भ होने वाली वर्णमाला, जो प्रारम्भिक शालाओं में बच्चों को सिखायी जाती है। कविता की रचना इस प्रकार

की जाती है कि प्रत्येक पंक्ति का पहला अक्षर वर्णमाला क्रमिक अक्षर होता है। वर्णमाला के ५२ अक्षर मातृकाएं कहलाते हैं। जैन साधुओं ने इस विशेष रीति को केवल धर्म और नीति की शिक्षा देने के लिए अपनाया था। इसके द्वारा ज्ञान और सांसारिक बुद्धि का विकास भी किया जा सकता है। धीरा, प्रीतम तथा जीवणदास आदि जैनेतर कवियों ने इसका उपयोग किया है। इन काव्य द्वारा निरुद्यमी व्यक्तियों पर बल्वती भाषा में कटाक्ष-प्रहार किया गया है। 'हितशिक्षा' वह रूप है, जिसमें शिक्षाएँ दी जाती हैं, किन्तु उसमें भी कक्को शैली अपनायी गयी है।

विवाहलु—जहाँ तक जैनों का संबंध है, उन्होंने दीक्षा का वर्णन विवाह के रूपक में किया है, यह विवाह साधुओं और संयमश्री के बीच माना गया है। जैनेतर लेखकों ने पौराणिक ढंग से विवाह की चर्चा की है, किन्तु वे वर्णनात्मक काव्य मात्र हैं। यद्यपि उनमें विवाह शब्द प्रयुक्त हुआ है, तथापि रूपकत्व का निर्वाह उनमें नहीं है।

प्रबंध—प्रबन्ध मुख्यत ऐतिहासिक काव्य है, जिनमें किसी विशेष कोटि के नायकों का चरित्र वर्णित रहता है। इनका नायक कोई योद्धा होता है अथवा धार्मिक नेता, कोई महादानी अथवा महान् मानवता-सेवी। नायक का यशोगान या तो प्रबन्ध में होता है अथवा पवाडा में, यह श्लोकों में भी होता है तथा छंदों में भी। वीरत्व का निरूपण करने में ये चारों रूप समर्थ हैं। यही कारण है कि मध्यकालीन गुजराती साहित्य में चरित, पवाडो, प्रबंध, रासो, छन्द तथा श्लोक लगभग पर्यायवाची के रूप में प्रयुक्त हुए हैं। प्रबन्ध में वीररस का वर्णन बड़ी ओजपूर्ण शैली में होता है और उसकी कथावस्तु इतिहास तथा किंवदंती का मिश्रण होती है। यद्यपि शालिभद्र सूरि का 'भरतेश्वर बाहुबलि रास' (११८५ ई०) रास के नाम से ज्ञात है, किन्तु इसे प्रबंध भी कहा जा सकता है। प्रबंध कही जानेवाली इन लंबी कविताओं में वीररस प्रधान होता है। किन्तु मुक्तकों में भी वीररस उसी मात्रा में पाया जाता है। हेमचन्द्राचार्य के व्याकरण में ऐसे मुक्तक बहुत हैं। हिन्दी साहित्य में यह काल जब खुमान-रासो, बीसलदेवरासो और चन्दबरदाई के पृथ्वीराजरासो की रचना हुई,

बारहमासा कहलाता है। 'समरारास' में अम्बदेव ने समरसिंह के नेतृत्व में सं० १३७१ में आगत जैन संघ द्वारा की हुई तीर्थयात्रा, संघयात्रा तथा आदिनाथ के शत्रुंजय मन्दिर के नवीनीकरण का वर्णन है। ('कान्हडदे प्रबन्ध' की रचना सं० १५१२ में पद्मनाभ ने की थी। इसमें जालगिरा कान्हडदे की वीरता का वर्णन है, जब उसने अलाउद्दीन खिलजी की सेनाओं का सामना किया था। सं० १५७४ में गणपति ने 'माधवानल-कामकन्दला प्रबन्ध' की रचना की। उसने इस प्रबन्ध को ८ अंगों में विभक्त करते हुए २५०० दोहों में लिखा है। इसका नायक माधव है और नायिका कामकन्दला उज्जैन निवासिनी एक गणिका की पालिता पुत्री है। नायक-नायिकाओं के विख्यात राजा विक्रम द्वारा दोनों का मिलन होता है। पूर्णिमागच्छीय आचार्य मलदास के प्रवर्तक श्री वल्लभाचार्य का जीवन चरित गोपालदास ने अपने 'वल्लभाख्यान' में वर्णन किया है। इसकी रचना विभिन्न भागों में हुई है और वल्लभ सम्प्रदाय के अनुयायी बड़ी भक्ति से इसे गाते हैं। सं० १६६६ में भीम ने 'सदयवत्स सावलिंगा प्रबन्ध' लिखा जिसकी कथावस्तु सदयवत्स और सावलिंगा की प्रसिद्ध कहानी से ली गयी है। जो संस्कृत का प्रसिद्ध ग्रन्थ 'प्रबन्ध चिन्तामणि' के रचयिता थे, उनके लिए उदयसागर सूरि ने सं० १६६७ में 'विमल दान प्रबन्ध' की रचना की। सामान्यतः प्रबन्ध शब्द का प्रयोग किसी विशेष घटना के काव्यमय वर्णन के लिए होता है किन्तु विशिष्ट रूप में इसका प्रयोग किया ऐतिहासिक काव्य में है। जिनका उल्लिखित मुख्य पात्र कथा के साथ लिया रहता है यद्यपि इन कृतियों का मूल कथानक ऐतिहासिक नहीं है, किन्तु किन्हीं में तत्कालीन समाज और संस्कृति पर भी प्रकाश डाला गया है। पौराणिक पात्र भी रास के पात्र होते हैं और रास तथा प्रबन्ध पर्याय माने जाते हैं। यद्यपि चरित प्रबन्ध रूप में हो सकता है किन्तु यह काव्यमय रूप आवश्यक रूप में लिखा नहीं जाता है।

छन्द पवाड़ा, सलोका—इन सब का सम्बन्ध है आरती अथवा मात्राओं का एक निश्चित रूप। यदि पवाड़ा वीरों की स्तुति के लिए इस विशिष्ट रूप का प्रयोग अधिक प्रचलित हुआ इस काल में उस कविता का भी नाम रूप रखा गया जिसमें किसी नायक का गुणगान होता था। इसी प्रकार पवाड़ा

और सलोका भी इसी कोटि की रचना की जाती है। ७० दोहों में लिखा हुआ श्रीधर का 'रणमल्ल छन्द' वीर भाव का सर्वोत्तम काव्य है। शैली बड़ी गम्भीर और सबल है तथा इसमें ईडर के रण मल्ल की वीरता का वर्णन है, जब कि पाटन के मुसलमान सूबेदार मलिक मुफर्रह सुल्तान के साथ उन्होंने युद्ध किया और उसे परास्त किया। छन्द की कुछ अन्य रचनाएँ भी हैं, जैसे 'अम्बाजी छन्द', 'भवानी नो छन्द', 'राव जैतसी रो छन्द'। ये छन्द देवी या नायक की स्तुतियाँ हैं।

पवाडा तथा सलोका भी इसी प्रकार प्रशस्ति काव्य हैं। पवाडा में नायक की महत्ता बहुत बढ़ा-चढ़ाकर कही जाती है। पवाडा प्राय चौपाई छन्द में होते हैं। बीच-बीच में कुछ दोहे तथा दूसरे छन्द भी आ जाते हैं। सं० १४७१ में रची हुई कवि असाइत की 'हंसाउली' रचना एक पवाडा ही है। हीराचन्द सूरि ने सं० १४८५ में 'विद्याविलास पवाडो' की रचना की।

शब्द सलोका संस्कृत के श्लोक शब्द का ही तद्भव रूप है, जिसका अर्थ होता है किसी वीर नायक की प्रशंसा में युक्त एक कविता। कवि शामल ने सं० १७८१ में 'रुस्तमनो सलोको' की रचना की, जो ३६१ कड़ियों में एक ऐतिहासिक कविता थी। इसी प्रकार 'माणनो सलोको' तथा 'नेमजीनो सलोको' भी हैं।

चच्चरी तथा धवल—चच्चरी प्राकृत साहित्य में लिया हुआ काव्य का वह रूप है, जो गाया जा सके। इसी प्रकार धवल या धोल भी अपभ्रंश साहित्य से आया है, जो धार्मिक अवसरों पर गाया जाता है। धोल का रूप तो १९वीं शताब्दी तक मध्यकालीन जैनेतर कवियों में प्रसिद्ध था।

आख्यान—आख्यान का रूप कुछ-कुछ रासो से मिलता है। किन्तु उनमें अन्तर भी है। आख्यान अधिक मनोरंजक होते हैं और उनके वर्णन इतने लंबे नहीं होते कि अरुचि उत्पन्न हो जाय। रासो की रचना अन्त में उपदेश देने के लिए की जाती थी, किन्तु आख्यानों का अन्त इस प्रकार नहीं होता। आख्यानों की कथावस्तु पुराण अथवा इतिहास से ली जाती है। संस्कृत के मौलिक ग्रंथों से भी वे प्रेरणा प्राप्त करते हैं। इनकी रचना अत्यन्त कलात्मक होती है और गुजरात की मध्यकालीन काव्यधारा में इनकी बड़ी विशेषता थी। इनकी रचना

विभिन्न दर्शी रागों में होती है जिनमें गाने में नया कण्ठस्थ करने में बड़ी सरलता होती है। जब किसी कुशल गवैये द्वारा ये ठीक ढंग से गाये जाते हैं, तब श्रोताओं पर इनका निश्चित प्रभाव पड़ता है। प्रच्छन्न रूप से ही इनमें नीति या धर्म की शिक्षा दी जाती है। अत्यन्त सुरुचिपूर्ण ढंग से अनेक धार्मिक कहानियां गाकर लोगों का मनोरंजन किया जाता है। इस प्रकार जनता में भक्तिरस के प्रचार और पुष्टिकरण में बड़ी सहायता मिलती थी। इन्हीं कारणों से आख्यान समाज के निम्नतम वर्ग के लोगों में भी पहुँच गये थे। आख्यानों ने धार्मिक संस्कारों की रक्षा करके सुग्राह्य रूप में भक्ति-साहित्य प्रदान किया। १४वीं शताब्दी से आगे तक, जब गुजरात मुसलमानी शासन में आ गया, हिंदुओं का जीवन, परम्पराएँ, त्यौहार तथा विचार इन्हीं आख्यानों में सुरक्षित रहे। जो सेवा रासो साहित्य ने जैन धर्म की की, वही सेवा आख्यान-साहित्य ने जैनेतर हिंदू-समाज की की।

किसी गत घटना के वर्णन को आख्यान कहते हैं। इसका यह भी अर्थ है कि किसी मुख्य घटना का पूर्ण एवं सविस्तार वर्णन— आसमन्तात् ख्यानम्। मनुस्मृति के अध्याय ३ श्लोक २३२ में कहा गया है कि श्राद्ध समाप्त होने पर मनुष्य को आख्यान की कथा सुननी चाहिए। इससे स्पष्ट है कि आख्यान का महत्व श्राद्ध-जैसे पवित्र कृत्यों में भी था। आख्यान सुनने की वस्तु है पढ़ने की नहीं। कथावस्तु प्रायः सबकी जानी-समझी रहती है। अतः कथा आरम्भ होते ही लोग बिना किसी कष्ट के समझने लगते हैं। विभिन्न पात्र एवं घटनाएँ एक-एक करके खुलती चलती हैं और प्रायः सभी रसों का समावेश रहता है। नाटक-तत्त्व भी बड़ी कुशलता से प्रविष्ट होता है। यह साहित्य केवल धुरंधर विद्वानों के लिए ही नहीं, वरन् सर्वसाधारण के लिए लिखा जाता है इसीलिए इसकी भाषा कठिन नहीं होती। गुजराती साहित्य में आख्यान का यह रूप बहुत पुराना है। नरसिंह मेहता को इस प्रथम आख्यानकार कह सकते हैं। भालण, नाकर तथा दूसरों ने इसकी परम्परा जीवित रखी, किन्तु इसका चरम विकास प्रेमानन्द के समय में हुआ। उनके बाद श्यामल तक यह रूप किसी प्रकार बना रहा किन्तु उसके बाद तो धीरे धीरे यह लुप्त होने लगा।

आख्यान की रचना विभिन्न देशी पद्यों मे होती है। एक आख्यान के कई कडवा तथा प्रत्येक कडवा मे कई दोहो के वर्ग होते है। एक कडवा के तीन भाग होते है। प्रथम राग कहलाता है, द्वितीय को ढाल और तृतीय को वलण अथवा उथल्लो कहते है। नरसिह मेहता के तीन आख्यान है—गोविंद गमन, सुरत सग्राम, सुदामा चरित्र। इसी प्रकार उनके जीवन की कुछ घटनाएँ है, जब भगवान् कृष्ण से उन्हें सहायता प्राप्त हुई। वे भी आख्यान-बद्ध है—जैसे, 'हारमालाना पद', 'विवाह', 'हुडी'। भालण ने कडवाबन्ध आख्यान के रूप को विकसित किया। वैश्य कवि नाकर ने भालण का अनुकरण करके कई आख्यानो की रचना की। प्रेमानद ने नाकर की कुछ रचनाओ का उपयोग नयी सामग्री के रूप मे किया और उन्हें अधिक कलात्मक रूप दिया। नरसिह मेहता का जीवन-चरित भी आख्यानो का विषय बन गया है।

पद्यात्मक लोकवार्ता—कहानियाँ आनन्ददायिनी होती है। बच्चे से लेकर बूढे तक सभी अच्छी कहानियाँ सुनना चाहते है। एक कुशल कहानीकार एक कहानी मे सभी रसो का समावेश कर देता है। एक अच्छी कहानी घटना द्वारा या घुमा-फिरा कर नैतिक उपदेश भी कर सकती है। आनन्दप्रद होने के साथ-साथ कहानियाँ जन-शिक्षा का काम भी कर सकती है। पंचतत्र के आख्यानो की रचना राजकुमारो को नीतिशास्त्र की शिक्षा देने के लिए हुई थी। सस्कृत की बहुत-सी वार्ताएँ लोक-कथा से ली गयी है। संस्कृत कथा-साहित्य की एक विशेषता है कि एक मुख्य कथा में अनेक उपकथाएँ जोड़ दी जाती है। 'कथा सरित्सागर', 'वेताल पचविंशति', 'सिंहासन द्वात्रिंशिका', 'भोजप्रबध' तथा 'शुक सप्तति' इसी प्रकार के सस्कृत ग्रथ है। इन लोककथाओ के पात्रो मे मानवता अधिक होती है, पुराणो एव धर्मग्रन्थो के पात्रो का दैवत्व नही। प्रचलित विश्वासो के अनुसार समय को देखते हुए इन पद्यात्मक लोकवार्ताओ मे आश्चर्य, मत्रसिद्धि तथा चमत्कार आदि के तत्त्व रखे जाते है।

पद्य वार्ताओ की रचना मुख्यत दूहा, दोहरा, सोरठा, चौपाई और छप्पई मे होती है। कभी-कभी ये खण्डो मे विभक्त होती है। इस रूप को विकसित करने मे जैन कवियो का भी बहुत बडा हाथ था। रासो के अतिरिक्त—जो मुख्यत. धार्मिक होते थे—जैन कवियो ने अनेक प्रबधो की रचना की है, जिनमे

लोकवार्ताएँ वर्णित हैं। जैनेतर कवियों ने भी इस रूप को सँवारने में भाग लिया। 'विक्रम कथा', 'नन्द बत्तीसी' (नरपति) 'सदयवत्स चरित्र' (भीम), 'कामकन्दली रा पद्यानुवाद' (नाल्ण), 'कपूर मंजरी' (मतिसार), 'रस-मञ्जरी' (वच्छराज), 'कामसेन-कामवती और 'हंसावली' (शिवदास) 'कामबनी' (वीरजी) 'मित्र समाख्यान' (वल्लभ) तथा महाकवि शामल की अनेक पद्य लोकवार्ताएँ—ये सब पद्य लोकवार्ता रूप की प्रमुख रचनाएँ तथा रचनाकार हैं।

इनमें से कई वार्ताओं का नामकरण नायिका के नाम पर हुआ है जो प्राय बड़ी दक्ष, बुद्धिमती और चतुर होती है। इन वार्ताओं में घटनाएँ चमत्कार, सहसा स्थिति-परिवर्तन, देवताओं का प्राकट्य तथा ऐसे ही साधन स्थान-स्थान पर पाये जाते हैं। इन कहानियों में पुरानी कहावतों तथा उपमाओं के प्रयोग की प्रवृत्ति पायी जाती है। श्रोताओं को पहले ही पता लग जाता है कि वार्ता का आरम्भ कैसे होगा और किन वस्तुओं की उपमा किनसे दी जायगी। रास-रंग, भूत-प्रेत, शकुन, ज्योतिष, जादू, मंत्रविद्या, काली कल्दा भगत कूदरा में विश्वास का होना इन लोक-वार्ताओं में प्राय पाया जाता है।

जैसे प्रेमानन्द सर्वोत्कृष्ट आख्यानकार माने जाते हैं, वैसे ही शामल (सं० १७८० से १८२१) सर्वोत्कृष्ट पद्य लोक-वार्ताकार माने जाते हैं। सं० १७७४ में उन्होंने 'पद्मावती की वार्ता' लिखी। राजा विक्रम सम्बन्धी सिंहासन द्वात्रिंशिका के आधार पर उन्होंने 'बत्रीस पुतली' की भी रचना की। उनकी इस रचना ने उन्हें एक महान् कवि बना दिया। उनके आश्रयदाता थे रखीदास, जिनके लिए 'सुडाबहोतेरी', 'नन्दबत्रीसी', 'मदनमोहना' आदि ग्रंथ लिखे हैं। उनकी रचनाएँ प्राय वर्णनात्मक हैं और उनमें कोई लम्बी कहानी रहती है जिसमें अच्छी सम्मति या उपदेश रहते हैं। उनके कुछ छप्पय सहृदय के सुभाषितों की तरह हैं। उन्होंने भी एक मुख्य कथा में कई उपकथाओं को बुना है। किसी का प्रत्युत्पन्नमतित्व परखने के लिए समस्यापूर्ति होती है। इसका भी अच्छा उपयोग हुआ है। उन दिनों, जब कि जन-साधारण की शिक्षा का कोई प्रबन्ध न था पद्य वार्ताएँ केवल जन रंजन के काम में ही आती थीं वरन् उन्हें धार्मिक तथा नैतिक ज्ञान भी देती थीं। कभी-कभी शामल कवि ने पुरानी कथा का

अपने समय के रंग मे रंगकर उपस्थित किया है। उनकी भाषा बडी सादी तथा अर्थपूर्ण होती थी। उनकी मुख्य विशेषता थी कथा का शीघ्रगामी कार्य-व्यापार। सूक्ष्मता के लिए उनमे स्थान न था। वे जन-कवि थे। उनके स्त्री-पात्र अत्यन्त बुद्धिमान् होते थे। उनकी कहानियो मे हमें तत्कालीन समाज का—ग्रामजीवन का भी—ज्ञान होता है। किन्तु यही विशेषताएँ उनके कवित्व की सीमाएँ थी।

इन लोककथाओं में हमे विजातीय विवाह दीख पड़ते है। प्रेम-विवाह बहुत होते थे और प्रेम भी प्राय प्रथम दर्शन मे होता था। कही-कही तो नारियों की बडी प्रशसा की गयी है, किन्तु कही पर किसी विशेष कारण से पुरुष को पतन की ओर ले जानेवाली बतायी गयी है। किन्तु अधिकाशत नारियाँ शिक्षित और शिष्ट दिखायी गयी हैं। उनमे से कुछ तो जीवन भर ब्रह्मचारिणी रहने वाली है। कुछ पुरुष का छद्मवेश धारण करने वाली है और कुछ ने तो दूसरी महिलाओ से विवाह तक कर लिया, फिर अपने सहित उन महिलाओं को अपने पति को उपहार के रूप मे समर्पित कर दिया। अत्यन्त कुशल राजनर्तकियाँ भी इन कथाओ की पात्र है। पशु-पक्षी मनुष्य की भाषा में लोगो से बात करते है। कुछ पात्रो को तो अपने पूर्व जन्मो का भी पूरा ज्ञान रहता है। पर-काया-प्रवेश तथा अन्य चमत्कारो का भी इनमे वर्णन है। भयकर दृश्य भी कुछ कम नही है। सक्षेप में जन-रजन के लिए सभी रसों का समावेश बडी कुशलता से किया गया है।

रास-गरबो-गरबी—रासो एक धार्मिक और वर्णनात्मक काव्य कहा जाता है। किन्तु आरभ में इसमे भी गेय तत्त्व था। आगे चलकर इनमे कथा तत्त्व की प्रधानता होने लगी, तब गीतात्मक छोटे पद्यो को पृथक् मानकर रास करने लगे। रास वह गीत है, जो गाया जा सके और जिसका अभिनय हो सके। इसका सबध प्राय गुजरात तथा सौराष्ट्र के गोप-जीवन से है। लास्य नृत्य का मौलिक रूप इस प्रकार बताया जाता है—पार्वती ने बाणासुर की कन्या उषा को लास्य नृत्य सिखाया। उषा अनिरुद्ध की पत्नी बनकर द्वारका आयी और उसने वहाँ की गोपियो को वह नाच सिखाया। इन गोपियो ने सौराष्ट्र की महिलाओं को सिखाया और उनके द्वारा भारत के विभिन्न भागों की नारियो के पास यह

नत्य पहुँचा। लास्य नृत्य का कोमल रूप है और नारियों के अधिक अनुकूल है। परम्परा बताती है कि इसका आरंभ सौराष्ट्र में हुआ। हेमचन्द्र की मान्यता के अनुसार हल्लीसक और रासक एक ही हैं। यह गोपों की क्रीडा का एक प्रकार है। नरसिंह मेहता गोपनाथ महादेव की कृपा से रास देख सके थे। इस रास या लास्य के अन्तर्गत गान, वाद्य तथा नृत्य तीनों आते हैं। प्राचीन साहित्यकार के आधार पर अभिनव गुप्त ने रासक के लक्षण बताते हुए कहा है—"रास नत्य में विभिन्न प्रान्तों के लोगों की रुचि के अनुसार ताल और लय के कई प्रकार प्रविष्ट किये गये। उनमें से एक समण है तथा दूसरा उद्धत। प्रथम में विलम्बित लय और द्वितीय में द्रुतलय होती है। श्री शंकराचार्य अपने 'ललिता त्रिशती भाष्य' में हल्लीस-लास्य-सन्तुष्टा की व्याख्या करते हुए कहते हैं—लास्य वह नृत्य है, जिसमें कुमारिकाएँ रंगीन डंडा के साथ एक समान ताल में गाती हैं। वे 'हारावली कोश' का अर्थ भी उद्धृत करते हैं—नारियों का मण्डलाकार नृत्य हल्लीसक कहलाता है।

हल्लीसं चित्रदण्ड कुमारिकाभिः एकतालादियुक्तगीतपूर्वकं यल्लास्य ननम तस्मिन् सन्तुष्टा प्रीतिमतीत्यर्थ। 'नारीणां मण्डलेन च बुधा हल्लीसकं विदुः' इति हारावली कोशात् मण्डलाकारनृत्यसन्तुष्टेत्यर्थ। देवी के 'हल्लीसलास्यसन्तुष्टा' नाम से स्पष्ट है कि नवरात्र में गरबा रास का प्रचलन क्या अधिक है और गरबा गीतों में देवी की स्तुति क्यों की गयी है।

शारदातनय ने रास के ३ भेद बताये हैं। एक दण्डरासक है जिसमें डंडा की सहायता से ताल दी जाती है, दूसरा तालीरासक है जिसमें हाथों की तालियों से ताल दी जाती है (इसे मण्डलरासक भी कहते हैं), तीसरा लतारासक है, जिसमें प्रत्येक युग्म दूसरे के साथ मिल जाता है जैसे लता किसी वृक्ष में लिपटी रहती है। प्राचीन प्रथा से सिद्ध होता है कि इस लास्य नत्य में गुजराती महिलाएँ विशेष दक्ष होती हैं।

एक दूसरी परम्परा के अनुसार पाण्डव अर्जुन तीन वर्षों के लिए मणिपुर गये थे और वहीं मणिपुरी नृत्य सीखा। इन्द्र के आमन्त्रण पर अर्जुन भी गये थे जहाँ गंधर्वराज चित्ररथ से उन्होंने नत्य तथा अन्य कलाएँ सीखीं। विराट देश में अर्जुन स्त्री के वेश में बृहन्नला बनकर रहे थे और वहाँ राजकुमारी उत्तरा

को उन्होंने नृत्य तथा संगीत सिखाया। उत्तरा प्राय द्वारका जाया करती थी, अत वहाँ की महिलाओं ने उत्तरा से यह लास्य नृत्य सीखा। सौराष्ट्र में लास्य नृत्य या तो उपा द्वारा आया अथवा उत्तरा द्वारा।

गरवो शब्द की व्युत्पत्ति गर्भदीप से हुई है। मिट्टी की हाँडी में बहुत-से छिद्र करके उसमें दीपक रख दिया जाता है। यह हाँड़ी या तो मध्य में भूमि पर रखी जाती है या किसी महिला को बीच में खडा करके उसके सिर पर रखी जाती है, फिर अन्य महिलाएँ गरवो गाती हुई गोलाई में घूमती हैं। इस गरवा नृत्य में दीप की प्रदक्षिणा की जाती थी, जो शक्ति अथवा देवी का प्रतीक होता था, इसीलिए इस गाने का नाम भी गरवो पड गया। मध्यकालीन गरवा-लेखकों में वल्लभ मेवाडा सर्वश्रेष्ठ है। उन्होंने शक्ति की महानता का वर्णन किया है। उनके कई गरबे प्रसिद्ध हैं और प्राय गाये जाते हैं। भानुदास, रणछोडजी दीवानजी तथा दूसरों ने भी अपने गरवों में देवी की महिमा गायी है। दयाराम ने अपने 'व्रजवासिनी नो गरवो' में राधा का वर्णन किया है। इस प्रकार गरवा का अर्थ वह पद्य हो गया, जो वृत्ताकार घूम-घूमकर गाया जाता हो। गुजरात में गरवा नवरात्र में—विशेपकर आश्विन मास में—गाया जाता है। गरवा-लेखकों की संख्या अधिक है। वल्लभ मेवाडा सर्वोपरि थे। 'शणगार', 'आरासुर', 'आनन्द', 'श्रीचक्र', 'गागर' आदि उनके कुछ उत्कृष्ट गरबे हैं। देवी-महिमा के अतिरिक्त गरवों में कृष्ण-राधा अथवा कृष्ण-गोपियों की लीलाएँ भी वर्णित हैं, जैसे रासलीला, दानलीला आदि। सामाजिक घटनाएँ भी गरवों का विपय रही हैं। रासडा का एक प्रकार रोलो है, जो सूरत में विशेप प्रचलित था। रासडा वह काव्य है, जिसमें एक ही भाव पर बल देने के स्थान पर किसी घटना का वर्णन विस्तारपूर्वक करता है। गरबी की अपेक्षा यह कुछ अधिक बडा होता है और कोमलता कम होती है।

गरबी संक्षिप्त और गीतात्मक होती है। यह अपने में पूर्ण एक पद्य है, जो किसी एक विचार, भाव या घटना को अपना विपय बनाता है। शब्दावली इसकी बडी मधुर होती है। अपेक्षाकृत गरवा अधिक वर्णनात्मक होता है। किसी असाधारण घटना का विशेप वर्णन रास में होता है। गरवा का उद्देश्य बाह्य दृश्य का वर्णन करना तथा गरबी का उद्देश्य किसी अन्तर्भाव को

प्रकट करना है। भावों की अभिव्यक्ति में यह बड़ी सहायक है। गरबों की रचना देशी रागों में होती है। वल्लभ भट्ट मेवाड़ा अपने देशी के गरबा तथा दयाराम मधुर गरबियों के लिए प्रसिद्ध हैं। सौराष्ट्र में गरबा पुरुष गाते हैं, उनकी मुद्राएँ और भाव भंगिमाएँ पुरुषोचित तथा सबल होती हैं। किन्तु गुजरात की गरबियों में कला एवं कामना अधिक है। नरसिंह, मीरा, भाण, वल्लभ, स्वामी नारायण, दयाराम तथा दूसरे कवियों ने गरबियों की रचना की है। नमदाशंकर, नवलराम तथा दलपतराम ने भी गरबी-साहित्य की रचना में योग दिया है। मणिलाल, नरसिंहराव, खबरदार और गोवर्धन राम ने भी गरबी रची हैं। वर्तमान समय में रास तथा गरबी के श्रेष्ठ लेखक के रूप में नानालाल ने रास का एक नया युग आरम्भ किया है। खाटादकर, केशव भट्ट तथा दूसरों ने भी इस क्षेत्र में काम किया है। रास की ख्याति इतनी अधिक हुई कि आधुनिक नाटकों और चलचित्रों में भी कुछ रास गरबों की रचना आवश्यक समझी जाती है। नवरात्रि तथा जन्माष्टमी के अवसर पर गुजरात में रासों और गरबों का बहुत जोर हो जाता है। वस्तुतः प्रत्येक नया कवि एक रास अथवा गरबा की रचना करने को लालायित होता है। आधुनिक काल की कुछ गरबियों की रचना देशी रागों में न होकर शास्त्रीय रागों में हुई है। कुछ श्रेष्ठ आलोचकों ने इस प्रवृत्ति की आलोचना की है।

थाल एक ऐसी रचना है जिसमें भगवान् को समर्पित किये जाने वाले व्यंजनों का वर्णन रहता है। यह बड़ी भक्तिपूर्वक गायी जाती है। ऐसी रचनाओं के विशेष कवि प्रेमानन्द स्वामी हैं। आरती भगवत्-स्तुति है जो भगवान् की आरती (नीराजन) के समय गायी जाती है। भिन्न भिन्न देवताओं की भिन्न भिन्न आरतियाँ होती हैं जिनमें उन देवताओं की महत्ता वर्णित रहती है। शिवानन्द स्वामी की आरतियाँ बहुत प्रसिद्ध हैं। कृष्णा दध में नरसिंह मेहता के पद प्रभाती कहलाते हैं। योग के पद काफी और भाव के पद खावना कहे जाते हैं।

मध्यकालीन कवियों ने मुख्यतः देशी और मात्रामेल छन्दों में रचनाएँ की हैं। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि अक्षरमेल वृत्तों की रचना के जानते ही नहीं थे। 'रामस्तव छन्द' में भुजंगप्रयात छन्द का उपयोग किया गया

है। इसी प्रकार विभिन्न काव्यों में स्रग्विणी, द्रुतविलम्बित, उपजाति तथा दूसरे वृत्तों का उपयोग हुआ है। जैन एवं जैनेतर दोनों प्रकार के कवियों ने थोड़ी लघु-गुरु की स्वतन्त्रता के साथ अक्षरमेल वृत्तों का उपयोग किया है। फिर भी मात्रामेल तथा देशी छन्दों का उपयोग बहुत अधिक हुआ है, क्योंकि ये गाने, पढ़ने तथा कठस्थ करने में बड़े सुगम होते हैं।

गद्य-साहित्य—मध्यकालीन साहित्य में गद्य का स्थान अत्यन्त सीमित है। गद्य के कुछ रूप बालावबोधों, चित्रमय कहानियों, व्याकरण ग्रन्थों, औक्तिकों, कथासारों, रूपान्तरों तथा सस्कृत ग्रथ के अनुवादों में सुरक्षित हैं। 'पृथ्वीचन्द्र चरित्र' अत्यन्त कलात्मक एव उत्तम गद्य में लिखा गया है। बालावबोध किसी संस्कृत या प्राकृत ग्रंथ की व्याख्या, अनुवाद या रूपान्तर होता है जो साहित्य के आरम्भिक पाठक की समझ में भी सरलता से आ सके। इन ग्रन्थों में कुछ कहानियाँ ऐसी भी हैं, जिन्हें चित्रों द्वारा कहा गया है। जैन-साहित्य में ऐसे कई ग्रन्थ पाये जाते हैं। व्याकरण के आरम्भिक विद्यार्थियों की सुविधा की दृष्टि से गुजराती में लिखे हुए सस्कृत-व्याकरण के ग्रथ औक्तिक कहलाते हैं। इसी-प्रकार संस्कृत के महाभारत, रामायण, गीता, पद्य वार्ताओं तथा पुराणों के कथासार, रूपान्तर तथा अनुवाद गद्य में पाये जाते हैं। किन्तु सब मिलाकर पद्य-साहित्य की अपेक्षा गद्य का साहित्य बहुत ही कम है एवं इसमें उतने प्रकार भी नहीं हैं; साथ ही गद्य का सर्वथा अभाव रहा हो—ऐसी बात भी नहीं है।

नरसिंह मेहता के पूर्ववर्ती रचयिता

कम से कम सन् ५०० ई० से गुजरात की साहित्यिक भाषा अपभ्रंश थी। लगभग १२वीं शताब्दी को हम गुजराती का जननि-काल मान सकते हैं। हेमचन्द्र की मृत्यु (११७२ ई०) से लेकर नरसिंह मेहता की उत्पत्ति (१४१४ ई०) तक गुजराती भाषा एवं साहित्य का प्रथम युग है।

यद्यपि बौद्धों तथा हिन्दुओं ने भी अपभ्रंश को साहित्य का माध्यम स्वीकार कर उसका उपयोग किया है—तथापि मुख्यतः जैन साधुओं ने अपभ्रंश की स्थिति दृढ़ की। गुजराती भाषा का यह सौभाग्य है कि अभी हाल में अपभ्रंश का विशाल साहित्य प्रकाश में आया है, जो पुरानी गुजराती के अध्ययन के लिए पर्याप्त सामग्री प्रस्तुत करता है। अपभ्रंश के धर्म-साहित्य के अन्तर्गत चरित्र, महापुराण, महान् कथाएँ—जैसे 'पउम चरिय' और 'हरिवंश पुराण'—तथा कथाकोश आदि प्रमुख रूप में हैं।

उद्योतन सूरि (७७९ ई०) का 'कुवलयमाला' अपभ्रंश का एक उत्तम ग्रंथ है। यह प्राकृत में है जिसमें अपभ्रंश के पद्य आये हैं, साथ ही कहीं-कहीं गद्य का भी समावेश है। एक अनुच्छेद में मारु, गुर्जर, लाट तथा मालव-जैसे विभिन्न स्थानों के व्यापारियों की वाणी में भिन्नता बतायी गयी है।

कवि धनपाल ने २२ सन्धियों में एक अपभ्रंश-काव्य की रचना की है जिसका नाम है 'भविस्सत्त कहा' अथवा 'पञ्चमीकहा'। यद्यपि कवि का समय अनिश्चित है, किन्तु इसका काल हेमचन्द्र से लगभग एक या दो शताब्दी पूर्व माना जाता है। यह हस्तिनापुर के शानकुमार भविष्य (कथा-नायक) तथा उसके अत्याचारी सौतेले भाई की कथा है। दोनों एक साहसिक यात्रा पर निकलते हैं। एक निर्जन द्वीप में भविष्य को उसका सौतेला भाई छोड़ देता है। वहाँ उसकी सहायता दशा के राजा अच्युतनाथ और मणिभद्र करते

है। यहीं एक रमणी का प्रेम उसे प्राप्त होता है। कुछ समय के बाद बन्धुदत्त का दल उन्हें द्वीप से ले जाता है। फिर वही घटना भविष्य के साथ घटती है। बन्धुदत्त उसे एक द्वीप मे छोडकर उसकी पत्नी को ले जाता है। फिर यक्ष-पति उसकी सहायता करते हैं। वह पुन. हस्तिनापुर लाया जाता है। अपराधियो को दंड दिया जाने वाला था, किन्तु भविष्य ने दयापूर्वक उन्हें छुड़वा दिया। अंत मे एक साधु जैन धर्म के सत्यो का वर्णन करता है। भविष्य को पूर्व जन्मो का स्मरण आता है और वह ससार को त्यागकर संन्यासी हो जाता है। धनपाल कवि ने लिखा है—धक्कड़ वनिक-परिवार मे उत्पन्न महेश्वर के पुत्र सरस्वती पुत्र ने इस काव्य की रचना की है।

हेमचन्द्र ने अपने व्याकरण मे स्वयं के तथा दूसरे कवियो के उद्धरण देकर तत्कालीन अपभ्रंश-कविता का एक रूप हमारे सामने प्रस्तुत किया है। द्वयाश्रय काव्य के आठवें सर्ग मे अपभ्रंश पर ही विचार किया गया है। सम्पूर्ण द्वयाश्रय केवल ऐतिहासिक रचना ही नही है, वरन् व्याकरण के नियम भी इसमें बताये गये हैं। हेमचन्द्र के व्याकरण मे उद्धृत रचनाएँ उस समय के साहित्य का रूप स्थिर करती है; और वह साहित्य पौराणिक, धार्मिक, उपदेशात्मक, शृंगारिक तथा वीरभाव से युक्त था, जो सरल और सुन्दर भाषा मे व्यक्त हुआ है। यही उस समय का लोक-साहित्य था। कुछ उदाहरण देखिए—

"पाइ विलग्गि अंत्रडी, सिरु ल्हसिउं खन्धस्सु।
तो वि कटारइ हत्थडउ, बलि किज्जउं कन्तस्सु॥"

भावार्थ—उसकी आँतें उसके पैरो मे फँसी है, उसका सिर कटकर उसके कंधों पर लुढक रहा है, तो भी उसका हाथ तलवार चला रहा है। अपने ऐसे कन्त की मैं बलि जाती हूँ।

"जीविउ कासु न वल्लहउं, धणु पुणु कासु न इट्ठु।
दोण्णि वि अवसर निवडिअइं, तिण सम गणइ विसिट्ठु॥

भावार्थ—प्राण किसे प्यारे नही होते? धन को कौन नही चाहता? किन्तु अवसर आने पर ये दोनो महान् वस्तुएँ तिनके के समान समझी जाती हैं।

"फोडेंति जे हियडउ अप्पणउ, ताहँ पराई कवण घृण ।
रक्खेज्जहु लोअहो अप्पणा बालहे जाया विसम थण ॥"

भावार्थ—जिन स्तनों ने स्वयं अपना हृदय विदीर्ण कर लिया, उनसे दूसरे लोगों के प्रति दया की क्या आशा की जाय ? हे लोगो ! सावधान रहो। रमणियों के स्तन बड़े निर्दय होते हैं।

मेरुतुंग के संस्कृत-ग्रन्थ प्रबन्ध चिन्तामणि में अपभ्रंश के भी कुछ दोहे हैं। 'मुञ्जरासप्रबन्ध' में भी अपभ्रंश के कुछ उत्तम दोहे पाये जाते हैं—

'मुंज भणइ मुणालवइ, जुव्वणु गयउ न झूरि ।
जइ सक्कर सयखंड थिय, तोइ स मीठी चूरि ॥'

भावार्थ—मुंज कहता है, 'हे मृणालवती ! यौवन के बीत जाने का दुःख मत कर, क्योंकि शक्कर के सैकड़ों खण्ड करने पर भी उसकी मिठास नहीं जाती।

जब मुंज को भिक्षा माँगने पर विवश किया जाता है तब उसे अपना मन्त्री रुद्रादित्य याद आता है, जिसने गोदावरी पार करने को मना किया था। मुंज कहता है—

"गय गय रह गय तुरय गय, पायक्कडा नि भिच्च ।
सग्गट्ठिय करि मंतणउ, मुहुता रुद्दाइच्च ॥'

भावार्थ—हे रुद्रादित्य ! हाथी, रथ, घोड़े प्यादा—इन सबको छोड़कर बिना नौकरों के मैं चले गये हैं, मुझ [illegible] कुछ ना। तुम स्वर्ग में हो और मैं तुम्हारी बात [illegible] यहाँ फँसा हूँ।

'जा मति पच्छइ संपजइ, सा मति पहिली होइ ।
मुंज भणइ मुणालवइ, विघन न वेढइ कोइ ॥"

भावार्थ—मुंज मृणालवती से कहता है कि जो बुद्धि विपत्ति पड़ने के बाद उत्पन्न होती है यदि वह पहले उत्पन्न हो जाय तो कोई संकट में न पड़े।

[illegible] अपभ्रंश [illegible] में [illegible] हैं। [illegible] है। [illegible] हुए हैं। [illegible] किया है।

* * *

यद्यपि अपभ्रंश-साहित्य ११वीं शताब्दी के बाद तक चलता रहा, किन्तु उस समय तक अपभ्रंश का पुरानी गुजराती का रूप ग्रहण करते जाना स्पष्ट लक्षित हो गया था। पुरानी गुजराती का प्रथम प्राप्य ग्रंथ है "भरतेश्वर बाहुबलि रास", जिसकी रचना शालिभद्रसूरि ने ११८५ ई० में की थी। ये भीमदेव द्वितीय के समय में सम्भवत पाटण में हुए थे। इसमें राजकुमार भरत तथा बाहुबलि और तीर्थंकर ऋषभदेव के युद्ध का वर्णन है। बाहुबलि अपने त्याग और तप के बल पर केवल ज्ञान प्राप्त करता है। इसमें प्रधान रस वीर है और अन्त में शान्त रस। दोहा, सोरठा, रोला, चौपाई आदि मात्रामेल छन्दों की भाँति ठवणी की २०३ कड़ियों में इसकी रचना हुई है, साथ ही इसमें गेय रास छन्द भी हैं। शैली बड़ी सशक्त है। यह हेमचन्द्र की मृत्यु के केवल ११ वर्ष बाद रचा गया था। इस सुग्रथित प्रबन्ध से हमें हेमचन्द्र के समय की भाषा का ज्ञान होता है और अभी तक तो पुरानी गुजराती का यही आदि ग्रंथ है। पहले 'जम्बूस्वामि रास' प्रथम रचना मानी जाती थी, किन्तु यह प्रबंध उनसे भी २५ वर्ष पूर्व का निकला। इसकी शैली और छन्दों में उस समय की रचनाओं से बहुत साम्य है। कुछ छन्दों को, जो किसी विशिष्ट ढाल में ही गाये जा सकते हैं, कवि ने रास छन्दों की संज्ञा दी है।

जैनों द्वारा लिखित रास और प्रबंध सैकड़ों की संख्या में हैं, किन्तु उनमें से अधिकांश में काव्य-तत्त्व नहीं है। परवर्त्ती रचनाएँ तो पूर्व का अनुकरण मात्र हैं और वर्तमान समय में वे पाठकों को आकर्षित करने में असमर्थ हैं। फिर भी उनमें भाषा का पुराना रूप रक्षित है, इसलिए उनका महत्त्व भाषा एवं भाषा-विज्ञान की दृष्टि से कम नहीं है।

शालिभद्रसूरि ने—संभवत वही, जिन्होंने 'भरतेश्वर बाहुबलि रास' की रचना की है—'बुद्धि रास' की भी रचना की है, जिसमें सर्वसाधारण के लिए कुछ अच्छे आदेशात्मक सूत्र हैं। यह ग्रन्थ ६३ कड़ियों में है। ऐसा प्रतीत होता है कि बाद में यह रास बहुत प्रसिद्ध हुआ। आदेशों की इस ढंग की परंपरा को जैन कवियों ने १९वीं शताब्दी तक जीवित रखा।

महेन्द्रसूरि के शिष्य धम्म ने 'जम्बूस्वामी रास' की रचना की। धम्म बहुत साधारण प्रतिभावाला था। इसमें उसने एक जैन साधु जम्बूस्वामी का

जीवनचरित सीधी-सादी भाषा में लिखा है। विजयसेनसूरि का 'रेवन-गिरि रासु' इसकी अपनी श्रेष्ठ ग्रंथ है। यह गाया जा सकता है और इसमें काव्यत्व है। रचयिता प्रसिद्ध मंत्रीद्वय वस्तुपाल और तेजपाल का गुरु था। संभवत यह ग्रंथ उस समय लिखा गया था, जब वह सं० १२९८ में वस्तुपाल और तेजपाल के साथ गिरनार गया था। ग्रंथ में गिरनार का अच्छा वर्णन अनुप्रास के साथ किया गया है साथ ही उन विभिन्न लोगों का भी वर्णन है, जिन्होंने मंदिरों का नवीनीकरण किया था। इससे विदित होता है कि सुवर्ण-रेखा के तट पर हरि दामोदर का एक वैष्णव मंदिर था। यह रास केवल गेय ही नहीं, वरन् अभिनेय भी था।

जिनपद्मसूरि ने १४वीं शताब्दी में नेमिनाथ चतुष्पदिका के अन्तर्गत एक बारहमासी गीत दिया है। अब तक प्राप्त यह सर्वप्रथम बारहमासी गीत है यद्यपि इससे पहले भी कई बारहमासी लिखे गये होंगे। इसमें विप्रलम्भ शृंगार की प्रधानता है। इसी प्रकार की भावना बाद के राधा-कृष्ण की बारह-मासियों में भी पायी जाती है। यहाँ करुण भावना नहीं है क्योंकि नायक-नायिका का थोड़े वियोग के पश्चात् पुनर्मिलन होता है। जैन बारहमासियों का अन्त नायक के जैन साधु के रूप में दीक्षा लेने से होता है। किसी अज्ञात कवि के 'सप्तक्षेत्रि रासु' में जो इसी समय का है कुछ धार्मिक कृत्यों का वर्णन मिलता है। इस रचना में ल्यगम छन्द का भी उपयोग किया गया है। जिनदत्त सूरि का एक विवाहलु है, जिसमें रूपक द्वारा नायक के साथ संयम नारी के विवाह का वर्णन है। इसमें कवित्व बहुत नहीं है। चलणा और वस्तु छन्दों का भी उपयोग इसमें पाया जाता है। 'पेथड रास' में पाटण के समीप मंडेर के पेथड़शाह द्वारा संघ निकालने का वर्णन है। जूनागढ में खेंगार और मंडलिक द्वारा पेथड-चतुआ का अच्छा स्वागत हुआ था। गुजराती में सवैया-जैसे कुछ नवीन छन्दों का प्रथम बार उपयोग हुआ। इसी प्रकार सं० १३६३ में रचित कच्छूली रास में कुछ ऐतिहासिक तथ्यों तथा उदयसिंह सूरि की वीरता का वर्णन है। पेथडरास और कच्छूली रास का भाषा तथा ढालों की दृष्टि से बहुत बड़ा महत्त्व है। अम्बदेव सूरि के 'समरा रासु' में शत्रुंजय यात्रा के अवसर पर समरसिंह के नेतृत्व में भवा नरपति देसल द्वारा संघ निकाले जाने

का वर्णन है। इसमें बहुत-सी ऐतिहासिक तथा भौगोलिक जानकारी प्राप्त होती है। इसमें अनेक प्रकार के देशी ढालों का प्रयोग हुआ है।

धवल गीत विशेष अवसरों पर गाये जानेवाले गीत हैं। अपभ्रंश के दो पुराने धवल प्राप्त हुए हैं। इनके बाद कुछ धवल और मिले हैं, जिनमें जिनप्रभसूरि की स्तुति की गयी है। इन रचनाओं में अरबी के भी कुछ शब्द हैं। ३८ दोहों में लिखी हुई सोलणु की एक कविता चच्चरी भी प्राप्त हुई है, जिसमें गिरनार की यात्रा का वर्णन है।

शालिभद्रसूरि ने सं० १४१० में 'पंच पांडव चरित' की रचना की। इसकी कथावस्तु महाभारत से ली गयी है। १५ ठवणियों में विभक्त ७९५ कड़ियों की इस रचना में संक्षेप से महाभारत की कहानी कही गयी है। साथ ही जैनधर्म की अनुकूलता के लिए इसे थोड़ा परिवर्तित भी किया गया है। इसमें अनेक प्रकार के बन्ध हैं। इस काल का दूसरा महत्त्वपूर्ण रास 'गौतम रास' है, जिसे विनयप्रभ ने सं० १४१२ में खंभात में रचा था। यद्यपि इसका कलेवर छोटा है, पर इसमें काव्य-सौन्दर्य बहुत है। इसमें अलंकारों का भी अच्छा प्रयोग है। इसके छन्द भी गेय हैं। जिनोदय सूरि ने ३७ कड़ियों में 'त्रिविक्रम रास' की रचना की है, जिसमें अपनी गुरु-परम्परा बताते हुए उन्होंने अपने पट्टाभिषेक का वर्णन किया है।

'पंचपांडव रास' के बाद शालिभद्रसूरि के विराट् पर्व में पौराणिक विषय पर हमें एक दूसरी कविता मिलती है। कवि ने १८२ अक्षरमेल वृत्तों में प्रसिद्ध महाभारत की कथा कही है। गुजराती साहित्य में, अक्षरमेल वृत्तों का यह विरल एवं सफल प्रयास है। दूसरा महान् प्रयास जयशेखर सूरि का 'त्रिभुवन दीपक' है, जो सं० १४६२ में रचा गया था। रचयिता ने 'प्रबोध चिन्तामणि' की रचना संस्कृत में और गुजराती पाठकों के लिए 'त्रिभुवन दीपक' की रचना की। यह एक रूपक काव्य है। आत्मा राजा माया द्वारा फँसाया जाकर कायानगरी में बन्दी बनाया जाता है। मंत्री मन शक्तिशाली हो जाता है। उसके पुत्र मोह ने राज्य पर अधिकार कर लिया, किन्तु उसके दूसरे पुत्र विवेक ने अपनी पत्नियों—संयमश्री तथा सुमति—की सहायता से उसे परास्त कर फिर राजा आत्मा को सिंहासन पर बैठाया। देशी छन्दों के

अनिश्चित कवि ने बड़ी सफलतापूर्वक अलग-अलग वृत्तों का भी प्रयोग किया है और प्रसाद शैली में श्रेष्ठ रास काव्य प्रस्तुत किया है। इसमें कुछ प्रास-युक्त गद्यांश भी हैं, जिन्हें 'वार्ता' कहते हैं।

फागु

इस काल युग में फागु नाम की कुछ रचनाएँ भी हुई हैं। इस भेद में काव्य साधारणतः वसन्त ऋतु-वर्णन से आरम्भ होता है और प्रियतम से विलग नायिका का शोक वर्णित रहता है। बाद में उसे कुछ शुभ शकुन होते हैं, उसका प्रेमी आ जाता है और दोनों का मिलाप होता है। इसमें पहले विप्रलम्भ और पीछे संभोग शृंगार होता है। कवि बड़े विस्तार से नायिका का सौन्दर्य, आस-पास के प्राकृतिक दृश्यों एवं लीलाओं का वर्णन करता है। जैन फागुओं का अन्त संयम तथा त्यागपूर्ण होता है और अन्त में नायक जैन दीक्षा लेता हुआ बताया जाता है।

अब तक प्राप्त सबसे प्रथम फागु १४वीं शताब्दी में लिखित जिन पद्म-सूरि का 'सिरि थूलि भद्द' माना जाता है। स्थूलिभद्र और श्रेयक पाटलिपुत्र के मन्त्री शकटाल के पुत्र थे। स्थूलिभद्र राजनर्तकी कोश्या के प्रेम में पड़कर १२ वर्षों तक उसके घर में रहा। इस बीच उनके पिता का देहान्त हो गया। अपने पिता के अन्त समय में न पहुँचने का उसे इतना पश्चात्ताप हुआ कि उसने संसार त्यागकर जैन धर्म की दीक्षा ले ली। अपने संयम की परीक्षा करने के लिए वह उसी गणिका कोश्या के यहाँ चातुर्मास बिताता है। कोश्या उसे आकर्षित करने के लिए बहुत प्रयत्न करती है, किन्तु वह शुद्ध मन से अपनी साधना में लगा रहता है। यद्यपि यह रचना फागु कहलाती है किन्तु इसमें वसन्त ऋतु-वर्णन नहीं है। इसके विपरीत इसमें वर्षा ऋतु का वर्णन है। किन्तु पृष्ठभूमि में शृंगार रस का वर्णन होने से रचना फागु कोटि में ली जाती है तथा जैन मार्ग में नाच-गान के उपयुक्त मानी जाती है। इस काव्य के सात भाग हैं, जो भासा कहलाते हैं। भाषा बड़ी रोचक अनुप्रासों से युक्त है। अन्त में नायक थानक गढ़ के राजा साहू एवं योद्धा मल्ल का सागर सुन्दरी से विवाह करता है।

इस शताब्दी का दूसरा फागु मलधारी राजशेखर सूरि का नेमिनाथ 'फागु' है। नेमिनाथ की सगाई उग्रसेन की कन्या राजीमती अथवा राजुल से हुई थी। बारात उग्रसेन के महल मे पहुँचती है। बारात के मेहमानो को खिलाने के लिए बहुत-से पशु वधार्थ बाँधे थे। नेमिनाथ का हृदय करुणा से भर जाता है और त्याग-वैराग्य की भावना मे शीघ्र ही वह बारात छोडकर चला जाता है। नेमिनाथ यादव परिवार के बाईसवे जैन तीर्थंकर है और कृष्ण के चाचा के पुत्र थे। नेमिनाथ के सन्यास की बात सुनकर राजीमती बहुत दुखी होती है, किन्तु अन्त मे वह भी तपस्या करना निश्चित करती है। नेमिनाथ की बारात और उनके संसार-त्याग की बात बहुत प्रसिद्ध है, तथा इस विषय के बहुत-से चित्र एव मूर्तियाँ है। इस फागु काव्य मे वसत ऋतु, बारात, बहुमूल्य वस्त्रो, आभूषणो तथा विवाह की विभिन्न रीतियो का वर्णन है। यह काव्य २७ कडियो तथा ७ खडो मे है। यमक साकलियो से युक्त इसमे विभिन्न प्रकार के गीत है।

एक अज्ञात कवि द्वारा स० १४३० मे रचित 'जम्बूस्वामी-फाग' मे एक धनी व्यापारी ऋषभदत्त के पुत्र जम्बूस्वामी के सन्यास का वर्णन है। एक के बाद एक, उनकी सगाई ८ सुन्दर कन्याओ के साथ हुई थी, किन्तु सुधर्मस्वामी गणधर का उपदेश सुनकर उन्हे वैराग्य हो गया। इस पर भी आठो कन्याओ ने उन्ही के साथ विवाह करने का निश्चय किया और विवाह हुआ। एक रात को एक डाकू अपने ५०० साथियो के साथ उनके घर आया। यद्यपि डाकू सबको सुला देने की विद्या जानता था, तथापि ब्रह्मचर्य के प्रताप से जम्बूस्वामी पर उसके प्रयोग का कोई प्रभाव नही पडा, उल्टे सभी डाकू जहाँ खडे थे, वही चिपक गये। तब जम्बूकुमार ने चोरो को उचित उपदेश किया। अन्त मे जम्बूकुमार ने उन ५०१ चोरो, अपनी आठो पत्नियो तथा कुछ लोगो—सब मिलाकर ५२६—के साथ जैन धर्म की दीक्षा ले ली। इस रचना मे वसत ऋतु का वर्णन विस्तार से है। दोहो मे यमक साकली का भी प्रयोग है।

सबसे अधिक प्रसिद्ध फागु 'वसन्त विलास' है, जिसकी रचना स० १४०० से १४२५ के बीच किसी समय हुई थी। ऐसा लगता है कि रचयिता जैन नही था, किन्तु उसके विषय मे कुछ ज्ञात नही हुआ। इस पूरे काव्य मे एक-एक पक्ति पर जीवनानद की धारा छलकती दीखती है। कवि निश्चय ही ससार

यद्यपि उन्हें प्रतिस्पर्धी एक महायोद्धा के साथ युद्ध करना है, तो भी निर्भय होकर उन्होंने कंचुक रूपी कवच उतार दिया है।

यही भाव 'नैषधीय चरित्र' २-३४ में आया है—

निगदितुं विधिनाऽपि न शक्यते सुभटता कुचयोः कुटिलभ्रुवाम्।
सुरतसम्भ्रमतः प्रियपीडितावपि नतिं न गतौ गतकञ्चुकौ॥

टेढी भौंहोवाली रमणियों के योद्धारूपी दो स्तनों की शक्ति का वर्णन ब्रह्मा भी नहीं कर सकता। यद्यपि सुरत-संग्राम में अपने प्रियतम द्वारा पीड़ित किये जाने पर ये थक गये हैं और बिना कवचरूपी कंचुक के हैं, किन्तु उन्होंने हार नहीं मानी और वे झुके नहीं।

मूल 'नैषधीय चरित्र' की कुछ सूक्ष्मताएँ छोड़ दी गयी हैं, किन्तु गुजराती पदों में जो कुछ व्यक्त किया गया है, वह भी एक सुन्दर सामग्री है। ३४वाँ पद इस प्रकार है—

केसूयकली अति वांकुडी आंकुडी मयणची जाणि।
विरहिणिना इणि कालिज कालिज फाटइ ताणि॥

टेढी किंशुक-कलियाँ कामदेव के अंकुशों-जैसी हैं। उसी शस्त्र से मदन विरहिणियों के हृदय विदीर्ण करता है।

६१वें पद में कहा गया है—

भमह कि मनमथ धुणहीय गुणहीय वरतणुहार।
बाण कि नयण रे मोहइं सोहइं सयल संसार॥

इस सुन्दर तरुणी की भौंहें कामदेव के धनुष हैं; इसके वक्षस्थल पर पड़ा हुआ हार धनुष की डोरी है, इसके नेत्र-कटाक्ष बाण हैं। इसी धनुष से मदन सारे संसार को मोहित करता है, साथ ही उसे सुशोभित करता है।

इस काव्य का प्रत्येक पद एक पूर्ण मुक्तक है।

गुजराती-साहित्य के प्राचीन एवं मध्यकाल में अनेक फागुओं की रचना हुई है। जैन-फागुओं की अपेक्षा जैनेतर फागु संख्या में बहुत कम हैं। वे हैं,

'वसन्त विलास' (जिसकी चर्चा ऊपर हुई है) 'नारायण फागु' (सं० १४५५ में एक अज्ञात कवि का), 'हरिविलास फाग' (१६वीं शताब्दी), 'वसन्त-विलास' (१७वीं शताब्दी में मालीराम द्वारा) तथा 'भ्रमरगीत फागु' (चतुर्भुज द्वारा)।

इसी प्रकार में 'जिनचन्द्र सूरि फाग' जैसलमेर के जैनभाण्डार से प्राप्त हुआ है, जो सं० १३९० में रचित 'सिरि थूलिभद्द फागु' से भी ५० वर्ष पहले का है। उपर्युक्त जैन-फागुओं के अतिरिक्त भी कई फागु हैं जैसे 'थूलिभद्द फागु (सं० १४०९ में हलराज द्वारा) 'जिरावल्ला पार्श्वनाथ फाग' (सं० १४३२ में मेरुनन्दन द्वारा), 'रंगसागरनेमि फाग', 'सुरांगनाभिधाननेमि फाग', 'नेमीश्वर चरित फाग', 'देवरत्न सूरि फाग' तथा 'हेमरत्नसूरि फाग' आदि। कुछ में तो काव्यत्व है और शेष का महत्त्व केवल भाषा-अध्ययन की दृष्टि से है। कुछ फाग अब भी अप्रकाशित हैं।

लोक-वार्ताएँ

इस काल में कुछ लोक-वार्ताएँ भी प्राप्त होती हैं। सबसे प्राचीन प्राप्य गुजराती लोककथा सं० १४११ में विजयभद्र द्वारा रचित 'हंसराज वच्छराज चौपाई' है। ६ वर्ष के भीतर ही इसी विषय पर एक जैनेतर कवि असाइत ने 'हंसाउली' लोकवार्ता लिखी। स्वयं असाइत को एक पवाडो मानते हैं। ये सं० १४०० में हुए। यद्यपि कवि जैन नहीं था, फिर भी उसके इस काव्य का जैनों में भी समादर हुआ। वे सिद्धपुर के औदीच्य ब्राह्मण तथा राजाराम ठाकर के पुत्र थे। उसी ग्राम में हेमाला नाम का एक पाटीदार था। उसकी सुन्दर कन्या गंगा का अपहरण एक मुसलमान सूबेदार ने किया था। असाइत ने कहा कि उसकी ब्राह्मण कन्या है, स्वयं उनकी पुत्री है। ब्राह्मण के कथन की परीक्षा करने के लिए उस पाटीदार की कन्या के साथ भोजन करने के लिए कहा गया। असाइत ने भोजन किया और इस प्रकार उस बाला का उद्धार किया। किन्तु उस पाटीदार की कन्या के साथ भोजन करने के कारण उन्हें ब्राह्मण-समाज से बहिष्कृत कर दिया गया। तब वह ऊंझा गया, जहाँ कुनबी पाटीदार-समाज ने उनका अच्छा स्वागत किया। उनके तीन पुत्र थे—

माडण, जयराज और नारण । ये तीनों पुत्र 'रगधरा अथवा तरगाला' कहलाते थे । रगमच की कला मे निपुण यह तरगाला-समाज असाइत को अपना पूर्वज मानता है । असाइत ने भवाई के ३६० वेषो की रचना की थी, ऐसा कहा जाता है । उनमे से कुछ ही अब प्राप्य है । सभवत. असाइत की मूल भवाई-रचनाओं की भाषा अश्लील नहीं थी ।

असाइत की 'हसाउली' अधिकाशत चौपाईबन्ध में है । इस काव्य मे इसने भी ३ विरह गीत लिखे है । यह ग्रन्थ ४ खडो तथा ४४० कडियो में है । हस और वच्छ इसके नायक है ।

हीरानन्द सूरि ने स० १४८५ मे 'विद्या विलास पवाडो' की रचना की । इसका मूल विनयचन्द्र द्वारा रचित 'मल्लिनाथ काव्य' संस्कृत में है । हीरानन्द ने अपने ग्रथ के लिए सूर्यपट्ट और विनयचट्ट की कहानी ली । कथा मे राजकुमारी मत्री-पुत्र से विवाह करना चाहती थी, किन्तु उसके स्थान पर विनयचट्ट बैठा दिया गया और इस प्रकार विनयचट्ट का विवाह राजकुमारी से हो गया । जब राजकुमारी को इसका पता चला, तो वह बहुत दिनो तक अपने पति विनयचट्ट के साथ न रह सकी और अत में मर गयी । शामल कवि ने भी इस कथा का उपयोग कुछ परिवर्तन के साथ किया है ।

लोक-वार्ता क्षेत्र का दूसरा अर्जन रचनाकार भीम है, जिसने विभिन्न छन्दों मे ६७२ कड़ियों का 'सदयवत्सचरित्र' लिखा है । इसमें पूरे नवरसों का वर्णन है । प्रत्येक घटना बड़ी सुन्दरता से वर्णित की गयी है और यह काव्य असाइत के 'हसाउली' से बहुत श्रेष्ठ है । यह प्राचीन गुजराती साहित्य के कुछ सर्वोत्तम काव्यो म से एक है । गुजराती भाषा का पुराना रूप इसमें सुरक्षित है तथा अपभ्रश भाषा के कुछ चिह्न भी इसमे दृष्टिगोचर होते हैं । मात्रामेल छन्दों तथा अक्षरमेल वृत्तो के विभिन्न पदो में कही हुई यह सदयवत्स (सदेवन्त) सावलिगा की प्रेम-कथा है ।

कवि श्रीधर व्यास का ग्रन्थ 'रणमल्लछन्द' लगभग स० १४५४ मे रचा गया था । यह ७० तुकों का एक छोटा काव्य है, जिसमे स्थान-स्थान पर वीर-रस छलक रहा है, और जो सुन्दर-वलवती शैली मे लिखा गया है । कवि ने १४वी शताब्दी के अत की उस घटना का वर्णन किया है, जब इडर के

वीर राव रणमल्ल ने पाटण पर आक्रमण करके उसके मुसलमान सूबेदार को पराजित किया था। रणमल्ल इतना वीर था कि दूर-दूर की मुसलमान फौजें उसका नाम सुनकर काँप उठती थीं। श्रीधर ने इस काव्य के अतिरिक्त 'भागवत दशम स्कंध' और 'सप्तशती' की भी रचना की थी। 'रणमल्लछन्द' के प्रथम १० आर्या संस्कृत में हैं, शेष गुजराती में तथा मात्रावृत्त, रूपक और मिश्र मात्रावृत्त छन्दों में हैं। रचयिता ने विविध छन्दों का प्रयोग करके अपनी कलात्मकता का परिचय दिया है। वीर-रस के वर्णन अत्यन्त प्रभावशाली हैं। शब्द चयन और उनका क्रम वीररस के उपयुक्त है। इस काव्य की भाषा उस कोटि की है जिसे अवहट्ठ या डिंगल कहते हैं। श्रीधर ने देवी की स्तुति में १२० कड़ियों का 'ईश्वरीछन्द' अथवा 'सप्तशती' की रचना की है। इसकी भाषा भी सबल तथा वीररस के उपयुक्त है।

प्राचीन गुजराती साहित्य में मुसलमान कवि बहुत ही कम पाये जाते हैं। एक तो १५वीं शताब्दी के कवि अब्दुल रहमान हैं और दूसरे १८वीं शताब्दी के कवि राजे। अब्दुल रहमान ने स्वतन्त्र ग्रंथ 'संदेश रासक' लिखा है, और राजे ने कृष्ण भक्ति के पद लिखे हैं। 'संदेशरासक' में अरबी का कोई शब्द नहीं है। वे मीर हुसेन के बेटे थे। भाषा भी अपभ्रंश की अवहट्ठ वर्ग की है। यह एक दूत काव्य है, जिसमें विरहिणी नायिका किसी पथिक द्वारा प्रिय को अपना सन्देश भेजती है। कवि का छन्दों पर विशेष अधिकार था—ऐसा लगता है। नायिका विजयनगर की रहनेवाली है और नायक खंभात निवासी है। काव्य कालिदास के 'मेघदूत' का अनुकरण है। आरंभ में कुछ आर्याएँ हैं। पूरे काव्य में विप्रलम्भ शृंगार है। कवि संस्कृत तथा प्राकृत भाषाएँ अच्छी तरह जानता था—यह काव्य से स्पष्ट है। नायिका-वर्णन, पथिक से नायिका का प्रश्न पूछना, प्रभात-वर्णन आदि अत्यन्त आकर्षक भाषा में लिखे गये हैं।

गद्य-साहित्य

इस युग में अधिक तो नहीं किन्तु कुछ गद्य-साहित्य भी मिलता है। इन ग्रंथों में से अधिकांश स्वतन्त्र गद्य-कथाएँ न होकर व्याख्या की कोटि के हैं। फि-

भी उस समय की भाषा का रूप उनमें सुरक्षित है। व्याख्याओं में संवाद का रूप देखने को मिलता है।

अब तक प्राप्य सबसे प्राचीन गद्य-ग्रंथ 'आराधना' है, जो ताड़पत्री में सं० १३३० में लिखा गया था। इसकी भाषा अलंकार-बहुल, जटिल, संस्कृत-शब्दों से लदी हुई तथा अनुप्रास की झंकार से युक्त है। यह उस समय का प्रौढ़ गद्य है। इसकी शैली ऐसी है, जिसके लिए संस्कृत की कहावत 'संस्कृ-ताढ्या च गौर्जरी' बिलकुल उपयुक्त है।

संग्रामसिंह का व्याकरण 'बालशिक्षा' आरंभिक विद्यार्थियों के लिए सं० १३३६ में लिखा गया था। उसमें उस समय की बोलचाल की भाषा का रूप है। 'प्राचीन गुर्जर काव्य संग्रह' में अतिचार (सं० १३४०) का कुछ अंश छापा गया है। 'सर्व तीर्थ नमस्कार' (सं० १३५८) में भी उस समय की जन-भाषा का स्वरूप है, जो उसी संग्रह में छापा गया है।

संस्कृत ग्रंथों की व्याख्याएँ अथवा उनके भावार्थ एक विशिष्ट शैली में हैं। मूल वाक्य के पश्चात् विशेषणात्मक उपवाक्य प्रश्न द्वारा रख दिये जाते थे और फिर उन्हें स्पष्ट किया जाता था। सं० १३६९ में लिखित 'अतिचार' का भी कुछ अंश उसी संग्रह में छपा है, जिसको देखने से सं० १३४० में लिखे 'अतिचार' की अपेक्षा भाषागत परिवर्तन और विकास स्पष्ट लक्षित होता है।

१५वीं शताब्दी तक आते-आते अपभ्रंश की विशेषताएँ गुजराती में क्रमशः समाप्त हो गयीं और गुजराती के मध्यकाल का उदय हुआ। इस शताब्दी का गद्य-साहित्य इन रूपों में प्राप्त होता है—१. सीधे-सादे गद्य में लिखी कहानियाँ, २. विशेष प्रकार के गद्य-प्रबन्ध, ३. व्याख्याएँ, अनुवाद, आरंभिक पाठकों के लिए ग्रंथ तथा व्याकरण।

सादे गद्य की कहानियाँ अधिक संख्या में पायी जाती हैं। उनमें भाषा-सौन्दर्य नहीं है। व्याख्याएँ बोल-चाल की भाषा में छोटे-छोटे वाक्यों में लिखी गयी थीं। विशिष्ट शैली का गद्य—जो लय और अनुप्रासयुक्त था—भी पनप रहा था, किन्तु ऐसा एक ही ग्रंथ प्राप्त हुआ है।

तरुणप्रभ विद्वान् और आदरणीय जैन-आचार्य थे। उन्होंने सं० १४११ में धार्मिक नियमों को स्पष्ट करने के लिए बहुत-सी कहानियाँ लिखीं, जिनमें

की भी रचना की है। 'पृथ्वीचन्द्र चरित' में ५ उल्लास हैं। इनका गद्य अलंकार एवं लययुक्त है।

महाराष्ट्र में पैठण के राजा पृथ्वीचन्द्र इसके नायक हैं। उनका विवाह अयोध्या की राजकुमारी रत्नमञ्जरी से होने को था। बचपन में रत्नमञ्जरी को एक हंस उठा ले गया था और जब वह विवाह के योग्य हो गयी तो लौटा गया। राजकुमारी के स्वयंवर का आयोजन हुआ। उसमें भाग लेने के लिए पृथ्वीराज पैठण से चले। मार्ग में समरकेतु ने पृथ्वीचन्द्र पर आक्रमण किया, किन्तु किसी दैवी पुरुष ने चमत्कारपूर्वक समरकेतु को बाँधकर पृथ्वीचन्द्र के चरणो मे डाल दिया। समरकेतु को भाँति-भाँति से उपदेश किया गया, अत. उसने जैन-दीक्षा ले ली। इसके बाद पृथ्वीचन्द्र स्वयंवर में गया और वहाँ रत्नमञ्जरी ने उसे वरमाला पहनायी। निराश राजकुमार धूमकेतु आकाशीय धूमकेतु का साधक था, अत उसने अपनी विद्या से अंधकार उत्पन्न कर दिया। अंधकार समाप्त होने पर पता चला कि राजकुमारी लुप्त कर दी गयी है। सहसा एक भूचाल आया और एक महिला रत्नमंजरी को लिये हुए धरती से निकली। पृथ्वीचन्द्र और रत्नमंजरी का विवाह हुआ। कुछ समय बाद धर्मनाथ तीर्थङ्कर ने पृथ्वीचन्द्र को उपदेश दिया और उसके पूर्वजन्मो की बात बतायी तथा यह भी कहा कि इस जीवन में अनेक चमत्कार होने के क्या कारण है। पृथ्वीचद्र पैठण आया। उसे एक पुत्र महीधर प्राप्त हुआ और जब राजा सिंहकेतु ने उस पर आक्रमण किया, तब फिर उसे दैवी सहायता प्राप्त हुई। शत्रु शात हो गया, पृथ्वीचन्द्र को केवल ज्ञान प्राप्त हुआ और महीधर पैठण का राजा बना।

यह श्रेष्ठ गद्य कादम्बरी इतिहास तथा भूगोल, दोनों दृष्टियो से महत्त्वपूर्ण है। लेखक यद्यपि जैन है, किन्तु ब्राह्मण धर्म के प्रति भी उसके हृदय मे आदर है। उसने विभिन्न स्मृतियो तथा पुराणो का उल्लेख किया है तथा विभिन्न समाजो एवं धर्मो का वर्णन दिया है। भाषा की दृष्टि से भी ग्रंथ महत्त्वपूर्ण है। इसकी शैली हमें बाण की कादम्बरी का स्मरण दिलाती है। प्रसादगुण, लय, लालित्य तथा अनुप्रासो के कारण इसकी शैली अत्यन्त बलवती

तथा रसिक हो गयी है। इसमें कुछ शब्द अरबी के भी हैं जो प्रचलित हो गये हैं। इसमें कुछ उपकथाएँ भी हैं। स्पष्ट लक्षित होनेवाले धार्मिक उद्देश्य के कारण इसमें शृंगार रस की प्रमुखता नहीं है। जैनों में इस ग्रंथ का बड़ा प्रचार हुआ। इसका कुछ अंश देखिए—

"ते मन्त्र रत्नमञ्जरी पापइ निशीक दीसिवा लागु। जिम लवणहीन रसवती व्याकरणहीन सरस्वती, गन्धरहित चंदन, घृतरहित भोजन, खाण्डरहित पक्वान, मानरहित दान, छत्ररहित वरि, शक्ररहित पवि, विवेकरहित मयु, वेदरहित ब्राह्मणु, स्वर्गरहित ऐरावण, लंकारहित रावण, शस्त्ररहित पायक, न्यायरहित नायक, फलरहित वृक्ष, तपोरहित भिक्षु, वेगरहित तुरंग, प्रेमरहित संगम, नासिकारहित मुखमण्डल, कर्णपालिरहित करणकुडल, वस्त्ररहित शृंगार, सुवर्णरहित अलंकार, ताम्बूलरहित भोग, प्रसिद्धिरहित प्रयाग, करणरहित ब्रह्माण्ड, पणिछरहित कादम्ब, चरणरहित बाल, राज्यरहित भूपाल, स्तम्भरहित प्रासाद, दानरहित प्रसाद, मुष्टिरहित कृपाण, ठक्कुरहित बाण, धाररहित छुरी, लोकरहित नगरी।

अध्याय ५

भक्तिकाल--भक्ति और ज्ञान का प्रभाव

रास-साहित्य प्रस्तुत करनेवाले जैन साधुओं के प्रमुख कार्य-कलापों के कारण १२वीं से १५वीं शताब्दी तक के गुजराती साहित्य को बड़ी सरलता से हम रास-काल का साहित्य कह सकते हैं। यद्यपि उनके कार्य गत १९वीं शताब्दी तक चलते रहे, तथापि साथ ही उस समय भक्ति की भी एक प्रबल तरंग उठ रही थी, जिसने गुजरात क्या, समस्त देश को प्रभावित किया। अत: १५वीं शताब्दी से १८५० तक के समय को हम गुजराती साहित्य का भक्ति-काल कह सकते हैं। भक्ति की इस लहर के प्रभाव को ठीक-ठीक जानने के लिए संक्षेप में हम भक्ति की विभिन्न धाराओं का विवेचन करेंगे।

वैष्णव धर्म का ऐतिहासिक विवेचन

वैदिक ऋचाओं में तत्सम्बन्धी देवताओं की महिमा गायी गयी है और केवल भय ही इसका कारण नहीं है, प्राय: प्रेम, आदर तथा माता-पिता, पुत्र, मित्र आदि के घनिष्ठ संबंध की कोमल भावनाएँ भी उनमें व्यक्त की गयी हैं। बृहदारण्यक में ब्रह्म की दया का वर्णन इस प्रकार हुआ है, जैसे कोई प्रेमी अन्तर-बाहर का सब कुछ भूलकर अपनी प्रेमिका का आलिङ्गन करता है (बृ० उ० ४-३-२१)। कथा में भगवत्कृपा के विषय में कहा गया है कि केवल भगवत्कृपा-प्राप्त व्यक्ति ही भगवान् को प्राप्त कर सकते हैं। उपनिषदों में उपासना-पद्धतियों का वर्णन है, जो भक्ति के ही लक्षण हैं। शंकराचार्य ने अपनी 'शिवानन्द लहरी' के ६१वें पद में भक्ति का लक्षण इस प्रकार बताया है—"जब मन की वृत्तियाँ भगवान् के चरणों की ओर इस प्रकार उन्मुख होती हैं, जैसे अँकोला वृक्ष के बिखरे बीज जड़ों की ओर, अथवा लौहसूचिका चुम्बक की ओर, या कोई पत्नी अपने पति की ओर, अथवा कोई लता वृक्ष की

आग, या नदी सागर की ओर दौड़ती है तब उसे भक्ति कहते हैं। 'नारद पाञ्चरात्र' में भक्ति की परिभाषा इस रूप में की गयी है—भगवान् की महत्ता का ज्ञान होते हुए जब स्थिर और प्रबल प्रेम भगवान् के प्रति उत्पन्न होता है, तब उसे भक्ति कहते हैं।' मधुसूदन सरस्वती का कहना है कि मन लाख के समान होता है, जिसे पिघलाकर किसी भी वृत्तिरूपी साँचे में ढाला जा सकता है। जब जब मन भागवत धर्म सुनने पर द्रवित हो जाता है और जब इसकी वृत्तियाँ जलधारा के समान वेग से प्रभु की ओर दौड़ती हैं, तब भक्ति का उदय मानना चाहिए (भक्ति रसायन, १-३)।

कृष्ण और भागवत धर्म—वैदिक काल का भक्ति का बीज गीता में एक वृक्ष का रूप धारण कर लेता है। महाभारत में अर्जुन को गीता का उपदेश देते हुए कृष्ण कहते हैं—'अनासक्त भाव से, समचित्त होकर भगवद ज्ञान भक्ति और समर्पण की भावना से युक्त होकर अपना कर्तव्य करो।' उस समय वैदिक कर्ममार्ग के कट्टर विरोधी थे, जिसके परिणामस्वरूप त्याग और नास्तिकता का प्रबल प्रचार था। कृष्ण भक्तिमार्ग का उपदेश करके इन विरोधों का सामना करने में सफल हुए। कृष्ण की ऐतिहासिकता पर अब संदेह नहीं किया जा सकता, क्योंकि यह कुछ ही शताब्दियों के पहले की बात है। गोकुल के कृष्ण पाण्डवों के मित्र, गीता के उपदेशक तथा द्वारका के यादवों के नेता थे। कृष्ण के रूप में विष्णु के अवतार की भावना पाणिनि के पहले ही प्रचलित हो गयी थी, क्योंकि पाणिनि ने वासुदेव के पुजारी वासुदेवकों की चर्चा की है। मेगस्थनीज (ईसा पूर्व चौथी शताब्दी) के अनुसार शूरसेन देश में वासुदेव की पूजा विशेष रूप से होती थी। यहाँ तक कि यूनानी दूत हेलिओडोरस (ईसापूर्व दूसरी शताब्दी) भी वासुदेव का पुजारी था। छान्दोग्य उपनिषद् में देवकी के पुत्र तथा घोर आङ्गिरस के शिष्य कृष्ण का उल्लेख है। उनकी सूर्योपासना उनकी सत्यप्रियता तथा अन्य भी अनेक गुणों पर प्रकाश डालती है जो गीता के सिद्धान्तों के अनुकूल है। कृष्ण, वैदिक विष्णु, वासुदेव और नारायण एक ही हैं और इस एकता को नारायण गायत्री स्पष्टतः व्यक्त करती है। महाभारत के नारायणीय अंश में नारायण परमात्मा माने गये हैं और कृष्ण उनके अवतार। भागवत धर्म की उत्पत्ति मथुरा क्षेत्र में मानी जाती है। वहाँ से वह

पश्चिम की ओर द्वारका तक फैला; दक्षिण में पाड्य राजधानी मदुरइ (मथुरा अथवा मथुरा के समान ही इस स्थान का नाम है) तक, पूर्व में पुरी तक, जहाँ कृष्ण की स्थापना दाम ब्रह्म के रूप में है, और उत्तर मे परम्परा के अनुसार शकराचार्य ने बद्रीनाथ मे नारायण की मूर्ति को फिर से स्थापित किया, जिसे उन्होंने नारदकुण्ड में डुबकी लगाकर प्राप्त किया था। कृष्ण-भक्तो के लिए कृष्ण ही एकमात्र देव, एकमात्र शास्त्र, एकमात्र नाम, एकमात्र मत्र और एकमात्र कर्म—उनकी सेवा—हो गये।

पाञ्चरात्र वैष्णवधर्म का मूल महाभारत के नारायणीय अश मे पाया जाता है। रामानुज मप्रदाय पाचरात्र-पद्धति एव उसकी अनेक संहिताओ पर बहुत-कुछ निर्भर करता है। इसकी एक विशेषता चतुर्व्यूहो में विश्वास है। हरिवश, ब्रह्म, विष्णु, भागवत् एव ब्रह्मवैवर्त पुराणो मे कृष्ण के बालरूप का वर्णन है और ब्रह्मवैवर्त पुराण मे तो कृष्ण को रुक्मिणी के साथ नही, वरन् राधा के साथ बताया गया है। वैष्णव धर्म को गुप्तवंश के राजाओ का आश्रय प्राप्त था। पाञ्चरात्र की सहिताओ, मदिरो, भवनो, राज-दानो तथा पुराणो आदि में भक्ति की धारा स्पष्ट लक्षित होती है। पौराणिक वैष्णव धर्म पाँचवी शताब्दी से दसवी शताब्दी तक चला, जिसका चरम परिपाक महान् भक्ति-ग्रथ भागवत पुराण मे हुआ। दक्षिण भारत मे भी भक्ति-धारा के १२ आल-वार सत छठवी से नवी शताब्दी तक हुए।

बुद्ध-धर्म एव जैन धर्म के पूर्व—यहाँ तक कि छठवी शताब्दी ईसापूर्व के भी पहले—मथुरा भागवत्-धर्म का केन्द्र था। बाद में कई शताब्दियो तक इस क्षत्र में बुद्ध-धर्म और जैनधर्म का बोलबाला रहा। ईसा की ७वी शताब्दी में सनातन हिन्दू धर्म फिर स्थापित होकर समानता पर आ गया। ११वी शताब्दी आते-आते हिन्दुत्व का पूर्ण प्रसार हो गया और बुद्ध-धर्म लुप्त हो गया।

श्री दुर्गाशकर शास्त्री का कहना है कि द्वारका एक वैष्णव तीर्थ के रूप मे १२वी शताब्दी के बाद ही प्रसिद्ध हुआ। किन्तु लक्ष्मीधर (११०० से ११३० ई०) ने अपने 'तीर्थकल्पतरु' में द्वारका का वर्णन एक प्रसिद्ध वैष्णव तीर्थ के रूप में किया है तथा प्रमाण मे वाराह पुराण को उद्धृत किया है। इसका यह अर्थ हुआ कि द्वारका १२वी शताब्दी से बहुत पहले प्रसिद्ध हो चुका था,

तभी तो इसका वर्णन वाराह पुराण में आया और लक्ष्मीधर ने इसे एक तीर्थ के रूप में माना।

गीता ने भक्तियोग का उपदेश किया और नास्तिकता की बाढ़ को रोका, साथ ही अंधविश्वास और अनधिकारी व्यक्तियों द्वारा संसार-त्याग की भावना का कड़ा विरोध किया। मीमांसकों ने वैदिक कर्ममार्ग के गौरव को फिर स्थापित किया और बौद्ध तथा जैन धर्मों के सिद्धान्तों का खण्डन किया, साथ ही उपनिषद् के ज्ञान मार्ग पर भी आक्रमण किया। शंकराचार्य ने ज्ञानमार्ग एवं संन्यास को फिर गौरव प्रदान किया। उन्होंने हिन्दूधर्म में अनेक सुधार भी किये। शंकराचार्य के दर्शन को माननेवालों ने शंकर भगवान के अतिरिक्त दूसरे देवताओं की भी उपासना इसी भक्तिभाव से करना आरम्भ किया। शंकराचार्य ने मायावाद का उपदेश किया और ज्ञान को भक्ति से भी श्रेष्ठ बताया। इन्हीं दो बातों के कारण अधिकांश वैष्णव आचार्य उनसे भिन्न हो गये और उनका विरोध भी किया। किन्तु यह सत्य है कि प्रति सौ वेदान्तियों में ७५ शंकर-दर्शन के अनुयायी हैं अथवा उनसे प्रभावित हैं।

वैष्णव सम्प्रदाय—वैष्णव सम्प्रदाय का महत्त्व ११वीं शताब्दी में आरम्भ हुआ। इनके आचार्यों या शिष्यों ने शंकराचार्य का अनुकरण करके प्रस्थान-त्रयी पर व्याख्याएँ की हैं। प्रत्येक में द्वैत या अद्वैत अथवा द्वैताद्वैत सिद्धान्त का प्रतिपादन है, प्रत्येक में विष्णु के किसी एक विशिष्ट रूप की भक्ति का उपदेश है। वैष्णवों में रामानुज का सम्प्रदाय सबसे प्राचीन है। इसका आधार है महाभारत का पाञ्चरात्र अंश तथा उनकी संहिताएँ। दक्षिण के १२ आलवार संत रामानुज (१०१७ से ११३७ ई०) से पहले हो गये थे। रामानुज के अति निकट पूर्ववर्तियों में नाथमुनि एवं यामुनाचार्य अथवा आलवंदार थे। शंकराचार्य का दर्शन जहाँ केवलाद्वैत है, वहाँ रामानुज का दर्शन विशिष्टाद्वैत है। चित्, जीव और जड़ जगत—दोनों ही भगवान् के शरीर हैं जो अन्तर्यामी रूप से सबमें व्याप्त हैं और केवल सद्गुणों को धारण करनेवाले हैं। रामानुज ने प्रपत्ति के सिद्धान्त पर बल दिया। अतः उनका सम्प्रदाय दो भागों में विभक्त हो गया—तेंगलै और वडगलै।

पुराणो मे मिलते है। दक्षिण मे आल्वार वैष्णव तथा नयनार शैव भक्त हुए है। नाभा जी के 'भक्तमाल' मे सभी प्रकार के श्रेष्ठ भक्तो का उल्लेख है। वल्लभ सम्प्रदाय मे 'चोरासी वैष्णवनी वार्ता' तथा 'बसोबावन वैष्णवनी वार्ता' जैसे ग्रन्थ है। यद्यपि शिव, विष्णु, शक्ति तथा अन्य देवताओ की उपासना करनेवाले भक्त और सन्त हुए है, किन्तु यहाँ हमारा सबंध केवल वैष्णव संतो से है।

प्रथम प्रधान सन्त थे रामानन्द, जो कबीर से पूर्व सभवत १४०० ई० मे हुए थे। उन्होने सभी वर्गो के लिए राम-भक्ति और सुलभ कर दी और लोक-भाषा में उपदेश देकर रामभक्ति का बहुत प्रचार किया। उनकी भक्ति दास्य भाव की है।

चक्रधर भड़ौंच के एक गुजराती ब्राह्मण थे, किन्तु उनका कार्य-क्षेत्र महाराष्ट्र था, जहाँ उन्होने १२६३ ई० में महानुभाव पंथ की स्थापना की। इस पथ मे देवता तो कृष्ण है, किन्तु उनकी कोई मूर्ति नही है। ऐसा कहा जाता है कि सत ज्ञानेश्वर कुछ सीमा तक इन महानुभाव पंथ तथा नाथ-सम्प्रदाय से भी प्रभावित थे। नाथ-सम्प्रदाय की स्थापना आदिशंकर द्वारा बतायी जाती है, जिसे मत्स्येन्द्रनाथ ने लगभग १०वी शताब्दी में नवीन रूप दिया। उनके पट्ट शिष्य गोरखनाथ थे, जो सम्पूर्ण भारत मे प्रसिद्ध थे और जिन्होने योग मार्ग का उपदेश किया। वे शुद्ध ज्ञान मार्गी थे और भक्ति की भावुकता को अच्छी नही समझते थे। तुलसीदास ने नाथ-सिद्धो पर व्यग्य करते हुए लिखा है, कि बिना श्रद्धा-विश्वास के सिद्ध भी भगवान् का दर्शन नही कर सकते। गोरखनाथ के शिष्य गहिनीनाथ और उनके निवृत्तिनाथ थे, जो ज्ञानेश्वर के बडे भाई थे। ज्ञानेश्वर की महान् कृति 'ज्ञानेश्वरी' संसार की एक श्रेष्ठतम रचना है। ऐसा कहा जाता है कि वे द्वारका आये थे। महाराष्ट्र में वैष्णव मतानुयायी मुख्यत. पण्डरपुर के विठोबा की उपासना करते है। विठोबा के साथ रुक्मिणी है, राधा नही। यहाँ कोई आचार्य नही हुआ। सभी सत मराठी मे उपदेश करते थे और उनमे से अधिकाश शूद्र थे। निम्नवर्ग के लोगो मे वारकरी पन्थ प्रचलित था। नामदेव, गोरा कुभार, विसोबा खेचर, सावन्त माली, नरहरि सोनी, चोखा महार, जनाबाई, सेना वालद तथा नर्तकी कन्होपात्रा—ये सब समकालीन सत थे।

चण्डीदास (१४०० ई०) यद्यपि शाक्त थे तथापि उन्होंने प्रेम-लक्षणा भक्तिपूर्वक राधा-कृष्ण की स्तुतियां बंगाली भाषा में रची हैं। विद्यापति (१५वीं शताब्दी) ने मैथिली में राधा-कृष्ण के गीत लिखे हैं, जो बाद में अधिक प्रसिद्ध होने पर बंगाली में फिर से लिखे गये। गोस्वामी हित हरिवंश जी राधा सहित कृष्ण के उपासक थे और १५२६ ई० में उन्होंने राधा-वल्लभ मूर्ति की स्थापना वृन्दावन में की तथा राधावल्लभी सम्प्रदाय की नींव डाली। शंकरदेव ने १५वीं शताब्दी में महापुरुष वैष्णव सम्प्रदाय की स्थापना आसाम में की।

रामानन्द के शिष्य सभी वर्णों के थे। उनके शिष्यों में कबीर निर्गुण-वादी थे। उन्होंने योग, ज्ञान और वैराग्य का उपदेश लोगों को दिया, साथ ही हिन्दू-मुसलमान के भेद को दूर करके राम की आन्तर भक्ति का प्रचार किया। तुलसीदास भी रामानन्द के शिष्य कहे जाते हैं, जिन्होंने अपने अमर ग्रंथ 'रामचरित मानस' तथा अन्य ग्रंथों द्वारा—जो परिपक्व अवस्था में लिखे गये थे—समूचे उत्तर भारत को राम भक्ति की धारा में डुबा दिया। शिवाजी महाराज के गुरु समर्थ रामदास भी राम भक्त थे, जिनका प्रसिद्ध ग्रंथ 'दासबोध' है। एकनाथ और तुकाराम ने विठोबा की उपासना को ही आगे बढ़ाया। महाराष्ट्र के अन्तिम महान् सन्त तुकाराम थे। उत्तर में सूरदास तथा अन्य अष्टछाप के कवि वल्लभ सम्प्रदाय के थे।

१५वीं शताब्दी तक मथुरा तथा उसके आस-पास का क्षेत्र वैष्णव सुधारकों का केन्द्र बन गया था। रामानुज, निम्बार्क, वल्लभ, चैतन्य के अनुयायी तथा राधावल्लभी मथुरा अथवा वृन्दावन में बस गये थे। उन्होंने वैष्णव मंदिरों का निर्माण कराया तथा सारे भारत में वैष्णव भक्ति का प्रचार किया।

गुजरात में वैष्णव मत की पृष्ठभूमि

कृष्ण द्वारका में बस गये थे। यह नहीं कहा जा सकता कि द्वारका एक वैष्णव-तीर्थ कब बना, किन्तु लक्ष्मीधर (१२वीं शताब्दी) के काव्य में वाराह-पुराण का उद्धरण देख कर मानना पड़ता है कि ऐसा १२वीं शताब्दी के बहुत

पहले हुआ होगा। गुप्त शासक भागवत थे। उनके प्रतिनिधि अधिकारी ने सुदर्शन झील का नवीनीकरण करवाया था। वल्भी का शासक ध्रुवसेन प्रथम भागवत था। भिन्नमाल-निवासी माघ ने 'शिशुपाल वध' की रचना की है। ११वीं तथा १२वीं शताब्दी में वैष्णव मत की जडें गुजरात में काफी जम चुकी थी और बहुत से नये मंदिरों का निर्माण हुआ था। किन्तु, यद्यपि दक्षिण में ११वीं शताब्दी से ही वैष्णव सम्प्रदायों का प्रचार हो चुका था, तथापि गुजरात में १५वीं शताब्दी तक वैष्णव मत का रूप बिना किसी सम्प्रदाय विशेष के पौराणिक ही रहा। सारंगदेव की १२९२ ई० की एक रचना में आरंभ की स्तुति १२वीं शताब्दी में हुए जयदेव के गीतगोविंद के एक प्रसिद्ध पद का उल्लेख करती है। इससे पता चलता है कि कितनी जल्दी गीतगोविन्द ने भारत के सभी भागों के लोगों को अपनी ओर आकर्षित कर लिया। १५वीं शताब्दी तक गुजरात में वैष्णव धर्म अत्यन्त प्रबल हो गया। असाम्प्रदायिक तथा पौराणिक वैष्णव-मंदिर अब भी द्वारका और डाकोर में है।

वैष्णव भक्ति-साहित्य—१५वीं शताब्दी से लेकर आगे तक वैष्णव मत द्वारा प्रभावित साहित्य बहुत बडे परिमाण में मिलता है। गुजरात में भागवत तथा बिल्वमङ्गल और जयदेव के ग्रन्थ प्रसिद्ध हो चुके थे। जयदेव के बहुत पहले, राधा-कृष्ण की उपासना-सम्बन्धी रचना अपभ्रंश में पायी गयी है, जिसका उद्धरण हेमचन्द्र ने अपने व्याकरण में दिया है। नरसिंह मेहता की परम्परा से स्वीकृत तिथि १४१४ से १४८० ई० है। वे कोई वैष्णव-आचार्य नहीं थे, वरन् एक संत और भक्त थे। उनका किसी सम्प्रदाय से सम्बन्ध नहीं था। भक्ति-क्षेत्र में वे जाति और वर्ण के भेद को नहीं मानते थे। इसी कारण एक नागर ब्राह्मण और आचार-विचार वाले समाज के सदस्य होने के नाते उन्हें बडा कष्ट झेलना पडा। वे अपने को जयदेव का आभारी मानते थे तथा कृष्ण की बाल-क्रीडा एवं गोपियों के साथ कृष्ण की शृंगार-क्रीड़ा का गान उन्होंने भक्तिपूर्वक किया। उन्होंने ज्ञान-वैराग्य के भी कुछ बहुत ही श्रेष्ठ पद लिखे हैं, किन्तु संभवत वे उनकी परिपक्व अवस्था के पद हैं। उन पदों में भागवत के अद्वैत वेदान्त की छाया दीखती है तथा अनेक स्थलों पर शंकराचार्य की शिक्षा का प्रभाव परिलक्षित होता है।

भालण नरसिंह मेहता का समकालीन था, पर वह राम भक्त था। १५वीं शताब्दी के केशवदास ने भागवत के दशम स्कंध को गुजराती में लिखा है। कुछ के मत से यह काव्य प्रेमानंद के काव्य से भी उत्तम है। वमण मंत्री ने दशम स्कंध पर आधृत पद लिखे हैं। भीम (१८८५ ई०) ने वापल्व के हरिलीला षोडशकला का अनुवाद करके उसका विस्तार किया है। १६वीं शताब्दी में गुजरात वल्लभ सम्प्रदाय के प्रभाव में आने लगा, किन्तु फिर भी पौराणिक वैष्णव मत चलता ही रहा। कई रचयिताओं ने भागवत से एक या अधिक प्रसंग लेकर भक्त चरित और आख्यान लिखे हैं या अनुवाद किया है। रत्नेश्वर वल्लभ और सन्त महाराज ने तो पूर्ण भागवत का अनुवाद कर डाला है जिसमें रत्नेश्वर का अनुवाद सर्वश्रेष्ठ है। उन्होंने भागवत के विषय पर श्रीधर के समदर्शन का अनुसरण किया है। कुछ कवियों ने अपना विषय रामायण से लिया है—जैसे वमण मंत्री माडण, भाडा, उद्धव, विष्णुदास और गिरधर। नरसिंह मेहता जैसे भक्तों के जीवन की घटनाएँ भी कुछ कवियों का काव्य-विषय बन गयी। 'हारमाला' स्वयं नरसिंह से ही सम्बद्ध रचना है। विश्वनाथ जानी, कृष्णदास, हरिदास, प्रेमानन्द, गोविन्ददास तथा दयाराम ने नरसिंह मेहता के जीवन पर रचनाएँ की हैं। प्रीतमदास और नरभेराम डाकोर के रणछोडराय के भक्त हो गये हैं। धीरा और भोजा यद्यपि भक्त कवि थे तथापि इन्होंने नीति, ज्ञान और वैराग्य पर भी लिखा है।

गुजरात के अधिकांश वैष्णवों ने वल्लभ सम्प्रदाय को स्वीकार कर लिया, जिसका गुजरात को भक्ति-परक बनाने में मुख्य हाथ रहा। रामानुज निम्बार्क तथा मध्व के बहुत कम अनुयायी गुजरात में थे। इसी प्रकार चैतन्य के भी बहुत कम अनुयायी थे, कम से कम मध्यकाल में। गुजरात तथा सौराष्ट्र में पुष्टिमार्ग के अनेक मंदिर हैं और धनी व्यापारी समाज ने इस सम्प्रदाय को स्वीकार कर लिया। वल्लभाचार्य एवं उनके पुत्र गोसाईं विट्ठलनाथजी अक्सर गुजरात की यात्रा किया करते थे। १०वीं से १५वीं शताब्दी तक वैष्णव मत गुजरात में अधिकाधिक फैलता रहा। पुष्टिमार्ग में सेवा प्रकार का निरूपण था, जो व्यापारियों के बहुत ही अनुकूल था। संगीत, सजावट, भोग-व्यंजन निर्माण आदि में इस सम्प्रदाय ने बहुत-कुछ सिखाया। बहुत

थोडे समय में पुष्टिमार्ग अत्यन्त पुष्ट हो गया और छोटे-छोटे गाँवो में भी उसके मन्दिर बन गये। इसके गोस्वामियो ने, जैसे हरिराय और पुरुषोत्तम जी; लालूभट्ट-जैसे इसके पडितो ने तथा दूसरे लोगो ने संस्कृत एवं ब्रज-साहित्य के प्रसार मे बहुत योग दिया। कवि गोपालदास ने गुजराती में 'वल्लभाख्यान' लिखा, जिसकी व्याख्या ब्रज भाषा मे है और जो एक धर्म-ग्रथ के रूप में पढी जाती है। केशवदास ने भी वल्लभाख्यान लिखा है। १८वी शताब्दी मे इस सम्प्रदाय के लगभग १२ दूसरे कवि हुए, किन्तु इस सम्प्रदाय के उत्तम तथा गुजरात के प्रथम श्रेणी के कवि दयाराम हुए हैं। उन्होंने आख्यान लिखे है, वल्लभ सम्प्रदाय के सिद्धान्तो को स्पष्ट करने के लिए कविताएँ लिखी हैं, भक्तो का चरित्र तथा साम्प्रदायिक भक्तों का चरित्र लिखा है, राधा-कृष्ण की क्रीड़ा के पदो की रचना की है, अनेक अच्छी गरबियाँ रची है और ब्रजभाषा का विशाल साहित्य प्रस्तुत किया है।

नरसिंह मेहता ने अपना कोई पथ नहीं चलाया, पर गुजरात मे कुछ कबीर-पंथी हैं। सूरत का कबीर-मदिर सबसे पुराना है। डा० ए० डी० ध्रुव का कहना है कि नरसिंह मेहता के ज्ञान-वैराग्यवाले पदो मे कबीर का प्रभाव रहा होगा। स्पष्ट या अस्पष्ट रूप से शकर के सिद्धान्तो का प्रभाव भी दिखाई देता है।

कवि मुकुन्द ने १८वी शताब्दी मे 'कबीर-चरित' लिखा है। भक्त भाण साहेब 'राम कबीरिया पन्थ' के प्रवर्तक हैं। इस पन्थ के कवियो ने भगवान् के प्रेम के साथ-साथ ज्ञान-वैराग्य की कविताएँ भी लिखी हैं। कवि जीवन-दास प्रभु की भक्ति स्त्री-भाव से करते थे। त्रीकम साहेब तथा हाथी साहेब अछूत वर्ग के थे।

मीराबाई रैदास की शिष्या कही जाती है, किन्तु उन्होने कृष्ण-प्रेम ही गाया है। उन पर माध्व और चैतन्य का प्रभाव दीखता है। मीरा का वैष्णव मत उसी प्रकार का है, जैसा कि नरसिंह मेहता का था। कहा जाता है कि वृन्दावन मे वे जीव गोस्वामी से मिली थी। मीरा और नरसिंह मेहता का प्रेरणा-स्रोत एक ही है। मीराबाई ने अत्यन्त भावपूर्वक शृगार-भक्ति का गान किया है। माना जाता है कि वे गुजरात आयी थी और द्वारका के प्रभु-विग्रह में लीन हो गयी।

यति द्वारकानाम (१८वीं शताब्दी) राधावल्लभ सम्प्रदाय के कवि माने जाते हैं।

सहजानन्द स्वामी (श्री हरिकृष्ण महाराज) का जन्म अयोध्या के पास छपैया में सन् १७८१ ई० में हुआ था। ग्यारह वर्ष की अवस्था में वे सप्त-वर्षीय तीर्थयात्रा को निकले। उन्होंने रामानन्द स्वामी से दीक्षा ली, जिन्होंने उन्हें उद्धव सम्प्रदाय का आचार्य होने तथा उसका प्रचार करने का आदेश दिया। वे सौराष्ट्र, गुजरात तथा कच्छ में २८ वर्षों तक उपदेश करते रहे। अपने मत के साधुओं के लिए उन्होंने बहुत कड़े नियम बनाये थे तथा धन और स्त्री के पूर्ण त्याग पर पूरा बल दिया था। उन्होंने काठियावाड़ में पशु-बलि और विधवाओं को सती प्रथा बन्द करायी, अन्ध विश्वासों को न मानने का उपदेश दिया, इन सबसे बड़ा काम यह किया कि कुछ अपराधी जातियों को सभ्य बनाया। इन सुधारवादी कामों के कारण अंग्रेज उन्हें बहुत मानते थे। दार्शनिक क्षेत्र में वे रामानुज के विशिष्टाद्वैत मत को माननेवाले थे। किन्तु सेवा-क्षेत्र में उन्होंने पुष्टिमार्ग का प्रकार स्वीकार किया था। उन्होंने २१२ पदों में 'शिक्षापत्री' की रचना की और 'वचनामृत' लिखा, जिसमें २६२ सुन्दर वचन हैं। उनके साथ वासुदेवानन्द और दीनानाथ-जैसे धुरन्धर शास्त्री थे। इस सम्प्रदाय के ६ कवियों ने संस्कृत तथा गुजराती में रचनाएँ की हैं। ये सभी सहजानन्दजी के समकालीन थे। ये ६ कवि थे—मुक्तानन्द ब्रह्मानन्द, प्रेमानन्द, निष्कुलानन्द, दयानन्द और मञ्जुकेशानन्द।

भक्त कवियों में से अधिकांश ने कृष्ण और गोपियों की लीला गायी है। उनमें से कुछ ने तो अपने को आदर्श नारी मानकर सखी भाव की रचनाएँ की हैं। प्रायः इन लीला रचनाओं को लौकिक भावों की भाषा में व्यक्त किया गया है और कहीं-कहीं तो शृंगार रस का बहुत ही सुन्दर वर्णन हुआ है। साहित्य की दृष्टि से इन कवियों की रचनाओं में बड़ी विभिन्नता है तथा निम्न श्रेणी की रचनाएँ भी पायी जाती हैं। किसी भक्त के जीवन की घट-नाएँ प्रभु की महिमा तथा मोक्ष के लिए भक्ति की अनिवार्यता का पुनरावर्तन बार-बार हुआ है।

इस प्रकार शताब्दियों तक गुजरात में नव धर्म और अन्य मतों के साथ

गुजराती साहित्य में शैव भक्ति—नरसिंह मेहता को गोपनाथ महादेव का साक्षात्कार हुआ था, जिन्होंने उन्हें कृष्ण-भक्ति की ओर लगाया। इसके पहले अन्य नागर ब्राह्मणों की तरह नरसिंह भी शैव थे। 'हारमाला' में ऐसा कहा गया है कि जो शिव और कृष्ण में भेद मानता है, वह व्यक्ति अधम है और नरक का अधिकारी है। दयाराम भी एक नागर और वैष्णव थे, किन्तु उनके काव्य में शैवमत के प्रति अनादर की भावना है, नरसिंह मेहता के काव्य में ऐसी बात नहीं है। नरसिंह तो शिव का उपकार माननेवाले हैं, जिन्होंने उन्हें कृष्ण-भक्ति की ओर उन्मुख किया। भालण ने 'शिव-भील्डी-संवाद' की रचना की है। नाकर ने 'शिव-विवाह' लिखा है। उसने 'व्याध-मृगली-संवाद तथा 'शिवरात्रि की कथा' भी लिखी है। शामल कवि ने शिवपुराण के ब्रह्मोत्तर खण्ड से सामग्री लेकर 'रेवाखंड' और 'शिव-माहात्म्य' की रचना की है, इनके अतिरिक्त सोमवार तथा शिवरात्रि की कथाएँ भी लिखी हैं। शामल के आश्रयदाता रखीदास भी शिव-भक्त थे। शिव-पुराण पर आधृत 'शिव-विवाह' की रचना मुरारि ने की। शिव-पुराण के नाम से खंभात के हरदेवराम ने 'शिव-माहात्म्य' लिखा। उन्होंने 'सीमन्तिनी आख्यान' की भी रचना की। प्रेमानन्द के समकालीन रत्नेश्वर ने 'महिम्नस्तोत्र' का अनुवाद गुजराती में किया। वसावड के नागर ब्राह्मण कालिदास ने 'ईश्वर-विवाह' लिखा। शिवानंद स्वामी ने शिव की प्रशंसा में बहुत-से पद और आरतियाँ लिखी हैं। प्रेमानन्द ने भी 'शिव-विवाह' लिखा है, किन्तु वह प्रकाशित नहीं हुआ। कुतिआणा के हरिदास ने 'ईश्वर-विवाह' लिखा है। रणछोडजी दीवानजी ने ब्रजभाषा में 'शिव-रहस्य' तथा गुजराती में 'शिव-गीता' की रचना की है। कवि मीठु ने शिव के अर्धनारीश्वर रूप की स्तुति लिखी है। अविनाशानन्द ने 'शिव-गीता' की रचना की है। दयाराम के समकालीन कपडवणज-निवासी मयाराम ने शंकर की अनेक स्तुतियाँ लिखी हैं। 'बृहत्काव्य दोहन' के अनेक खण्डों में देवीदास, गोविन्दराम, 'जीवराज, रघुनाथदास, श्रीधर और दामोदर दास की शैव रचनाएँ प्रकाशित हैं। शिव और शक्ति के सामरस्य को शैव तथा शाक्त दोनों मानते हैं। अतः कहा जा सकता है कि शिव की

आराधना शाक्त कवि भी करते हैं। यद्यपि १५वीं शताब्दी के बाद गुजरात में किसी विशेष शैव सम्प्रदाय का प्रचार नहीं था तो भी लोग विशेषकर ब्राह्मण—पौराणिक शैवमत के अनुयायी थे। गुजराती साहित्य में वैष्णव मत की अपेक्षा शैवमत का प्रभाव कम दीखता है। इसके अतिरिक्त वैष्णवों में से वल्लभसम्प्रदाय तथा स्वामीनारायण के उद्धव सम्प्रदायवालों ने साम्प्रदायिक वैष्णव साहित्य का सृजन किया। किंतु गत कई शताब्दियों में गुजरात में पौराणिक कोटि का शैवमत ही चलता रहा, अतः गुजराती में साम्प्रदायिक शैव-साहित्य प्रायः नहीं के बराबर है।

शाक्त-सिद्धांत

शक्ति-पूजा का संक्षिप्त विवेचन—देवी-उपासना अत्यन्त प्राचीन है। वैदिक साहित्य में अदिति, उषा, सूर्या, वाक् श्री तथा अन्य देवी के रूप में पूजी गयी हैं। शक्तिवाद के कई उपनिषद् हैं, जिनमें से कुछ की टीका अप्पय्य दीक्षित तथा भास्कर राय-जैसे प्रसिद्ध विद्वानों ने की है। परशुराम के कल्पसूत्र, अगस्त्य भारद्वाज नागानन्द तथा दूसरों के शक्तिसूत्र, श्री शंकर के परमगुरु गौडपाद के श्री विद्यारत्न सूत्र—यह सब शक्तिवाद का सूत्र-साहित्य है। मार्कण्डेय पुराण का 'सप्तशती', ब्रह्माण्ड-पुराण का 'ललिता सहस्रनाम' तथा 'ललिता त्रिशती' तथा 'देवी भागवत' आदि पौराणिक शाक्त साहित्य है, जो बहुत अधिक पढ़ा जाता है। इसी प्रकार लघुपचस्तव गौडपाद का 'सुभगोदय', शंकराचार्य की 'सौन्दर्य लहरी' तथा 'देवी महिम्न स्तोत्र' आदि कुछ प्रसिद्ध रहस्य स्तोत्र हैं। लक्ष्मीधर के अनुसार ६४ शाक्त तंत्र हैं, जो वेद बाह्य हैं, ८ शाक्त तंत्र मिश्र प्रकृति के हैं, जिनमें उच्चवर्गों के लिए दक्षिणाचार तथा निम्नवर्गों के लिए वामाचार का निर्देश है। इनके अतिरिक्त ५ शुभागम तंत्र हैं जो वैदिक हैं वे हैं वसिष्ठ सनक शुक, सनन्दन और सनत्कुमार। ये पाँचों तंत्र समयाचार हैं। शक्ति-उपासना में मंत्र प्रायः बीजाक्षर युक्त हैं। इनमें यंत्र अथवा ज्यामितिक रचनाएँ हैं। देवी-आराधना में बाह्यपूजा तथा आन्तर पूजा दोनों हैं। शरीर के षट्चक्रों के द्वारा यौगिक क्रियाएँ भी इसमें बतलायी गयी हैं। भारत में कुल ५२ प्रधान शक्ति-पीठ हैं। जब सती

वान् शिव अचेतावस्था में अपने कंधों पर सती के शव को लिये जा रहे थे, तब विष्णु ने उस शव को ५२ खण्डों में काट दिया। प्रत्येक खण्ड भारत के विभिन्न स्थान पर गिरा। इस प्रकार वे ५२ स्थान, जहाँ ५२ खण्ड गिरे, शक्ति-पीठ बन गये। कहीं-कहीं इन पीठों की संख्या १०८ बतायी गयी है। देवी भागवत के अनुसार गुजरात मे कई शक्ति-पीठ हैं—द्वारावती, सोमेश्वर, प्रभास, सरस्वती और समुद्र-तीर। सरस्वती पुराण के अनुसार सिद्धराज ने सहस्रलिंग झील के चारो ओर १००० शिव-लिङ्गों की स्थापना की और १०८ शक्ति-पीठ बनवाये, जिनके मध्य मे हरसिद्धा देवी हैं। सिरोही के समीप पिंडवारा मे ६२५ ई० का एक शिलालेख है, जिसमे देवी क्षेमार्या की पूजा का उल्लेख है।

वर्तमान समय में गुजरात में तीन मुख्य शक्ति-पीठ है—एक आरासुर में अम्बिका पीठ; दूसरा उत्तर गुजरात मे चुवाल का वाला बहुचरा पीठ, तीसरा चापानेर के समीप पावागढ का काली पीठ। गुजरात मे देवी के अनेक प्रसिद्ध मंदिर भी है—कच्छ मे आशापुरा; कोलगिरि में हरसिद्धि; हलवद मे सुन्दरी, आबू पर्वत पर अर्बुदादेवी, नर्मदा-तट पर अनसूया का मंदिर है। ऐसा कहा जाता है कि अम्बा माता की मूर्ति आरासुर मे सूरत सुरक्षा की दृष्टि से लायी गयी थी। गुजरात मे अम्बिका, ललिता, बाला, तुलजा तथा श्रीकुल के दूसरे रूपों की पूजा होती है। गुजरात की काली भद्रकाली है और दक्षिणाचार की है। आरासुर की अम्बिका का मंदिर बहुत पुराना है। परम्परा बताती है कि कृष्ण का मुंडन-संस्कार यहीं हुआ था। नागर ब्राह्मण इस देवी के विशेष उपासक है। वे प्रतिवर्ष आरासुर को सब ले जाते है। ऐसा कहा जाता है कि पावाचल की पहाड़ी—जहाँ काली देवी का मंदिर है—का आकार कालिका यंत्र की भाँति है। भागवत १०–४–१२ मे कहा गया है कि वह योगमाया, जो कंस द्वारा धरती पर पटकी जाती समय लुप्त हो गयी थी, बहु अथवा बहुचरा देवी के नाम से प्रख्यात हुई। परंपरा के अनुसार आरासुर में देवी का बायाँ स्तन कटकर गिरा था, इसीलिए वह ५२ प्रमुख शक्ति-तीर्थों में से एक है।

कवि सोमेश्वर (११७९–१२६२ ई०)—एक नागर ब्राह्मण, सोलंकी-शासकों का पुरोहित तथा लब्धप्रतिष्ठ कवि—ने संस्कृत मे एक बहुत सुन्दर

काव्य की रचना की है, जो 'मुग्धोपद' कहलाता है और जो मार्कण्डेय पुराण की सप्तशती कथा पर आधारित है।

शैव और शाक्तों का दर्शन समान है। दोनों अद्वैत मत को मानते हैं, उनकी तान्त्रिक तथा यौगिक क्रियाएँ भी एक-सी हैं और दोनों ३६ तत्त्वों को स्वीकार करते हैं। जहाँ शिव की पूजा है, वहाँ शक्ति की भी है, और जहाँ शक्ति की पूजा है, वहाँ शिव की। ईसा की दूसरी शताब्दी में पूर्व भारत व पश्चिमी भागों में शक्ति-पूजा बहुत प्रचलित थी। वल्भी-शासन में अम्बा भवानी की उपासना जोरों पर थी। सन ७५६ ई० में जब मुसलमानों ने वल्भी पर आक्रमण किया था, वल्भी के महाराज शिलादित्य की रानी अम्बाजी की यात्रा पर गयी थी।

वर्तमान काल में गुजरात की शक्ति-पूजा केवल दक्षिणाचार की है। गुजरात में शक्तिवाद का साम्प्रदायिक साहित्य बहुत नहीं पाया जाता। देवी-भक्तों ने मुख्यतः शक्ति की स्तुति में काव्यों की रचना की है। सम्भवतः जो साम्प्रदायिक साहित्य रचा भी गया होगा, वह या तो नष्ट हो गया है अथवा प्राप्त नहीं है।

गुजराती साहित्य में शाक्तभक्त—नाथ भवान—वडनगर के एक ब्राह्मण—(१६८१ से १८०० ई०) जूनागढ की माता राधेश्वरी के उपासक थे। ८१ कड़ियों में रचा हुआ उनका गरबा 'अम्बा आनन', जो अप्रकाशित है प्रायः गाया जाता है। उन्होंने ही 'श्रीवर्गीता' तथा ब्रह्मगीता का अनुवाद किया है। जीवन के पिछले दिनों में वे संन्यासी हो गये थे। शाक्त कवियों के सर्वोत्तम वल्लभ धोला (१६४० से १७५१ ई०) हैं। उन्होंने नियमित रूप से शिक्षा नहीं पायी थी किन्तु कहा जाता है कि नवार्णमन्त्र की कृपा से उन्हें सारी विद्या प्राप्त हो गयी। देवी की प्रशंसा में उन्होंने अनेक गरबों तथा गरबियों की रचना की है। दक्षिणाचार के अनुसार बराबर बाला बहुचरा की आराधना करते रहे और १११ वर्ष तक जिये। आधुनिक काल के किसी कवि ने ऐसी श्रेष्ठ कविता देवी की प्रशंसा में गुजराती में नहीं लिखा। हरगोवन ने मुरत की अम्बा माता की स्तुति में एक गरबा लिखा है। प्रेमानन्द ने स्त्रीचरित्र 'और मार्कण्डेय पुराण' की रचना की।

मीठु (१७३८–१७९१) एक मोढ ब्राह्मण थे। उन्होंने विन्ध्याटवी जाकर 'श्रीनाथ विद्या' प्राप्त की। उन्होंने सस्कृत तथा गुजराती मे शाक्त-साहित्य के रूप मे बहुत-से ग्रथ तथा पद लिखे। शकराचार्य की 'सौन्दर्य लहरी' का अनुवाद भी उन्होंने किया। यह १०३ पदो का समश्लोकी अनुवाद है—जिसे 'श्री लहरी' कहते है। आधुनिक काल मे कवि बालाशङ्कर ने भी 'सौन्दर्य लहरी' का अनुवाद किया है। जनीबाई इन्ही मीठु महाराज की शिष्या थी। उन्होंने भी देवी पर कुछ पद लिखे हैं। मीठु महाराज द्वारा उन्हे श्री विद्या का रहस्य प्राप्त हुआ था।

दार्शनिक साहित्य

गुजराती का दार्शनिक साहित्य—कृष्ण द्वारका में निवास करते थे। शकराचार्य के गुरु गोविन्दपाद का आश्रम नर्मदा-तट पर था। शकराचार्य द्वारा स्थापित चार मठो मे पश्चिमी भारत का मठ द्वारका में है और परम्परा बताती है कि सुरेश्वराचार्य इसके अधिपति थे। यहाँ के उव्वट जैसे विद्वानो द्वारा वेदो पर भाष्य लिखे गये हैं। नकुलिश पाशुपत सम्प्रदाय के सस्थापक तथा उनके अधिकतर अनुयायी यही हुए। परम्परा के अनुसार कपिल, गौतम और कणाद ने अपने-अपने सिद्धान्तो का विकास यही किया। भड़ोच के गुजराती ब्राह्मण चक्रधर ने महाराष्ट्र में महानुभाव पन्थ की स्थापना की। वल्लभ के विद्वान् शिष्यो ने गुजरात को ही अपना घर बनाया। यहीं पर सहजानन्द स्वामी ने उद्धव-सम्प्रदाय की स्थापना की। दयानन्द स्वामी—जो अपने पूर्वाश्रम मे मूलशकर थे—ने अपने अंतिम समय में यहाँ आर्य-समाज की स्थापना की। इसीप्रकार बुद्ध तथा जैन धर्मो के प्रसिद्ध आचार्य, यहाँ तक कि कलिकाल सर्वज्ञ हेमचन्द्राचार्य भी यही हुए।

नरसिंह मेहता के ज्ञान-वैराग्यवाले पद बहुत ऊँचे दार्शनिक पद हैं। इनसे भागवत के अद्वैत दर्शन का प्रभाव सिद्ध होता है और कालान्तर मे जिस पर शकराचार्य का प्रभाव यत्र-तत्र दिखाई देता है। दूसरे महत्त्वपूर्ण रचयिता महान् वेदान्ती कवि अखा हैं। उनके ग्रथ 'अखेगीता', 'अनुभव बिन्दु' तथा 'पचीकरण' से सिद्ध होता है कि शकराचार्य के केवलाद्वैत सिद्धान्तो पर उनका

किनना अधिकार था। केवल यहा के दूसरे प्रसिद्ध लेखक भक्त धीरा हैं। नागर और बापूसाहब गायकवाड धीरा के समकालीन थे, जिन्होंने निर्गुण भक्ति और ज्ञान पर लिखा है। प्रीतमदास नानप्रकाश, छोटम, भाणसाहब, रविसाहब दामोदर शर्मा, जीवनराम तथा भाजो ने वदान्त, ज्ञान, त्याग तथा वैराग्य के विभिन्न स्वरूपो पर लिखा है। भीम, धनराज, रामभक्त, नरहरि, गोपाल, बुटिजा गवरीबाई, मनोहर स्वामी, कबीर पथिया एव नाथपथिया ने भी ज्ञान अथवा भक्ति मिश्र ज्ञान पर कविताएँ लिखी हैं। रणछोडजी दीवान निर्गुणवादी हैं। वल्लभ भाग तथा मीठु महाराज ने अपनी कविताओ में नाना-दर्शन का भी विवेचन किया है। दयाराम ने तो पुष्टिमार्गीय वल्लभ सम्प्रदाय का बहुत बडा साहित्य रचा है। सहजानन्द स्वामी तथा उनके ६ कवियो वाले दल ने उद्धव मत पर लिखा है। जैसा कि स्वय सहजानन्द स्वामी का कहना है, अपने द्वारा स्थापित उद्धव मत की दार्शनिक पृष्ठ भूमि पर उन्होंने रामानुज के विशिष्टाद्वैत दर्शन को स्वीकार किया है। जहाँ तक साम्प्रदायिक वैष्णव सिद्धान्तो का सम्बन्ध है वल्लभ सम्प्रदाय दयाराम द्वारा तथा उद्धव सम्प्रदाय स्वामी नारायण कवियो द्वारा बहुत अच्छी तरह वर्णित हुआ है। जन विद्वानो ने जैन धर्म तथा दर्शन सम्बन्धी रचनाओ का जारी रखा है।

अध्याय ६

पन्द्रहवीं शताब्दी का साहित्य

नरसिंह मेहता

दीर्घकाल से नरसिंह मेहता गुजराती के आदि कवि माने जाते हैं। यद्यपि उनके कई पूर्ववर्ती कवियों—विशेषकर जैन साधुओं—की कृतियाँ प्रकाश में आयी हैं और काल की दृष्टि से नरसिंह मेहता चाहे आदि कवि न ठहरते हों, किन्तु श्रेष्ठता व परिमाण की दृष्टि से विचार करने पर वे असाधारण सिद्ध होते हैं। अतः अब भी हम उन्हें गुजराती का आदि कवि कह सकते हैं। उनकी कविता इतनी प्रचलित और प्रसिद्ध हो गयी है कि उनके काव्यों में गुजराती का प्राचीन रूप जनता के मुखों में ही लुप्त हो गया और जनता, प्रतिलिपि-कर्त्ताओं तथा प्रकाशकों ने उन स्थानों पर आधुनिक रूप रख दिये। जो पद अधिक प्रचलित नहीं हुए, उनमें अब भी उनकी पुरानी भाषा सुरक्षित है।

वे एक भक्त कवि थे। प्रभु पर अत्यधिक विश्वास रखने तथा पूर्ण आत्मसमर्पण करने के कारण उनके योगक्षेम का भार श्रीकृष्ण पर ही था, जैसी कि गीता में उन्होंने प्रतिज्ञा की है। कठिनाई के अनेक अवसरों पर उन्हें भगवान् की ओर से सहायता प्राप्त हुई। स्वभावतः आस्तिक जनों ने ऐसी अप्रत्याशित सहायताओं को दैवी चमत्कार के रूप में माना है। मुख्यतः ऐसी सहायताएँ पाँच हैं—१. हार, २. हुंडी, ३. मोसालु, ४. विवाह, ५. श्राद्ध। स्वयं उन्हीं की कविताओं में हमें इन सहायताओं का संकेत मिलता है। परवर्ती कवियों—जैसे, विश्वनाथ जानी, प्रेमानन्द, रेवाशंकर, रघुनाथ, मोतीराम, नाभाजी—ने इन चमत्कारिक घटनाओं का उल्लेख किया है।

नरसिंह मेहता एक वडनगरा नागर ब्राह्मण (गृहस्थ) थे। उनके पिता का नाम कृष्णदास, पितामह का पुरुषोत्तम दास तथा माता का नाम दयाकोर

था। उनके भाई वंसीधर थे, जो मंगलजी अथवा जीवनराम के नाम से भी पुकारे जाते थे। उनके चाचा का नाम पर्वतदास था। उनका जन्म जूनागढ़ के निकट तलाजा ग्राम में हुआ था। उनका जन्म परंपरा से सन १४१८ में माना जाता है। कुछ विद्वानों—विशेषकर डाक्टर डा० बा० ध्रुव तथा डाक्टर क० मा० मुन्शी—का मत है कि नरसिंह पर चैतन्य का बहुत प्रभाव था और गोविन्ददास के कड़चा (कड़छा) के आधार पर—जिसमें चैतन्य का सौराष्ट्र में आना कहा गया है—वे नरसिंह का जन्म-काल बाद में मानते हैं। किन्तु यह कड़चा (कड़छा) अप्रमाणित सिद्ध हो चुका है। अतः नरसिंह पर चैतन्य के प्रभाव की अपेक्षा यह मानना अधिक सरल है कि उन पर ब्रह्मवैवर्त, भविष्योत्तर, जयदेव एवं भागवत का प्रभाव था जहाँ से उन्हें वह सारी सामग्री मिली, जिसे लोग चैतन्य से मिली समझते हैं। नरसिंह मेहता का रचनाकाल मान्य काल सन १४१४–१४८० है। उनके एक पद में कबीर का उल्लेख है एक में मराठी भाषा का पुट है और कुछ में नामदेव-जैसे महाराष्ट्री संतों का प्रभाव भी दीखता है किन्तु इन तथ्यों से उनके काल में कोई अन्तर नहीं पड़ता।

उनके माता पिता का बचपन में ही देहान्त हो गया था और वे अपने भाई के साथ रहते थे। यद्यपि ग्यारह वर्ष की अवस्था में ही उनका विवाह पक्का हो गया था, तथापि उनके विचित्र लक्षणों को देखकर वह सम्बन्ध टूट गया। अनन्तर सन १४[illegible] में उनका विवाह माणिकबाई के साथ हुआ। भाई के साथ रहकर भी वे कुछ कमाते नहीं थे परिणामस्वरूप प्राय नित्य ही भैया भाभी द्वारा उन पर डाँट पड़ती थी। एक बार इतनी अधिक फटकार पड़ी कि उनके हृदय को बड़ा आघात पहुँचा और वे गोपेश्वर मन्दिर के शिवजी को तपस्या द्वारा प्रसन्न करने के उद्देश्य से घर से निकल गये। चैत्र शुक्ल ७ से उन्होंने उपवास आरंभ किया। ७ दिन बाद चैत्र शुक्ल १४ को उन्हें गोपेश्वर महादेव के दर्शन हुए। जब उनसे वर माँगने को कहा गया, तो उन्होंने वही वर माँगा जो स्वयं शिवजी को प्रिय है अर्थात् कृष्ण भक्ति और साथ में रास-लीला का दर्शन। ऐसा कहा जाता है कि शिवजी उन्हें द्वारका ले गये तथा रासक्रीडा दिखायी। नरसिंह हाथ में मशाल लिये बड़ी तन्मयता से देख रहे थे।

ऐसा कहा जाता है कि नरसिंह रामक्रीडा के देखने मे इतना खो गये कि मशाल में तेल डालने की बजाय उस हाथ पर तेल डाल रहे थे, जिससे मशाल पकड़े थे। फल यह हुआ कि उनका हाथ जलने लगा, किन्तु इसका उन्हे पता तक न चला। इसी घटना के कारण वे दिवटिया भी कहलाने लगे। उस समय नरसिंह की भक्ति को राधा के सम्मुख प्रमाणित करने के लिए श्रीकृष्ण ने राधा की नथनी चुरा ली। नरसिंह को घर जाने की तथा कृष्णभक्ति एव रासलीला के पद गाने की आज्ञा मिली। जब वे जूनागढ आये, तब कहा जाता है कि पहला पद उन्होने राधा की नथनी-चोरी का ही गाया—"नागर नन्दजी ना लाल, रास रमता रमता मारी नथनी खोवाणी।"

उपर्युक्त घटना से नरसिंह के जीवन मे बहुत बडा परिवर्तन हुआ। वे अलग रहने लगे। उनके एक पुत्र शामल शाह और एक पुत्री कुँवर बाई थी। वे नित्य दामोदर कुण्ड पर स्थित दामोदर-मंदिर के भगवान् की पूजा करते थे। उसका रास्ता अछूतो की बस्ती ढेडवाड़ा से होकर था और जब वे अछूत उन्हे भजन सुनाने का आमत्रण देते थे, तब बड़ी प्रसन्नता से वे जाकर भजन-कीर्तन सुनाते थे, कभी-कभी तो सारी रात बीत जाती थी। कट्टर शैव नागर लोग उनके इस व्यवहार को सहन न कर सके, और उन्होंने अनेक प्रकार से उन्हे सताने का प्रयत्न किया।

एक बार कुछ शरारती नागर बालको ने कुछ तीर्थयात्रियो से झूठमूठ कह दिया कि यहाँ जूनागढ़ मे नरसिंह मेहता आपका रुपया जमा कर लेगा और द्वारका के प्रसिद्ध सेठ के नाम हुडी लिख देगा, जिससे वहाँ आपको रुपया मिल जायगा। यात्रियो ने बात ठीक मानकर नरसिंह से रुपया जमा करने की प्रार्थना की। उनके बहुत कहने पर नरसिंह ने उनका ७०० रुपया जमा कर लिया और 'शामलशाह'—अपने इष्टदेव श्रीकृष्ण—के नाम हुडी लिख दी। कहा जाता है कि अपने भक्त की लाज रखने के लिए श्रीकृष्ण शामलशाह सेठ के रूप मे आये और हुडी का रुपया चुकाया। यह घटना सन् १४४३ मे घटी बतायी जाती है। इसी प्रकार उनके पिता के श्राद्ध के समय भी उन्हे दैवी सहायता प्राप्त हुई थी।

अतिम भाग मागरोल मे व्यतीत किया। अपने जीवन द्वारा उन्होने गीता का यह श्लोक सिद्ध करके दिखा दिया कि—

अनन्याश्चिन्तयन्तो मा ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥

उनकी कृतियाँ—नरसिंह ने अपने कुछ पदो मे अपने जीवन की कुछ बातो को विस्तार मे वर्णन किया है। पदो के अतिरिक्त उनकी अन्य कृतियाँ है—सुदामाचरित्र, गोविन्दगमन, दानलीला, चातुरिओ, सुरत-संग्राम, राम सहस्रपदी, शृगारमाला, वसन्तना पदो, हिडोलाना पदो, कृष्णजन्मना पदो और इन सबसे श्रेष्ठ भक्ति, ज्ञान, वैराग्य के पद। नरसिंह पर जयदेव का बहुत अधिक प्रभाव था, जिसे उन्होने स्वीकार किया है। यद्यपि उनके कई पदो में खुला शृगार है, तथापि उनकी भक्ति इतनी उच्च कोटि की थी कि उनमें कुत्सित वासना की गध नही है। भक्ति की प्रगाढता, साहित्य की प्रचुरता, काव्यगत विशिष्टता तथा साधुता—इन सभी दृष्टियो से अन्य कोई कवि उनके समकक्ष भी नही पहुँच सका, आगे बढ़ने की बात तो बहुत दूर है। दयाराम को नरसिंह का अवतार माना जाता है। जिस नागर समाज ने उन्हे सताया था, उसीने बाद में नरसिंह को अपना रत्न माना। भक्तो ने उन्हें अपना नेता माना और गुजरात उन्हें आदि कवि के रूप में पाकर गौरवान्वित हुआ। द्वारका मे उनकी मूर्ति स्थापित हुई है। उनका नाम अत्यन्त श्रद्धा-भक्ति के साथ लिया जाता है।

आत्मकथा सम्बन्धी पदो मे उन्होने अपनी निर्बलता और नम्रता का वर्णन किया है तथा अन्य श्रेष्ठ भागवत सतो की भाँति वे भी कृष्ण की कभी स्तुति और कभी उपालभ करते है, कृष्ण के सम्मुख कभी रोते है, कभी हँसते है और कभी गाते है, कभी नाचते है। बडी सच्चाई और सादगी से उन्होने अपना सब कुछ श्रीकृष्ण को समर्पित कर दिया था और उनकी प्रगाढ भक्ति में वे खो गये (देखिए, भागवत ११–३–३२)। उन्होने अनेक पदो मे श्रीकृष्ण-लीला का गान किया है। 'गोविन्दगमन', 'सुरत-सग्राम' और 'सुदामाचरित्र' आख्यानो के अतर्गत आ सकते है। यद्यपि आख्यान के सभी

विकसित लक्षण इनमें नहीं पाये जाते, किन्तु बीजरूप विद्यमान हैं। उन्होंने अत्यन्त पवित्र भाव से प्रेमलक्षणा भक्ति का गान किया है। उनके कई पद बड़े गीतात्मक हैं और गरबी की भाँति गाये जा सकते हैं। रामलीला तथा कृष्ण की अन्य लीलाओं का वर्णन उन्होंने ऐसे विश्वास के साथ किया है, मानो उन्होंने प्रत्यक्ष उन लीलाओं का साक्षात्कार किया हो। उनका 'वसन्त विलास' फागु काव्य माना जा सकता है। उसके एक पद में १२ महीनों का भी वर्णन है, जिसे एक छोटा बारहमासी कह सकते हैं। यद्यपि 'राम सहस्रपदी' से एक हज़ार पद होने की ध्वनि निकलती है, किन्तु उसमें बहुत कम पद हैं। गोविंद-गमन, सुरत-संग्राम और दानलीला के संबंध में विद्वानों को संदेह है कि ये सचमुच नरसिंह की कृतियाँ हैं अथवा नहीं।

उनके ज्ञान वैराग्य के पद यद्यपि संख्या में थोड़े हैं, तथापि बहुत प्रसिद्ध हैं। उनका कथन भव्य है। वे प्रायः प्रातःकाल गाये जाते हैं, इसलिए उन्हें प्रभाती कहा जाता है। उनमें से अधिकांश का छन्द झूलणा बंध है। जैसा कि भागवत में वर्णित है, सच्चे भक्त मुक्ति की भी परवाह नहीं करते, चाहे वह सालोक्य सामीप्य, सायुज्य, सारूप्य अथवा एकत्व किसी भी प्रकार की हो—(भागवत, ३–२९–१३)। वे केवल परा भक्ति की कामना करते हैं और वह भी साध्य रूप में, साधन रूप में नहीं। यह भाव नरसिंह मेहता द्वारा प्रायः व्यक्त किया गया है। इन पदों की भाषा और भाव अत्यन्त प्रेरणा-दायी हैं तथा ये पद उनकी परिपक्व अवस्था के हैं—ऐसा माना जाता है। नरसिंह का काव्य मनोरम है, भाषा गीतमय है, स्वयं स्फुरित रागों में विविधता है।

श्रीकृष्ण द्वारा नरसिंह के पुष्पमाला पहनाये जाने का वर्णन बड़ा सजीव है। साधुगण उन्हें कटाक्ष करके कहते हैं "रह रह घेला नागरा आवडो शानो अहंकार'—(ओ पगले नागर! ज़रा ठहर। तुने इतना आत्म विश्वास और अभिमान क्यों है?) 'वस्त्या रे नागर नरसया वाय्यु आहीरनु खाधु रे'—(ओ नागर नरसया! तू भ्रष्ट हो गया क्योंकि तूने अहीरों का छुआ भोजन खा लिया।) कृष्ण-स्तुति के लिए केदार राग बहुत उपयुक्त है किन्तु नरसिंह ने बहुत थोड़े पैसों में उसे धरणीधर महता के पास गिरवी रख दिया

था। बाद में कृष्ण ने उसे छुड़ाया। तब नरसिंह भगवान् को पुकारता है—"उठो जदुनाथ देवाधिदेवा"—(हे देवाधिदेव यदुनाथ उठिए।) "कहेशे नागरो कोहनु नाम गातो हतो"—(अन्यथा नागर मुझ पर कटाक्ष करेंगे कि तू इतने दिनों तक किसका भजन करता था।) "हार काजे शूं विलम्ब करवो वणो ?"—(साधारण से हार के लिए आप इतनी देर क्यों कर रहे हैं ?) "राख्य हु विप्रने रक जाणी"—(मुझे एक निर्धन ब्राह्मण जानकर मेरी रक्षा कीजिए।) "कमाड कडकदीया गडगडीयां रे माडलीकना मदीर"—(माडलिक के भवन के कपाट खड़खड़ाने-भड़भड़ाने लगे।)

अविनाशी प्रभु आये और उन्हें हार पहनाया। श्री रणछोड दीनानाथ ने नरसिंह का गाढ आलिगन किया, जिसके आनद की सीमा न थी।

रामलीला देखते समय नरसिंह भगवान् के दिवेटिया बने थे, जैसा कि उनकी इस पक्ति से स्पष्ट है—"दिवेटियो रे दिवेटियो, नरसैयो हरिनो दिवेटियो।" उनके कुछ पदों मे ये भाव वर्णित हैं—

१. शामलियानी सगे रमता मान तजीने मलिए रे।
 —साँवलिया के साथ क्रीड़ा करते समय समस्त अभिमान त्याग देना चाहिए।
२. मारो नाथ न बोले बोल, अबोला मरिए रे।
 —मेरे नाथ मुझसे बोल नहीं रहे हैं, उनके बिना बोले मेरी तो मृत्यु ही हो जायगी।
३ कहाँ जाउ रे वेरण रात मली।
 —मैं अब कहाँ जाऊँ, वैरन रात आ गयी है।
४. मदिर माहे मोहन महाले फूली अगे न माउ रे।
 —मोहन मेरे घर मे आनन्द कर रहा है, मैं फूली अग नही समाती।
५ केसर भीना कहानजी, कसुंबे भीनी नार।
 —कान्हा केसर के रग में भीगे हैं और गोपी कुसुंबी रग मे।
६ लटको तारो लाख सवानो, मरकलडानूं मूल नहीं।
 —तेरा लटका सवा लाख का है और तेरी मुसकान तो अमूल्य है।
७ नरसैया नो स्वामी भले मलियो, नारपणु भले पाम्या रे।

=नग्मया के प्रभु को पाकर हम बहुत प्रसन्न हैं, इसके लिए स्त्री रूप धारण करने में हमें कोई आपत्ति नहीं।

८ तू क्या ना दाणी र धगटमल्ल, तू क्या ना दाणी र।
=ए धगटमल्ल! तुझे गोपियों से दान लेने को किसने नियुक्त किया?

९ वांसडी वेरण मारी र हींगे वन वीधा र वैकुंठनाथ रे नार धुनारी।
=ऐ बाँसुरी! तू मेरी वैरिन है। तू बड़ी धूर्त है। तूने वैकुंठनाथ को वश में कर लिया है।

१० सखी आजनी घडी रलीयामाणी, मारा वालाजी आव्या वधा मणी।
=सखी, आज की घड़ी शुभ है, क्योंकि मेरे वालाजी के आने का शुभ समाचार मिला है।

११ नहीं मेलुं नन्दलाल, छेड्ला नहि मेलुं।
=ओ नन्दलाल, तुम्हारा पकड़ा हुआ दुपट्टा मैं नहीं छोड़ूंगी।

१२ जशोदा तारा कानुडाने साद करीने वार रे।
=यशोदा! अपने कन्हैया को डाँटो और संयम करने से रोको।

१३ ओ पेला चाँदलिया आइ मुने रमवाना आपो।
=ऐ माँ! वह चाँद मुझे खेलने के लिए दे।

१४ जल कमल छाडी जाने बाला स्वामी हमारा जागशे।
जागशे तुने मारशे, मुने बालहत्या लागशे॥
=ओ बालक! तू जल और इन कमलों को छोड़कर भाग जा, नहीं तो हमारा स्वामी कालिया नाग जागेगा और तुझे मार डालेगा तो हमें बालहत्या का पाप लगेगा।

१५ हरिना जन तो मुक्ति न मागे, मागे जन्मोजन्म अवतार रे।
=हरि का भक्त तो मुक्ति नहीं मांगता, वह तो बार-बार जन्म मांगता है।

१६ द्वारकाना वासी रे, अवसरे आवजो रे, राणी रुक्मिणी केरा कंथ।
=हे द्वारकावासी! हे रुक्मिणी के पति! हमारी रक्षा के लिए उचित अवसर पर आइए।

१७ एवा रे, अमो एवा रे एवा, तमो कहो छो वली तेवा रे।

—हम तो स्वभाव से ही वैसी है, यदि आप कटाक्ष करते है, तो हम स्वीकार करती है कि हम वैसी ही है, जैसा आप कहते है।

१८ सन्तो अमे वेपारिया श्री रामनाम ना।
—ऐ सन्तो ! हम तो राम-नाम के व्यापारी है।

१९ जागने जादवा कृष्ण गोवालिया, तुझ विन वेणमा कुण जाशे।
—ऐ यादव कृष्ण ! गोपाल ! उठो, तुम्हारे विना गोशाला मे कौन जायगा ?

२० प्रेम रस पाने तु मोरना पीछधर तत्त्वनु टूपण तुच्छ लागे।
—ओ मोरपखीधारी कृष्ण ! तुम हमे प्रेमरस पिलाओ, तत्त्व की व्याख्या हमे तुच्छ लगती है।

२१. ध्यान धर ध्यान धर नन्दना कुँवरनु जथेकी अखिल आनन्द पाये।
—नन्द के लाल का सदा ध्यान करो, इससे पूर्ण आनन्द की प्राप्ति होगी।

२२ जे गमे जगद्गुरु देव जगदीश ने ते तणो खरखरो फोक करवो।
—सृष्टिनायक जगदीश को जो रुचे, उसके लिए शोक मत करो।

२३ चेत रे चेत दिन चार छे लाभना लीबु लहेकावता राज लेवु।
—ऐ प्राणी ! चेत, चेत, कमाई करने के बस चार ही दिन है। तुझे इतने समय मे राज्य प्राप्त करना है, जितने समय मे नींबू उछाल कर लोका जाता है।

२४ निरखने गगनमा कोण घूमी रह्यो, तेज तु तेज तु शब्द बोले।
—देख, आकाश (हृदय का दहराकाश) में सर्वात्मा प्रकट होकर कहता है, तत्त्वमसि-तत्त्वमसि।

२५ अखिल ब्रह्माण्डमां एक तु श्रीहरि जूजवे रूपे अनन्त भासे।
—इस सम्पूर्ण सृष्टि मे एकमात्र हरि ही है, जो अनन्त रूपो मे दिखाई दे रहा है, जैसे भिन्न-भिन्न नाम-रूपवाले आभूपणो मे सोना एक ही रहता है।

२६ जागी ने जोउ तो जगत दीसे नहि ऊंघ मा अटपटा भोग भासे।
चित्त-चैतन्य-विलास तद्रूप छे ब्रह्म लटका करे ब्रह्म पासे॥
—जब मै जगकर देखता हूँ तो अनेकता नही दीखती। ये सब अटपटे रूप केवल स्वप्न में ही आते है। यह सब चित्त की चेतनता का

विलास है। अन्त में केवल वह तत्त्व अथवा ब्रह्म ही है। प्रकट में ब्रह्म ब्रह्म के साथ क्रीड़ा कर रहा है।

२७ आप ने बीज ना आप इच्छाए थया।

—वह परम आत्मा अपनी इच्छा से पृथक्-पृथक् आत्मा हुआ है।

२८ ज्यां लगी आत्मा तत्त्व चीन्यो नहीं, त्यां लगी साधना सर्व झूठी।
भणे नरसैयो के तत्त्वज्ञान विना रत्नचिन्तामणि जन्म खोयो॥

—जब तक आत्मा के तत्त्व को नहीं पहचाना तब तक सारी साधना कच्ची है—ऐसा मानना चाहिए। नरसैया कहता है कि उस तत्त्व का दर्शन यदि नहीं किया तो चिन्तामणि रत्न के समान मनुष्य जन्म का व्यय कर दिया।

नरसिंह के भक्ति-पद भागवत के इस श्लोक की व्याख्या करते हैं—

न मय्यावेशितधियां कामः कामाय कल्पते।
भर्जिता क्वथिता धाना प्रायो बीजाय नेष्यते॥

भागवत, १० २२-२६

जिनका मन पूर्णरूप से श्रीकृष्ण में लग गया है, उनके लिए काम काम नहीं रह जाता, क्योंकि भुना हुआ अन्न बीज बनकर उग नहीं सकता।

नरसिंह के कुछ पदों में उपनिषद्-ज्ञान की गंध और आत्मानुभव की प्रतिध्वनि प्रतीत होती है। यों वल्लभाचार्य और महाप्रभु चैतन्य का काल नरसिंह के बाद का है। नरसिंह के दर्शन में हम भागवत का अद्वैत और भागवत नवधा की अहैतुकी भक्ति पाते हैं। ये उसका भक्ति से आगे जाकर प्रेमभक्ति को प्राप्त करते हैं। इनके पदों में यत्र-तत्र बिखरा ज्ञान वेदान्त ज्ञान है जिस पर आद्य शंकराचार्य की छाया स्पष्ट है और जो उनके बाद आने वाले आचार्य वल्लभ के ज्ञान में भी अनुरूप है। नरसिंह का कहना है कि पारमार्थिक अवस्था में मायानिवृत्ति के कारण जगत् की बाधा है। 'जागीने जोउं तो जगत दीसे नहीं' में नरसिंह कहते हैं कि ज्ञान के पश्चात जगत् लुप्त हो जाता है और सब उसकी सृष्टि में ब्रह्म अथवा ब्रह्म में वही उत्पन्न हो जाता। जो सत् और आनन्द सच्चिदानन्द-साकार है किन्तु जो

वल्लभाचार्य की दृष्टि से असत्य है। "ऊँच मा अटपटा भोग भासे" और "कनक-कुडल विषे भेद नोये" में नरसिंह ऐसा नहीं कहते कि यह केवल अविकृत परिणामवाद है। इन पंक्तियों से विवर्तवाद का तात्पर्य निकाल लेना भी संभव है। ज्ञान-प्राप्ति के बाद भी भक्ति की महत्ता स्वीकार करना भागवत के अनुसार ही है; यद्यपि नरसिंह ऐसा भी कहते हैं कि बिना तत्त्व-दर्शन के सभी साधनाएँ झूठी और व्यर्थ हैं। जैसा कि श्रीधर ने दिखाया है, शंकर का मायावाद भी भागवत में है। इसके लिए भागवत २–९–३२ से ३५; १०–३३–११, ६–१२–२६; १०–८४–२४, २५ और १२–४–२८ आदि स्थल देखे जा सकते हैं। "चित्त चैतन्य विलास तद्रूप छे" की व्याख्या इस रूप में की जा सकती है कि यह समस्त संसार-व्यापार चित् में चैतन्य के बिंब का व्यक्तीकरण है और अन्ततोगत्वा तद्रूप अर्थात् ब्रह्मरूप ही है, एक ब्रह्म दूसरे ब्रह्म के साथ खेलता है। "ब्रह्म लटका करे ब्रह्म पासे।" दूसरे शब्दों में नरसिंह गौडपादाचार्य का 'दृष्टि-सृष्टिवाद' ही प्रस्तुत करते हैं।

पद्मनाभ

पद्मनाभ विसनगरा नागर थे और झालोर के चौहान राजा अक्षयराज के राजकवि थे, जो कान्हडदे महाराज की पाँचवीं पीढ़ी में हुए थे। इन्हीं अक्षयराज की प्रेरणा से पद्मनाभ ने, जिनका उपनाम 'पुण्यविवेक' था, 'कान्हड़दे प्रबन्ध' नाम का एक उत्तम ऐतिहासिक प्रबंध लिखकर मार्गशीर्ष शुक्ल १५, सं० १५१२ सोमवार को पूर्ण किया। इसमें उन्होंने सोनगिरा-चौहानों की वीरता का गान किया है। इस कवि के व्यक्तिगत जीवन के सम्बन्ध में बहुत ही कम जानकारी है।

मुनि जिनविजयी ने पद्मनाभ को महाकवि उचित ही कहा है। कवि ने कान्हडदे की कीर्ति का वर्णन किया है, जिन्होंने अलाउद्दीन खिलजी के विरुद्ध युद्ध छेडा और अन्त में देश-धर्म के ऊपर अपना बलिदान कर दिया। इस श्रेष्ठ काव्य में वर्णित अधिकांश ऐतिहासिक तथ्य सत्य है, जिन्हें अन्य प्रामाणिक सूत्रों का भी समर्थन प्राप्त है। पुरानी गुजराती अथवा राजस्थानी का जो यह सर्वोत्तम काव्य माना गया है, वह उचित ही है। डाक्टर क० मा० मुन्शी ने

तो इस नृपराज के गुणगान का अत्यन्त सादर गीत कहा है। काव्य केवल काव्यगत गुणों के कारण ही उत्तम नहीं है वरन् इसका महत्त्व भाषा-सम्बन्धी अध्ययन की दृष्टि से भी है क्योंकि इसमें १५वीं शताब्दी की शुद्ध भाषा का रूप विद्यमान है। काव्य में तत्कालीन इतिहास, भूगोल और लोगों के सामाजिक जीवन का बड़ा सजीव वर्णन है। कृति में कवि की देशभक्ति, धर्म-प्रेम और जाति के प्रति आस्था का पूरा परिचय मिलता है। चरित्र चित्रण अत्यन्त कला-पूर्ण, प्रभावशाली और उत्तम है। शैली सबल और विभिन्न भावों के अनुकूल है। वर्णन रोचक हैं, बहुत कम-अधिक या उबानेवाले नहीं हैं। कवि ने अपनी क्षमता पर विश्वास व्यक्त किया है और यह कृति उसकी परिपक्व अवस्था की प्रतीक होती है। उसने और भी रचनाएँ की होंगी, किन्तु दुर्भाग्य से वे प्राप्त नहीं हैं।

इस कृति का कथावस्तु ऐतिहासिक है। जालौर के शासक सोनगिरा चौहान महाराज कान्हड़दे ने अलाउद्दीन खिलजी से युद्ध किया था। कान्हड़दे का पुत्र वीरमदे था। गुजरात के शासक ने उसके मंत्री माधव के साथ दुर्व्यवहार किया, जिससे क्षुब्ध होकर उसने राजद्रोह का निन्दनीय कर्म किया। उसने अलाउद्दीन को गुजरात पर चढ़ाई करने का निमंत्रण दिया। अलाउद्दीन की सेना ने जाने के लिए कान्हड़दे से मार्ग माँगा, किन्तु उन्होंने अस्वीकार कर दिया। इस पर सेना ने पाटन को नष्ट भ्रष्ट कर डाला। पाटन से महाराज को भागना पड़ा। फिर मुसलमानी सेना ने सोमनाथ मंदिर पर चढ़ाई की। राजपूत वहाँ वीरता से लड़े किन्तु अन्त में पराजित हो गये। शिवलिंग तोड़ डाला गया और उसे गायों में बाँध दिल्ली ले जाया गया। पद्मनाभ कहते हैं —

"आइ दड पाट पोतानलि बन्ध सब तह काया।
तइ पृथ्वी माँहि पुण्य करताल्यां देवजीं भय राया।
तह भाञ्जि काम त्रिपुर विध्वनिउ पवनवंगि जिम तूल।
एक नाम पूछइ सोमइया बेयु वदृयउ त्रिशूल॥

१ पद[1] आसन आन, [illegible], उसने [illegible]
पर पुनः स्थापित किया और [illegible], उसने [illegible] और

त्रिपुर को उसी तरह भस्म कर दिया, जैसे पवन रुई उड़ा ले जाता है। पद्म-नाभ पूछता है, 'हे सोमैया ! इस समय आपके त्रिशूल की शक्ति कहाँ चली गयी ?'

सोमनाथ-विजय के पश्चात् अलाउद्दीन के सेनापति उलूघखाँ ने अभिमान में आकर कान्हड़दे पर आक्रमण किया, जिन्होंने मार्ग देने से अस्वीकार कर दिया था। देवी आशापुरी की कृपा से कान्हड़दे ने उलूघखाँ को परास्त किया और वह शिवलिंग वापस लौटा लिया, जो गाड़ी में दिल्ली ले जाया जा रहा था। शिवलिङ्ग को पांच खंडों में विभक्त करके कान्हड़दे ने अपने बनवाये हुए पाँच विभिन्न मंदिरों में स्थापित कराया। एक खंड सौराष्ट्र में, दूसरा झालोर में तथा तीसरा स्वयं कान्हड़दे की राजवाटिका में स्थापित किया गया। 'कान्हड़दे प्रबंध" चार भागों में है और प्रथम भाग यहीं समाप्त होता है।

जब अलाउद्दीन को कान्हड़दे द्वारा अपनी सेना के पराजित होने का समाचार मिला, तो उसने युद्ध का निश्चय किया। कान्हड़दे से युद्ध करने के लिए चली हुई मुसलमानी सेना पहले समीआना पहुँची, जहाँ कान्हड़दे का भतीजा सातल था। सातल ने बड़ी वीरता से युद्ध किया। सातल ने आशापुरी देवी की स्तुति की। देवी प्रसन्न हुई, किन्तु उन्होंने बड़ा विचित्र दृश्य सातल को दिखाया। सातल को ऐसा लगा, जैसे वह सोये हुए सुल्तान के तंबू में ले जाया गया है, जहाँ उसने सोये हुए सुल्तान की जगह तीन नेत्र और पांच मुखवाली आकृति देखी; उसने विस्मय के साथ जटाएँ, रुंडमाला, कमण्डलु, व्याघ्रचर्म, त्रिशूल आदि भी देखे और सुल्तान में रुद्र का स्वरूप देखा। सातल प्रणाम करके लौट आया। वह बड़ी वीरता से लड़ा। उसकी रानियाँ अग्नि में प्रवेश कर गयीं और वह स्वयं अत्यन्त घायल होकर रणभूमि में गिर पड़ा और वीरगति को प्राप्त हुआ। सुल्तान ने उसकी वीरता को सराहा और उसके रक्त का तिलक अपने माथे पर लगाकर उसका सम्मान किया। ग्रंथ का द्वितीय भाग यहाँ समाप्त होता है।

तृतीय भाग में झालोर पर सुल्तान के आक्रमण का वर्णन है। सुल्तान की एक पुत्री थी, जिसका नाम था पीरोजा। उसे शकुन तथा ज्योतिष का कुछ

त्ता और कलात्मक ढंग से किया गया है। अवसर के अनुकूल शैली में भी परिवर्तन होता गया है। मारवाड, जालोर और भिन्नमाल का बड़े विस्तार में वर्णन किया गया। विवाह और दाह-संस्कार की रीतियों का भी अच्छा वर्णन है। महाराज कान्हडदे के दैनिक शाकाहार की सूची बड़ी रोचक है। मुसलमानी सेना ने कैसे गावों को नष्ट किया, कैसे लोगों को बन्दी बनाया, और कैसे मंदिरो को तोडकर लोगों को पशुओं की कच्ची खाल से बाँधा—इन सबका बडा सटीक चित्रण कवि ने किया है।

कवि ने मुख्यत चौपाई छन्द और पवाडुछन्द का उपयोग किया है। भाषा मे अपभ्रंश के अवशिष्ट रूपों का कही पता नही है, उसके स्थान पर १५वीं शताब्दी की पुरानी गुजराती का रूप अत्यन्त स्पष्ट है।

वीरसिंह

कवि वीरसिंह का एक हजार पंक्तियों का केवल एक ही ग्रंथ है 'उषा-हरण'। ऐसा लगता है कि नरसिंह की वृद्धावस्था के समय वीरसिंह हुआ था। उसने भागवत और हरिवंश से कथा-सामग्री ली है और काव्य मे वीर तथा शृंगार रसो का वर्णन किया है। 'उषाहरण', 'कान्हडदे प्रबंध' से बहुत कुछ मिलता है; संभवत कवि ने उक्त प्रबंध को अवश्य पढ़ा होगा। 'उषा-हरण' मे छंदों की विविधता है। उषाहरण नाम से जितने काव्य अब तक प्राप्य है, उनमें सबसे प्राचीन यही है। इधर-उधर अनुप्रासो से युक्त इसमे 'गद्य कतार' ढंग के कुछ गद्य-स्थल भी है। इस ग्रंथ का समय स० १५२० या १५२५ माना जाता है। कवि पर चारणी भाषा अथवा जैन धर्म का कोई प्रभाव नहीं दीखता। पाडुलिपि पाटण से प्राप्त होने के कारण अनुमान किया जाता है कि कवि पाटण-निवासी होगा। सब मिलाकर कृति मे काव्य-गुण है।

कारमत मंत्री

कारमत मंत्री 'सीताहरण' का रचयिता है, जिसमे ४९५ कडियाँ है और जिसकी रचना स० १५२६ मे हुई थी। 'कान्हड़दे प्रबन्ध' की कुछ पंक्तियो से 'सीताहरण' की पंक्तियाँ मिलती है, इस बात से सोचा जाता है कि कारमत

मन्त्री थालोर के ठाकुर का मन्त्री अथवा कारभारी रहा होगा। ऐसा प्रतीत होता है कि रचनाकार वैश्य था। ग्रंथ में कोई असाधारण विशेषता नहीं है।

भालण

भालण के समय में मतभेद है। बहुत वाद विवाद के पश्चात् श्री रामलाल मोदी ने उसका काल १५वीं शताब्दी माना है। श्री के० का० शास्त्री लिखते हैं, "भालण ने कुछ पद व्रज भाषा में रचे हैं, जो वल्लभ सम्प्रदाय के अष्टछाप कवियों के साथ के ही हैं। अतः भालण १६वीं शताब्दी के पहले का नहीं माना जा सकता।" कडवा-बद्ध आख्यान पहले-पहल भालण ने ही लिखा। स्वयं आख्यान शब्द पहले पहल भालण की रचना में ही मिला। आख्यान सलग ग्रंथ और कडवा-बद्ध होते हैं, इनमें से दूसरा प्रकार भालण द्वारा आरंभ किया हुआ है।

भालण एक मोढ ब्राह्मण थे। उनका नाम वासुदेव त्रिवेदी था और वे पाटण निवासी थे। उनके दो गुरु थे, श्रीपाल और ब्रह्मप्रियानंद। उनके दो पुत्र थे—उद्धव और विष्णुदास। उनका परिवार बड़ा और सम्पन्न था। वे वैदिक धर्म के अनुयायी थे और जीवन के अन्तिम दिनों में श्रीराम के परम भक्त हो गये थे। उनका संस्कृत ज्ञान बहुत अच्छा था और उनकी रचनाओं से स्पष्ट है कि कादम्बरी, नैषधीय चरित, भागवत, पद्म पुराण तथा अन्य पुराणों का अच्छी तरह पढ़ा था। व्रजभाषा का भी उनका अध्ययन अच्छा था। वे उपर्युक्त कठिन संस्कृत ग्रंथों का गुजराती में बहुत तद्रूप और सुन्दर अनुवाद उपस्थित कर सकते थे तथा उन्होंने बहुत-से आख्यान गुजराती-साहित्य को दिये हैं। उनकी साहित्य रचना का काल श्री के० का० शास्त्री द्वारा सं० १५५० और १५७५ के बीच का माना गया है। उन्होंने देशी सवैया, देशी चौपाई और दोहा हरिगीत छन्दों का प्रयोग बहुत अधिक किया है। इस भाषा को गुजरभाषा के नाम से सम्बोधित करनेवाले पहले व्यक्ति यही हैं।

इनकी रचनाएँ हैं—द्रौपदी-वस्त्रहरण, सप्तशती, मामी आख्यान, नला-ख्यान, मामकी आख्यान, ध्रुवाख्यान, राम विवाह (अपूरी), जालंधराख्यान और दशम स्कंध। 'शिव भिल्डी संवाद', राम बाल चरित के पद और बाण

की 'कादम्बरी' का गुजराती में पद्यानुवाद—इनकी भी रचना की है। सप्त-शती, नलाख्यान, दशमस्कंध भी अनुवाद ही हैं।

भालण के आख्यानों में उनका ध्यान विशेषकर कथावस्तु के विकास की ओर दिखाई देता है और प्रेमानन्द की भाँति वे रसों एवं अलंकारों का सौंदर्य बढ़ाने में सक्षम नहीं लगते। उनके बाद लगभग २५० वर्षों तक उनका कड़वा-बद्ध-आख्यान प्रकार प्रचलित रहा और प्रेमानन्द के काव्य में वह चरम सीमा को पहुँच गया। बाद में उसका ह्रास आरंभ हुआ। प्रेमानन्द के बाद पद अधिक प्रसिद्ध हुए। कविता की दृष्टि से आख्यानों की अपेक्षा पदों में भालण की सफलता अधिक दिखाई देती है। संभवतः वे जीवन के आरंभ में शाक्त थे और अंतिम अवस्था में राम-भक्त हुए। ऐसा भी विश्वास किया जाता है कि अंत में वे सन्यासी हो गये थे। भालण ने अपने आख्यानों में बाद में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं किया, जैसा कि प्रेमानंद ने किया है।

उनके राम-कृष्ण के पद, दशमस्कंध, नलाख्यान और कादम्बरी को बहुत प्रसिद्धि मिली। उनके पद गरबियों की तरह गाये जा सकते हैं। उनमें वात्सल्यरस का स्रोत बहता है। नरसिंह और मीरा के बाद मध्यकालीन गुजराती-साहित्य में बस इन्हीं के कुछ पद अति सुन्दर बन पड़े हैं। नलाख्यान में इन्होंने महाभारत को आधार बनाया है, किन्तु 'नैषधीय चरित' और 'नलचरित' का अध्ययन भी स्पष्ट लक्षित होता है। एक दूसरा नलाख्यान भी उन्हीं का लिखा है—इसमें संदेह है। उनके अनुवाद ग्रंथ 'सप्तशती' और 'दशमस्कंध' असाधारण नहीं हैं, उनकी सर्वश्रेष्ठ कृति है 'कादम्बरी', जो प्रेमानंद के आख्यानों के बाद गुजराती की सर्वोत्तम रचनाओं में एक है। यह बाण की कादम्बरी पर आधृत है और इसमें ५००० पद्य हैं। यह अनुवाद नहीं है, परन्तु उसका एक रूप है और इसमें उतनी ही सामग्री लेने की चेष्टा की गयी है, जितनी कि उस समय की गुजराती भाषा में आ सकती थी और जितनी पाठकों या श्रोताओं को प्रिय लग सकती थी। बाण की कादम्बरी और किसी भाषा में पद्यबद्ध नहीं हुई। इस दृष्टि से भालण का प्रयत्न विरल और सफल ही नहीं है, वरन् एकमात्र तथा असाधारण भी है। इसमें एक रस-काव्य अथवा आख्यान-काव्य के सभी लक्षण हैं, साथ ही मूल ग्रंथ के सौंदर्य को अक्षुण्ण रखने में कवि बहुत सफल हुआ है।

मूल ग्रंथ तो उत्‍वे-न्त्वे मिश्र वाक्या के कारण इतना क्लिष्ट है कि गद्य में भी उसका अनुवाद करना कठिन है। भालण की रचना में मूल का सा आनन्द आता है। उनकी भाषा मधुर और गठी हुई है। अब पुरानी गुजराती का विराम और आरंभ हुआ, विशेषकर बातचीत की भाषा प्रेमानंद के समय की साहित्य-भाषा के बहुत निकट आ रही है।

भीम

भीम कवि 'हरिलीला षोडश कला' और 'प्रबोध प्रकाश' के रचयिता हैं। उन्होंने पुरुषोत्तम आर नरसिंह व्यास को अपने गुरुओं के रूप में उल्लेख किया है। एक मत से ये पुरुषोत्तम और कोई नहीं कवि भालण ही थे क्योंकि ऐसा गाया जाता है कि उनका दूसरा नाम पुरुषोत्तम महाराज था। श्री के० का० शास्त्री ने भी इस मत को स्वीकार किया था किन्तु अपने बाद के ग्रंथ में उन्होंने इस अस्वीकार कर दिया। कवि ने सिद्धपुर और सामनाथ की चर्चा की है। कुछ कहते हैं कि वे मोट ब्राह्मण थे और दूसरे कुछ लोग मानते हैं कि वे नागर थे, विष्णुदास के पिता और अखिलदास के पितामह थे।

बोपदेव ने १३८ पद्यों में हरिलीला विवेक की रचना की है जिसमें अति संक्षेप में भागवत की कथा आ जाती है। भीम ने एक मौलिक रचना प्रस्तुत की और उसे बनाकर २००० कड़िया तथा १६ भागों अथवा कलाओं में विभक्त किया। भीम ने केवल भागवत के अध्यायों को क्रमबद्ध करने में बोपदेव का अनुकरण किया है। भीम पर किसी अज्ञात गुरु की कृपा थी। कवि कृष्णभक्ति का परम भक्त मालूम होता है। भीम ने अपने स्वतंत्र काव्य 'प्रबोध प्रकाश' में ११वीं शताब्दी के श्रीकृष्ण विषयक संस्कृत नाटक 'प्रबोध चन्द्रोदय' से सामग्री ली है, उसे सँवारा है, संक्षिप्त भी किया है। इन्हीं दो ग्रंथों की रचना करके कवि ने १५वीं शताब्दी के गुजराती-साहित्य में अच्छा योगदान किया है। ग्रंथों का काव्यत्व द्वितीय श्रेणी का है।

माडण

माडण तीन ग्रंथों के रचयिता हैं। उनका पहला ग्रंथ 'प्रबोध बत्तीसी' दार्शनिक काव्य है और प्रकाशित है, किन्तु उनके दूसरे और तीसरे ग्रंथ रामायण

तथा 'रुक्मांगद कथा' अप्रकाशित है। उनका समय १५वीं शताब्दी का अंतिम भाग माना जाता है। वे जाति के वन्वारो और सिरोही-निवासी श्री मदन जोशी के शिष्य थे। 'रामायण' और 'पाण्डव विष्टि' उनके अपूर्ण ग्रंथ हैं। ऐसा कहा जाता है कि उन्होंने 'सत्यभामानु रूसणु' भी लिखा था।

प्रबोध बत्तीसी षटपदी चौपाई मे है। ग्रंथ मे कुल ३२ बीसी है और प्रत्येक बीसी में २० षटपदी चौपाइयाँ है। उनका काव्य बिलकुल अखा कवि के समान ही है। मांडण की दूसरी विशेषता यह है कि उन्होंने लगभग ५०० कहावतो और अर्थान्तरन्यासो को एकत्र करके उनका उपयोग किया है। उनके ग्रंथ मे उच्चकोटि का दर्शन है। छल-प्रपच की उन्होंने कडी आलोचना की है। बाद मे उनकी षटपदी अखा के छप्पयो में मिलती है। कहावतो और लोकोक्तियो के संग्रह के विषय में श्रीधर और शामल ने सभवत माडण का अनुकरण किया है। 'रामायण' में ७० कड़वा हैं, 'रुक्मागद कथा' एक पौराणिक कथा है। उनके दो पदो की भाषा मे मराठी का पुट पाया जाता है, जैसा कि नरसिंह के एक पद में है।

जनार्दन

जनार्दन ने २२० कड़ियो मे 'उषाहरण' की रचना की है। यह एक आख्यान है, परतु कडवाबन्ध में नही है। ये सिन्धो त्रिवेदी के पुत्र थे और इस ग्रंथ की रचना इन्होने अमरावती में की। ये खडायता ब्राह्मण थे। इनका कोई अन्य ग्रंथ प्रकाश में नही आया। कवि अनुप्रास और साकली का प्रेमी मालूम होता है। ग्रंथ की रचना स० १५४८ मे हुई थी। इसके ३२ पद श्रेष्ठ है, जो कादव कहलाते हैं। देशीबन्धो और रागो की इसमे विविधता है। इस 'उषाहरण' पर वीरसिंह के 'उषाहरण' का प्रभाव है।

जैन-साहित्य

सोमसुन्दर गिरि और उनके शिष्य वर्ग ने १५वी शताब्दी के जैन-साहित्य को बहुत-कुछ दिया। इन लोगो ने सस्कृत में भी कई ग्रंथो की रचना की है। गुजराती मे अनेक लघु कथाओं की रचना हुई, साथ ही 'शालिभद्ररास' और 'गौतम पृच्छा' (साधुहंस); 'चिहुगति' (वस्तिग); 'जम्बूस्वामी विवाहलो',

'वसन्तविलास' 'मुनिपतिचरित्र', 'श्रीपाल रास' और 'नलचरित्र' (माडण), अनेक अन्य रास और फागु तथा अनेक बालावबोध। कवि श्रावक दयाल दिल्ली के समरशाह और सारंग शाह के आश्रित थे। वे गुजरात में विचरण करते और काव्य रचना किया करते थे। उनकी भाषा में दिल्ली क्षेत्र का कोई प्रभाव नहीं है, वह उस समय की गुजराती भाषा है। वे नरसिंह के समकालीन थे। उन्होंने 'जावड़ भावड़ रास', 'रोहिणीया चोरना रास' और कुछ अन्य ग्रंथों की रचना की है। इस शताब्दी में 'सुदर्शन श्रेष्ठि रास' (सर्वविमल), 'सुराभिधान नेमि फाग' (धनदेव), 'रत्नचूड़ रास' (रत्नशेखर), 'नलदवन्ती रास' (ऋषिवर्धन) जो नल-दमयन्ती की कथा पर आधारित है 'धना रास' (मतिशेखर) इसी प्रकार के अन्य रास और विवाहलो आदि की रचना हुई। कुमारपाल वस्तुपाल और तेजपाल पर ऐतिहासिक रासों की भी रचना इसी काल में हुई तथा कुछ लोक वार्ताओं की भी, विशेषकर विक्रम और उनके सिंहासन की।

निष्कर्ष

१२वीं से १५वीं शताब्दी के काल को रासयुग कहा जाता है—यह बिलकुल उचित है क्योंकि इसी काल में रास-साहित्य तथा सहयोगी साहित्य रचा गया जिसमें अधिकांश हाथ जैन साधुओं और अजैनियों का भी है। १५वीं शताब्दी में भक्ति की एक प्रबल धारा गुजरात में बही जिसमें हम पाते हैं—नरसिंह की उच्च कोटि की कविता, भालण और भीम की रचनाएँ, कड पद आख्यान और कडवाबद्ध आख्यान, पद्मनाभ का महान ऐतिहासिक प्रबन्ध, नरसिंह और माडण की कविताओं में ज्ञान-साहित्य, भालण के उत्तम अनुवाद। जैन विद्वानों ने भी रास, फागु, विवाहलो और बालावबोध का साहित्य प्रदान किया। दयाराम के समय तक भक्ति की इस धारा का प्रभाव गुजरात में बना रहा। नरसिंह के काव्य की प्रचुर मात्रा तथा काव्य-श्रेष्ठता के कारण इस काल को 'नरसिंह-युग' की संज्ञा उचित दी गयी है।

अध्याय ७

सोलहवीं शताब्दी

प्रेम-दिवानी मीरा

अब मीरा का जन्म-काल सन् १४९९ मान लिया गया है। अपने भक्तिमय आदर्श जीवन तथा बृज, राजस्थानी और गुजराती मे पाये जानेवाले मधुर भजनों के कारण भारत के जन-मानस मे उनका स्थायी स्थान बन चुका है। इनसे यह भी विदित होता है कि उनके समय मे गुजरात एवं पश्चिमी राजस्थान की भाषा बहुत-कुछ एक सी थी। ये मेडता के राठौड राव दादूजी की पौत्री तथा रत्नसिंह की पुत्री थीं। इनका जन्म कुडकी मे हुआ था। इनके पिता वैष्णव थे। मेवाड के राजपरिवार के साथ इस परिवार का वैवाहिक सबंध था। मीरा नाम पर अनेक प्रकार की कल्पनाएँ की जाती है। कुछ कहते है कि यह विदेशी भाषा का शब्द है, जिसका अर्थ सागर, अमीर अथवा ईश्वर है; और कदाचित् यह नाम उन्हे अपने गुरु द्वारा उपनाम के रूप में मिला था। कुछ इसे संस्कृत शब्द 'मिहिर' अथवा किसी देशी शब्द से निकला मानते है। बचपन में ही इनकी माता का देहान्त हो गया था, अत इनके बाबा दादूजी ने इनका लालन-पालन किया। इनके एक चचेरे भाई का नाम जयमल था और वह भी भक्त था। मीरा का विवाह मेवाड के युवराज भोजराज के साथ सन् १५२७ ई० में हुआ। भोजराज सांगा के पुत्र थे। विवाह के आठ वर्ष बाद ही मीरा विधवा हो गयी। सागा और उनके पुत्र रत्नसिंह के बाद मेवाड के राजा विक्रमादित्य हुए।

ऐसा कहा जाता है कि बचपन मे ही मीरा को एक सन्यासी से गिरधर की मूर्ति प्राप्त हुई थी। मीरा के संतोष के लिए उनकी माँ ने कह दिया था कि यही तुम्हारे पति है। तभी से जीवन पर्यंत मीरा का यही विश्वास था कि उनका विवाह गिरधर के साथ हुआ था। विधवा होने के बाद वे स्वतन्त्रतापूर्वक साधु-

मंदिरों में बैठकर भजन गाने लगीं। विक्रमादित्य ने सोचा कि राजघराने की महिला का यह व्यवहार शोभा नहीं देता, अतः उन्होंने उनसे यह छोड़ देने को कहा। मीरा के अस्वीकार करने पर विक्रमादित्य ने उन्हें तरह-तरह से सताया, यहाँ तक कि मीरा के जीवन का अन्त करने के लिए उन्होंने विषधर सर्प और विष का प्याला भी उनके पास भेजा किन्तु सभी अवसरों पर मीरा के जीवन की रक्षा हुई। ऊबकर मीरा अपने पिता के घर मेड़ता चली गयीं, किन्तु जब वहाँ भी उन पर निगरानी रखी जाने लगी तो वे वृन्दावन चली गयीं। ऐसा कहा जाता है कि उनके चित्तौड़ और मेड़ता छोड़ने पर वहाँ अनेक प्राकृतिक संकट आये।

उस समय वृन्दावन कृष्ण भक्ति का केन्द्र था। भक्त सूरदास एवं वल्लभ सम्प्रदाय के अन्य अष्टछाप कवि, चैतन्य सम्प्रदाय के रूप, सनातन एवं जीव गोस्वामी तथा अनेक वैष्णव-मार्गी सन्त कृष्णभक्ति का उन्मुक्त गान वहाँ कर रहे थे। चैतन्य सम्प्रदाय के जीव गोस्वामी से मीरा मिलने गयीं तो उन्होंने यह कहकर मिलने से अस्वीकार कर दिया कि वे किसी महिला से नहीं मिलते। किन्तु जब मीरा ने कहलाया कि संसार में पुरुष कोई है तो एक मात्र कृष्ण हैं तब उन्होंने मीरा की महत्ता को समझा और उनसे भेंट की। वृन्दावन से वे द्वारका गयीं, जहाँ उन्होंने रणछोड़राय की उपासना की। मेवाड़ के उदयसिंह ने उनको मेवाड़ बुला लाने के लिए कुछ आदमी भेजे, जिससे उनकी कृपा से मेवाड़ की सम्पन्नता फिर लौट आये। मीरा ने कहा—मुझे अपने स्वामी से आज्ञा लेनी होगी। ऐसा कहा जाता है कि वे मंदिर में गयीं और द्वारका के श्री रणछोड़राय की मूर्ति में विलीन हो गयीं।

मीरा के कुछ पद एक जोगी के विषय में हैं। कुछ मानते हैं कि इनका नाथ सम्प्रदाय के उन जोगियों से है जिनके साथ बचपन में मीरा घूमा करती थीं और जिनके कारण उनके पति के मन में शंका उत्पन्न हो गयी थी। किन्तु नाथ पंथी तो भेद और जाति के तथा मीरा की विचारधारा से कोसों दूर पड़ते थे। कुछ दूसरे कहते हैं कि जोगी शब्द से उनका अर्थ श्रीकृष्ण से था। कुछ विद्वान तो यहाँ तक कहते हैं कि जोगी वाले पद किसी दूसरे के द्वारा बाद में मिलाए गए हैं।

यद्यपि मीरा कृष्णभक्त थी और रैदास राम-भक्त फिर भी ऐसा कहा जाता है कि मीरा रैदास की शिष्या थी। ऐसा प्रतीत होता है कि मीरा का किसी विशेष सम्प्रदाय से सम्बन्ध नही था। उन्होने नवधा भक्ति का भी कही वर्णन नही किया। १५वी तथा १६वी शताब्दी मे सम्पूर्ण भारत मे वैष्णव-भक्ति की एक धारा बह रही थी और उस समय गुजरात में भी अनेक वैष्णव कवि हुए है, मीरा ने भी उसी असाम्प्रदायिक भक्ति-मार्ग की प्रचलित धारा का अनुसरण किया। उनके लिए गोपी-भाव से युक्त कृष्ण की भक्ति स्वाभाविक थी। उनके २५० पद गुजराती भाषा मे है, साथ ही 'नरसिंह का माहरा' तथा 'सतभामानु रुसण' भी उन्होंने गुजराती में लिखा। उनके अतिरिक्त उन्होंने अनेक पद ब्रज और राजस्थानी भाषा मे रचे। उन्होने तीर्थयात्रा भी की होगी।

मीरा 'प्रेमदिवानी' कही जाती थी। उन्होने स्वय अपने कृष्ण-प्रेम को जन्म-जन्म का प्रेम कहा है। उन्होंने अपने को दासी मानकर अपना सब कुछ अपने स्वामी के चरणो मे समर्पित कर दिया था और सदैव पत्नी के स्वरो मे वे जीवन भर या तो कृष्ण से मधुर मिलन का सुख अथवा उनके विरह की मार्मिक वेदना का गान करती रही। विप्रलम्भ शृगार के पद सख्या मे अधिक हैं। उन्होंने कृष्ण-लीला का भी गान किया है। अपने ऊपर किये गये अत्याचारो का वर्णन भी उन्होंने प्राय: किया है। वे लोक-लाज छोड़कर भक्ति के नशे मे डूब गयी थी। कृष्ण से मिलने की उत्कठा और पीडा सदैव उनके मन मे थी। मीरा के पदों में प्रवाह, मधुरता, कोमलता एव सयम है। नरसिंह मेहता तथा दयाराम ने भी कृष्ण की शृगार लीला का वर्णन किया है, किन्तु इन पुरुष कवियो के वर्णन काफ़ी उन्मुक्त और स्पष्ट है जबकि मीरा के वर्णन साकेतिक हैं। नरसिंह ने ज्ञान-वैराग्य की चर्चा भी की है, किन्तु मीरा ने केवल भक्ति का और वह भी अपने ढग की भक्ति का गान किया है। कुछ पदो में अभिव्यक्त उनके विचार देखिए,—

१ मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरा न कोई।
(मेरे सर्वस्व गिरधर ही है, मेरा अन्य कोई भी नही है)

२. प्रेमनी प्रेमनी प्रेमनी रे मने लागी कटारी प्रेमनी रे।
(मुझे प्रेम की कटारी लगी है)

३ गोविन्द प्राण जमारा रे मने जग लाग्या खारो रे ।
(गोविंद ही मेरा प्राण है संसार मुझे फीका लगता है)

४ बनीवाला ! आजा मोरा देस ।
(ए वंशीवाले, मेरे देश को आ)

५ मैं तो छाँड़ी कुल की लाज ।
(मैंने कुल की लाज त्याग दी है)

६ राम रमकड़ू जड़ियुँ रे, राणाजी मने राम रमकड़ू जड़ियु ।
(हे राणाजी ! मैंने राम के रूप में खेल की सामग्री पा ली है)

७ सेजा प्याला राणाजी भेज्या दरिया मीराबाई हाथ ।
करी चरणामृत पी गई रे, श्री ठाकुर का परसाद ॥
राणाजी ए रीस करी भेज्यो जेरी नाग वमार ।
पवट गल बीच डारिया, बाँट हो गया चन्नहार ॥
(राणा ने जहर का प्याला भेजा, जिसे मीराबाई ठाकुरजी का प्रसाद तथा चरणामृत बनाकर पी गयी, फिर क्रोध में आकर राणा ने एक जहरीला नाग भेजा, जिसे मीरा ने पकड़कर गले में डाल लिया और वह चन्नहार हो गया।)

८ प्यारे दरसन दीज्यो आय, तुम बिन रह्यो न जाय ।
(हे प्रियतम आकर दर्शन दो तुम्हारे बिना मैं रह नहीं सकती)

९ पिया कारण पीरी भई रे, लोक जाणे घट रोग ।
(मैं प्रिय के विरह में पीली पड़ गयी हूँ किन्तु लोग समझते हैं कि मुझे कोई शारीरिक रोग लग गया है)

१० हरि तुम हरो जन की भीर ।
(हे हरि ! आप अपने दासों का संकट दूर कीजिए)

११ हेरी मैं तो दरद दिवानी मेरा दरद न जाने कोय ।
(मैं दर्द के कारण ही दीवानी हो गयी हूँ, मेरे दर्द को कोई नहीं जानता)

१२ अखड वर ने वरी माहली हुं ।
(मैंने अखंड वर को वरण किया है)

१३ ऐसी लगन लगाय कहाँ (तूँ) जासी ।
तुम देखे बिन कल न पडत है, तड़फ-तड़फ जिव जासी ॥
(हे स्वामी, ऐसी प्रीति लगाकर अब तुम कहाँ जाते हो ? तुमको देखे बिना चैन नहीं पडता, तड़प-तड़प कर प्राण चले जायेंगे)

१४. पग घुघरू बाँध मीरा नाची रे ।
मैं तो मेरे नारायण की आपहि हो गई दासी रे ।
लोग कहे मीरा भई बावरी न्यात कहै कुल नासी रे ।
(मीरा पैरो मे घुघरू बाँधकर नाच रही है। अपने नारायण की मैं स्वय दासी हो गयी। लोग कहते हैं कि मीरा बावली हो गयी और सगे-सम्बन्धी कहते हैं कि उसने कुल को डुबा दिया)

१५. म्हाने चाकर राखोजी गिरिधारीलाल चाकर राखो जी ।
(हे गिरिधारीलाल मुझे नौकरानी रख लीजिए)

१६ जूनु तो थयु रे, देवल जूनु तो थयु। मारो हसलो नानो ने देवल जूनु तो थयो।
(छोटे हस से युक्त यह मदिर अब पुराना पड़ गया है।)

मीरा के पदो मे उत्कठा, सुन्दरता, सहजता, मधुरता, कोमलता, एव सगीतात्मकता है। कुछ पद गरबी की भाँति गाये जा सकते हैं और गाये जाते है। भक्ति-प्रचार मे मीरा का योग नरसिह के समान अथवा उनसे कुछ अधिक माना जाता है। केवल गुजराती भाषा में ही नहीं, वरन् ब्रज और राजस्थानी भाषा की प्रथम कोटि की कवयित्रियो मे मीरा का स्थान है।

नाकर

वीको के पुत्र नाकर बडोदा के दीसावाल वणिक थे, जो सन् १५१६ और १५६८ के बीच प्रसिद्ध हुए। यद्यपि उनका कहना था कि वे सस्कृत नहीं जानते किन्तु उन्होंने अनेक आख्यानो और लोकवार्ताओं की रचना की है और पहले-पहल उन्होंने ही महाभारत के अनेक पर्वो का अनुवाद या रूपान्तर देशी मे किया। भालण के पश्चात् ये पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने पद तथा कडवाबद्ध—दोनो शैलियो मे आख्यान लिखे। साथ ही यह भी सही है कि आख्यान या अनुवाद-रचना मे वे भालण के समान योग्य नहीं थे।

नाकर अपने साथ जिन लोगों के लिए इस प्रकार के साहित्य की रचना करते थे। प्राकृत मदन, या कथाकार थे, अपनी कथा के निर्वाह के रूप में इस साहित्य का उपयोग करते थे। नाकर ने पुराणों तथा महाभारत की मूल कथाओं में परिवर्तन भी किये हैं। संभवतः इसका कारण उनका संस्कृत का अल्पज्ञान था। परिवर्तन अथवा सुधार का कारण यह भी हो सकता है कि वे अपने श्रोताओं के मनोरंजन के लिए इधर उधर पद सम्मिलित कर लेते थे। प्रेमानंद ने नाकर की पौराणिक मूल कथाओं में कहीं परिष्कार किया है।

नाकर ने महाभारत के १० पर्व लिखे हैं जिनमें विराट पर्व सर्वोत्तम है। इसके अतिरिक्त 'हरिश्चंद्राख्यान', 'अभिमन्यु आख्यान', 'लवकुश', 'कर्णचरित', 'चंद्रहासाख्यान', 'ध्रुवाख्यान', 'नलाख्यान', 'ओखाहरण', मामेरुं सगाद, 'रामायण', 'शिवभीली विवाह', 'सगाळशा शेठनो गरबो' आदि की रचना की है।

यद्यपि ये बहुत प्रतिभाशाली रचनाकार नहीं थे और इनकी रचनाएँ शिथिल मानी गई हैं, किन्तु इनकी रचनाओं का परिमाण बहुत अधिक है। इनका संस्कृत ज्ञान अल्प था फिर भी अपने मित्र की सहायता लेने के लिए इन्हें बहुत-सी रचनाएँ थीं। प्रेमानंद ने नाकर द्वारा लिए आधिकार लिया गया है किन्तु प्रेमानंद की रचना अधिक परिमार्जित एवं कलात्मक है। यह कहना अनुचित न होगा कि प्रेमानंद ने नाकर की रचनाओं से ही अपनी रचना-सामग्री पायी। नाकर के रचना-परिमाण को देखते हुए इन्हें गुजराती आख्यान का गाहित्य मार्ग-दर्शक के नाते से कहा जाता है। अपने समय में इन्होंने भाषा के परिष्कार सुधार कर उन्हें परिनिष्ठ बनाने में बड़ा काम किया और इनके लिए तत्कालीन समाज का सजीव चित्रण अपनी रचनाओं में सुरक्षित रह गया है। इनके बहुत-से पद अबतक अप्रकाशित पड़े हैं।

केशवदास

केशवदास प्रभास के कायस्थ जाति और हृदयराम के पुत्र थे। इन्होंने श्रीकृष्ण-क्रीड़ा काव्य की रचना की है जिसमें भागवत के दशम स्कंध की कथा है। इसमें दशम स्कंध के ९० अध्यायों का संक्षिप्त वर्णन भिन्न-भिन्न राग और छंदों में युक्त ४० सर्गों में किया है। भागवत का संक्षेप रूप 'नारद'

विक्रीडित' छन्द मे है। भीम, केशवदास, हरिदास, मीठु तथा अन्य कई कवियों ने अक्षर मेल वृत्तो मे रचनाएँ की है।

केशवदास ने भागवत का बहुत अधिक अध्ययन किया था, साथ ही अन्य ग्रथ भी बहुत पढे थे। इन्हें ब्रज भाषा का भी ज्ञान था। इनकी भाषा सस्कृत-बहुला एव शिष्ट है तथा उसमे संस्कार और प्रसाद गुण है, अलंकारो की भी कमी उसमे नही है। इनकी रचना मे यत्र-तत्र सस्कृत के श्लोक भी है, जिनमें से कुछ स्वय इनके रचे है। सस्कृत के वैष्णव-साहित्य से इनका अच्छा परिचय था। 'कृष्णकर्णामृत', 'पाण्डवगीता' और 'विल्वमङ्गल' से इन्होने उद्धरण दिये है। कुछ विद्वानो की मान्यता है कि इनका दशमस्कध का रूपान्तर प्रेमानन्द से भी श्रेष्ठ है एव भालण से तो निस्सन्देह उत्तम है। इस ग्रथ की रचना स० १५२९ मे हुई थी। इसका आधार केवल भागवत नही है, वरन् इन्होने विष्णु-पुराण, हरिवंश, कृष्णजन्म खड, गर्गसंहिता, ब्रह्मवैवर्त तथा गीतगोविद आदि ग्रंथों मे भी कुछ सामग्री ली है। इनके ब्रज भाषा मे कुछ उत्तम पद भी है। ग्रथ के आरभ में इन्होने 'गोपीजन वल्लभाष्टक' की रचना की है। ऐसा अनुमान किया गया है कि सस्कृत का यह स्तोत्र बहुत पुराना है और हरिराम गोस्वामी के किसी भक्त ने इसे हरिराम की रचनाओ मे सम्मिलित कर दिया है। कवि केशवदास सस्कृत के भक्ति-साहित्य से पूर्ण परिचित थे। भागवत की कथा को भलीभाँति आधार बनाते हुए भी उन्होने विभिन्न रसों की उत्पत्ति सफलतापूर्वक की है। निस्सन्देह उनका यह ग्रंथ गौरव प्रदान करनेवाला है।

श्रीधर—श्रीधर 'रावण-मंदोदरी-सवाद' और 'गौरी चरित्र' के रचयिता है। ये जाति के मोढ अडालजा थे और अपने को मत्री-पुत्र कहते थे। कवि माडण की भाँति इन्होने भी अनेक कहावतो का प्रयोग किया है। 'गौरी चरित्र' में इन्होने भील-भीलनी के रूप मे शिव और पार्वती का सवाद लिखा है। इनके पहले ग्रंथ की रचना सन् १५०९ मे हुई थी।

जावड—जावड ने सन् १५१५ मे ४०० कड़ियो की एक रचना 'मृगली सवाद' नाम से की। इनकी रचनाएँ कवि नाकर के समकक्ष है।

उद्धव—उद्धव कवि भालण के पुत्र तथा 'रामायण' (अपूर्ण) एव 'बभ्रुवाहन आख्यान के रचयिता है। इन्होने अपने गुरु, जो मधुसूदन आश्रम नाम के एक

नाम का काव्य लिखा है। इनका एक दूसरा काव्य 'रणजग' है जो १७ कडवो में है और जिसमें वीर-रस प्रधान है। ऐसा प्रतीत होता है कि प्रेमानंद ने इस काव्य को पढ़कर ही अपना 'रण यज्ञ' लिखा, जिसमे मुख्य भाव को उसने और अधिक सँवार दिया है। वजियो का तीसरा काव्य 'सीता-सन्देश' है, जिसमे हनुमान के द्वारा सीताजी श्रीराम को अत्यन्त करुण सन्देश भेजती है।

काशीसुत शेषजी—ये खभात के रहनेवाले वधारो थे। इन्होने सभापर्व, विराटपर्व, रुक्मिणीहरण, हनूमान-चरित्र, अम्बरीष-कथा एव प्रह्लादाख्यान की रचना की है। इन्होने पौराणिको से अनेक महाकाव्यो तथा पुराणो की कथाएँ सुनी थी। इनके ग्रथ अप्रकाशित है। माडण के बाद ये दूसरे वधारो कवि थे। विराटपर्व एव सभापर्व के इनके कुछ वर्णन बडे प्रभावोत्पादक है।

काहान—उमरेठ के काहान ने दो काव्यो की रचना की है—एक है 'ओखाहरण', जो २३ कडवो मे है। इसी विषय पर जनार्दन तथा प्रेमानन्द के काव्य उत्कृष्ट है। इनका दूसरा काव्य है 'एकादशी माहात्म्य', जिसमे एकादशी की कथाएँ वर्णित है।

संत—अपने पूर्ववर्ती भीम तथा परवर्ती वल्लभ भट्ट की भाँति सत कवि ने सम्पूर्ण भागवत को सक्षिप्त किया है। इनके गुरु एक नागर ब्राह्मण वृन्दावन थे। दशमस्कध को तो इन्होने बडे विस्तार मे, किन्तु अन्य स्कन्धो को बहुत सक्षेप मे लिखा है। ग्रथ से कवि की प्रतिभा का कुछ आभास मिलता है।

लोककथा साहित्य

नरपति ने २ लोककथाएँ लिखी है, एक है १३७ चौपाइयो की 'नन्दबत्तीसी' और दूसरी है ८०६ दोहा-चौपाइयो की 'पचदड', बीच-बीच मे गद्य का अग भी है और कही-कही सस्कृत के श्लोक है। इनकी भाषा मे प्रसाद गुण है। इनका रौद्र रस-वर्णन बड़ा आकर्षक है। कवि ने वामाचार की महान् साधनाओ का भी अनावरण किया है। यत्र-तत्र आया हुआ गद्य आलकारिक नही, वरन् सरल है। कवि सस्कृत का विद्वान् जान पड़ता है। यद्यपि ऐसा प्रतीत होता है कि कवि ने जैन कथा-साहित्य का अध्ययन किया है, किन्तु वह अजैन कवि

मालूम होता है। असाइत और भीम के बाद नरपति ने कविता में इस प्रेमकथा-साहित्य को जारी रखा।

ज्ञानाचार्य—इन्होंने गुजराती में दो अच्छे काव्यों की रचना की है—'बिल्हण पचाशिका' और 'शशिकला पचाशिका'। ये बिल्हण की संस्कृत पचाशिका पर आधृत हैं। इस विषय में मतभेद है कि कवि ज्ञानाचार्य जैन थे अथवा अजैन। कुछ भी हो, ये संस्कृत अच्छी जानते थे और बिल्हण के ग्रंथ को आधार बनाकर इन्होंने दो अच्छे काव्य दिये हैं।

गणपति—ये एक अजैन आख्यानकार हैं। सन् १५१८ में इन्होंने असाइत, भीम, नरपति तथा अन्य कवियों की भाँति ८ अंगों तथा २५०० दोहों में 'माधवानल कामकन्दला दोग्धक' की रचना की है। ये नरसा के पुत्र और कन्नोज कायस्थ थे। ऐसा लगता है कि यह काव्य आमोद के राउत के पुत्र का प्रमोद करने के लिए इन्होंने लिखा है। इसका आधार 'मदन पुराण' नाम का एक ग्रंथ है जो प्रसिद्ध नहीं है। इसी विषय को लेकर एक जैन साधु कुशललाभ ने 'माधव काम कुंडलारास' लिखा है। शामल ने भी अपनी 'सिंहासन बत्तीसी' में इसे २६ वीं कथा के रूप में रखा है। इन तीनों में गणपति की रचना उत्तम है। इसमें शृंगाररस की प्रधानता है, किन्तु साथ ही इसमें आचरण की पवित्रता है। इसमें अलंकारों का सौन्दर्य है। इसमें एक ऐसी बारहमासी है, जो एक पुरुष अपनी पत्नी के विरह में गाता है जो प्रथा के विपरीत है।

मधुसूदन व्यास—ये एक ब्राह्मण कवि थे। इन्होंने 'हंसावती विक्रम कुमार-चरित्र' नामक आख्यान की रचना की है। ये खेड़ा जिले के रहनेवाले मालूम होते हैं। इनका ग्रंथ ८२१ कड़ियों का है, जिसमें शब्द और अर्थ दोनों प्रकार के अलंकारों की भरमार है। यह असाइत के 'हंसाउली' से श्रेष्ठ है और प्रेमानंद के काव्य के समकक्ष माना जाता है। इन्होंने संस्कृत के १७ श्लोक भी लिखे हैं, जो दोषपूर्ण हैं। गुजराती पर इनका अच्छा अधिकार था। इस कथा में हंसावती विक्रमादित्य के साथ विवाह करती है। 'हंसाउली' की हंसावली पठण के राजा नरवाहन से विवाह करती है। दोनों कथाओं में यह अंतर है।

वछराज—ये 'रत्नमंजरीनी वार्ता' के रचयिता है, जो ६०५ कडियो मे है। एक व्यापारी प्रेमराज व्यापार के लिए विदेश जाता है, तब उसकी पत्नी उससे 'स्त्रीचरित्र' लाने को कहती है। नरपति और गणपति के लोकवार्ता ग्रथो से इसकी समानता सहज ही हो सकती है। कवि अर्जुन प्रतीत होता है। इनने बड़ी कुशलता से स्त्री के विभिन्न चरित्रो का वर्णन किया है।

जैन कवि—१६वी शताब्दी मे लावण्य समय ने अनेक ग्रथो की रचना की है और ऐसा प्रस्ताव भी किया गया है कि उस काल के जैन साहित्य को 'लावण्य समय-युग' की सज्ञा दी जाय। इनके अनेक ग्रथो मे ऐतिहासिक रचना 'विमल प्रबन्ध' भी है, जिसकी रचना सन् १५१२ मे हुई थी। इस ग्रथ मे कवि ने ९ खडो मे श्रावक विमलशाह—पाटणनरेश भीमदेव प्रथम के मत्री—का जीवन चरित्र लिखा है। इस ग्रथ का महत्त्व काव्य की अपेक्षा तत्कालीन समाज तथा श्रीमाल के जैनो के वर्णन की दृष्टि से अधिक है।

अनेक जैन कवियो ने पुराणो मे भी कथावस्तु लेकर काव्य-ग्रथो की रचना की है। इसी समय अनेक रास, चरित्र, विवाहलो, पवाड़ा इत्यादि की रचना हुई। अधिकतर नेमिनाथ, स्थूलिभद्र और कुमारपाल के जीवन पर रचनाएँ हुई। लोककथा-साहित्य मे नन्दबत्तीसी चौपाई (सिंह कुशल द्वारा), आराम शोभा (विनय समुद्र द्वारा), कर्पूरमजरी (मतिसार), माधवानल-काम कुंडला-रास और मारु ढोला चौपाई (कुशललाभ) तथा सिंहासन-बत्तीसी, वैताल पचविशतिरास-जैसे ग्रथ हमे मिलते है, साथ ही पचतत्र पर आवृत पचोपाख्यान तथा शुक बहोतेरी भी रचे गये। नयसुन्दर ने 'रूपचद्र कुवररास' नामक काव्य की रचना की, जिसमे एक वणिकपुत्र रूपचन्द्र और उज्जयिनी के गणसेन की पुत्री सोहाग की प्रेम कथा का वर्णन है। उस युग की अनेक लोककथाओ मे यह प्रेमकथा उत्तम है। काव्य मे अलकारो का उपयोग है और कथा बड़े प्रभावशाली ढग से कही गयी है। नयसुन्दर का एक दूसरा ग्रथ 'नल-दमयन्ती-रास' भी है।

अखो ने चार बार ब्रह्मानंद के नाम का उल्लेख किया है। एक स्थान पर तो ब्रह्मानन्दस्वामी के विषय में लिखा है। श्री नर्मदा शंकर मेहता का अनुमान है कि शब्द 'ब्रह्मानंद' में श्लेष अलंकार है, जो संभवतः उनके गुरु का नाम था। ऐसा भी सोचा जाता है कि ब्रह्मानंद वे भी हो सकते हैं, जिन्होंने मधुसूदन सरस्वती के ग्रंथ 'अद्वैतसिद्धि' पर गौड ब्रह्मानंदी टीका लिखी है। किन्तु इस मत के विरुद्ध होने वाले कई विद्वान् इन ब्रह्मानंद को अखो के गुरु मानने में सन्देह करते हैं। ऐसे लोग ब्रह्मानंद का अर्थ केवल ब्रह्म का आनन्द ही लेते हैं। कुछ भी हो, इतना तो अवश्य कहा जायगा कि किसी बहुत ही योग्य गुरु की कृपा अखो को प्राप्त थी और उनके चरणों में बैठकर जो कुछ वेदान्त अखो ने सीखा, वह बड़ी सबलता के साथ अनेक घरेलू उदाहरण देते हुए उन्होंने गुजराती में लिखा है। कुछ लिखने की ही दृष्टि से उन्होंने केवल वेदान्त के सिद्धान्तों को ही नहीं लिखा, वरन् केवलाद्वैत को भली-भाँति समझकर उसे अनुभव की भाषा में व्यक्त किया है। अखो और माडण बंधारो में अनेक बातें समान हैं। कथावस्तु की समानता के अतिरिक्त अखो ने माडण की भाँति षटपदी चौपाई का भी उपयोग किया है। अखो केवल नीति-धर्म के उपदेशक ही नहीं हैं, उनमें काव्य-प्रतिभा भी है। अखो की-सी आत्मानुभूति, उनकी-सी सशक्त भाषा और उनका-सा आत्म-विश्वास माडण में नहीं।

अखो ने सदैव बड़ी यथार्थता के साथ केवलाद्वैत के सिद्धान्तों का उल्लेख किया है, साथ ही भक्ति को भी उन्होंने पर्याप्त महत्त्व प्रदान किया है। एक स्थल पर उन्होंने कहा है कि भक्ति एक पक्षी है तथा ज्ञान-वैराग्य उसके दोनों पंख हैं। भागवत अध्याय १–४५ में भक्ति को ज्ञान-वैराग्य की माता कहा गया है। भागवत एक ऐसा ग्रन्थ है, जिसने केवलाद्वैत सिद्धान्त को कट्टरता से माननेवालों को भी प्रभावित किया है। ज्ञानेश्वर-जैसे महाराष्ट्र संतों ने भी भक्ति को महत्त्वपूर्ण बताया है, यद्यपि वे प्रधानरूप से मायावाद को माननेवाले हैं। इसी प्रकार मधुसूदन सरस्वती—केवलाद्वैत सिद्धान्त के स्तंभों में से एक—भी बहुत बड़े कृष्ण-भक्त थे। स्वयं शंकराचार्य ने भी भक्तिपूर्ण सुन्दर स्तोत्रों की रचना की है। वस्तुतः गीता ७–१६ में कहे हुए आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी और ज्ञानी भक्तों में से वे ज्ञानी-भक्त को सर्वश्रेष्ठ मानते हैं। गीता

१८-५५ की व्याख्या करते हुए शंकराचार्य द्वारा गीता भाष्य में कहते हैं कि ज्ञानी भक्त की चतुर्थ भक्ति—जो गीता ७-१६ में वर्णित है—ज्ञान निष्ठा ही है। दूसरे शब्दों में शंकराचार्य के अनुसार ज्ञानी की भक्ति की चरमावस्था ज्ञान निष्ठा है, और केवलाद्वैत मत के सच्चे उपासक अखो की यह मान्यता बहुत ठीक है कि भक्ति परम आवश्यक है। किन्तु इस प्रकार की भक्ति का तात्पर्य वह भक्ति नहीं है, जो अनेक वैष्णव-आचार्यों द्वारा निरूपित है। उनकी दृष्टि में तो भक्ति ही लक्ष्य और ज्ञान उसका सहायक या गौण है तथा उपास्य-उपासक भाव में अथवा प्रभु-लीला में सम्मिलित होकर अविरल भक्ति की प्राप्ति ही उनका चरम ध्येय होता है—इसमें द्वैतभाव सन्निविष्ट है। एक वैष्णव भक्त अपने उपास्यदेव में पूर्णतः लीन हो जाना नहीं चाहता। इसके विरुद्ध मधुसूदन सरस्वती भागवत १-६-१३ को उद्धृत करते हुए कहते हैं कि सर्वोत्तम भक्ति वही है, जिसमें भक्त अपने भगवान् में पूर्णतः लीन हो जाता है और जहाँ द्वैतभाव नहीं रहता। अखो द्वारा वर्णित भक्त के लक्षण वही हैं, जो भागवत ११-११-८ से २३ तक, ११-३-३२, ११-२-४५ और ११-१२-१२ से १५ तक में कहे गये हैं। अपने दर्शन के लिए अखो ने केवलाद्वैत का पूर्णतः स्वीकार किया है। वस्तुतः अखो ने शंकराचार्य के पूर्ववर्ती गौड़पाद-जैसे केवलाद्वैत के लेखकों की रचनाएँ भी पढ़ीं और शंकराचार्य के बाद के केवलाद्वैत सिद्धान्तियों की भी, जैसे वार्तिककार का आभासवाद तथा संक्षेप शारीरककार का प्रतिबिम्बवाद। अखेगीता के ५-२ पद में अखा ने गौड़पाद का दृष्टिसृष्टिवाद प्रस्तुत किया है। अखेगीता के ३३-९ पद में उन्होंने आभासवाद का सिद्धान्त सभी बुद्धिमानों से कहा है। इसमें वे कहते हैं कि ब्रह्माकार की चरम दशा में जगत् मिथ्या है अर्थात् पारमार्थिक सत्ता में व्यावहारिक सत्ता मिथ्या है। अखेगीता में अखो के केवलाद्वैत दर्शन की विस्तृत व्याख्या के लिए कृपया "अखेगीतानुं तत्त्वचिन्तन" शीर्षक मेरा निबन्ध देखिए, जो दसवें गुजराती साहित्य परिषद् सम्मेलन की रिपोर्ट में 'धर्म और तत्त्वज्ञान विभाग' के अन्तर्गत पृष्ठ १ से २२ में प्रकाशित है।

अखो की रचनाएँ ये हैं—पंचीकरण, गुरु शिष्य संवाद, चित्तविचार-संवाद, कैवल्यगीता, अनुभवबिन्दु, अखेगीता और ४७६ छप्पा। इनमें

हिन्दी मे ब्रह्मलीला भी लिखी है। इनके अतिरिक्त कुछ और भी ग्रथ अखो के बताये जाते हैं। किन्तु वे ही इनके रचयिता है, इस पर सदेह है। इन्होने बराबर केवलाद्वैत की ही व्याख्या की और इस पर अडे रहे। इन्होने रचना-कार्य ५२ वर्ष की अवस्था से आरभ किया, जब कि इनकी बुद्धि परिपक्व हो चुकी थी।

अखो ने अपने छप्पयो मे अपना सारा व्यावहारिक ज्ञान भर दिया है। उन्होने पाखडियों की घोर भर्त्सना की है और उस समय की सामाजिक एवं धार्मिक कुरीतियो का विरोध सशक्त, कटु और व्यग्यपूर्ण भाषा मे किया है। उन्होने जानबूझकर स्वेच्छा से सबल और आघात पहुँचानेवाली भाषा का प्रयोग किया है। उन्होने अनेक कहावतों और घरेलू मुहावरो को भी स्थान दिया है। परिपक्व अवस्था मे लिखा हुआ 'अखेगीता' उनका सर्वोत्तम ग्रथ है। कडवा सख्या ४० मे उन्होने साधन चतुष्टय का वर्णन किया है। उनका कहना है कि जो इस ग्रथ को ध्यानपूर्वक सुनेगा और मन-वचन-कर्म से इसके अनुसार चलेगा, वही अधिकारी है। इसमे ८ बातो का वर्णन है—ज्ञान भक्ति, वैराग्य, माया-निरीक्षण, दृष्टि, जीवन्मुक्त चिह्न, महामुक्त चिह्न तथा पुष्टि (भगवत्कृपा)। अखो कहते है कि जहाँ तक इस ग्रथ के लिखने का सबध है, मै तो केवल निमित्त हूँ—एक वाद्य हूँ, जिसे बजानेवाला पूर्णब्रह्म है। ग्रंथ का प्रयोजन बताते हुए वे आगे कहते है कि यह ससार रूपी मोह-रात्रि के निवर्तन के उद्देश्य से लिखा गया है। कडवा ८–११ मे उन्होने घर के मुडेरे से चिल्लाते हुए कहा है—सुनो, लोगो सुनो, यदि तुम माया का अन्त चाहते हो तो यह केवल आत्मतत्व के बोध से ही सभव है और इसके लिए सर्वोत्तम साधना परमात्मा, गुरु तथा सतो की सेवा है। अखो का स्पष्ट मत है कि बिना आत्म-ज्ञान के मुक्ति नही मिल सकती और इस ज्ञान के लिए—जो केवल सासारिक जानकारी या बौद्धिक चिंतन नही है, किन्तु अनुभव अथवा साक्षात्कार है—भगवत्कृपा की आवश्यकता होती है, और उस भगवत्कृपा के लिए भक्ति परम आवश्यक है। इस प्रकार उन्होने भक्ति की महिमा स्थापित की है। भागवत मे पुष्टि की व्याख्या भगवत्-अनुग्रह के रूप मे की गयी है।

'अनुभव-बिन्दु' मे अखो ने केवलाद्वैत वेदान्त का सार दिया है। उनके

पहले के काव्य पचीकरण आदि में यह शास्त्रीय विषय अनेक उदाहरण देकर अच्छी तरह समझाया गया है। अखो ने हिन्दी पद भी बहुत सरल लिखे हैं। उनके बाद उनके कुछ शिष्यों ने अपनी गुरु-परम्परा को बनाये रखा। व्यंग्य बाण छोड़ते समय अखो का क्रोध दैवी होता है। कुछ विद्वानों का मत है कि आगे चलकर अखो ने केवलाद्वैत को त्यागकर अपना एक स्वतंत्र सिद्धान्त व्यक्त किया है, जो शंकराचार्य और वल्लभाचार्य के सिद्धान्तों का मिश्रण है। किन्तु मेरे मन में ऐसा कहना ठीक नहीं है, क्योंकि शांकर सिद्धान्त को मानने वालों ने भी भक्ति को उचित महत्त्व दिया है और जहां तक केवलाद्वैत - सिद्धान्तों का सम्बन्ध है, अखो के सभी ग्रन्थों में वे बराबर पाये जाते हैं।

मध्यकालीन कवियों में अखो सर्वोत्तम प्रतिभासम्पन्न कवि हैं। वे नरसिंह और दयाराम की भांति अपने अनुभवों पर ही कुछ कहते हैं, किन्तु पिछले दोनों में बुद्धि-पक्ष की अपेक्षा हृदय-पक्ष अधिक है। बौद्धिक पक्ष प्रबल होते हुए भी अखो बड़े विश्राम के साथ सशक्त भाषा में अनुभव प्रकट करते हैं। अखेगीता का अंतिम पद अद्भुत है। जिसमें उपनिषद्कालीन संतों की भाषा की दैवी झलक है। तत्त्वविचार संबंधी काव्य में अखो विलक्षण और अद्वितीय हैं।

भाणदास—इन्होंने शंकराचार्य-हस्तामलक-संवाद लिखा है तथा प्रह्लादाख्यान, अजगर-अवधूत-संवाद, अनेक गरबा, नृसिंहजीनी हमची, हनुमाननी हमची, बारहमासा एवं कुछ पदों की रचना की है। इनका झुकाव ज्ञानमार्ग की ओर था। गरबा लेखक की दृष्टि से इनकी ख्याति अधिक है। सबसे पहले इन्होंने ही 'गरबी' शब्द का उपयोग किया। ये वेदान्ती कवि हैं, और महामाया-रास का वर्णन किया है।

देवीदास—इन्होंने भागवत के दशम स्कंध पर आधृत 'रुक्मिणी-हरण' की रचना ३० कड़वा में की है, साथ ही रास पंचाध्यायी और भागवत के अन्य अंशों पर भी इनकी रचनाएँ हैं।

शिवदास—इन्होंने 'परशुराम आख्यान' तथा 'बालचरित' जैसे अनेक आख्यानों की रचना की है। अभी तक इनकी १२ रचनाएँ देखने में आयी हैं। इन्होंने पद्यवार्ताएँ भी लिखी हैं, जैसे हंसावती और कामावती।

कृष्णदास—शिवदास के पुत्र कृष्णदास ने नरसिंह मेहता के जीवन से सबंधित 'मामेरु' और 'हुंडी' प्रसंगों पर रचना की है। विष्णुदास के बाद फिर कृष्णदास ने नरसिंह पर काव्य किया है। 'मामेरु' के एक और रचयिता गोविन्द हैं, जिनका काव्य कृष्णदास से भी अधिक विशाल है।

अविचलदास ने भागवत के छठवें स्कंध तथा आरण्यक पर्व पर रचना की है। सौराष्ट्र के दिव-निवासी परमाणददास ने ३१३८ कड़ियो और १२ वर्गों में 'हरिरस' नामक काव्य लिखा है जो भागवत के १०वे तथा ११वें स्कंध पर आधृत है। इन्होंने उद्धव-आगमन तो बड़े विस्तार में लिखा है, किन्तु रास-क्रीडा को यों ही चलता कर दिया है।

भाउ ने अश्वमेध, द्रोण तथा उद्योग पर्वों पर रचना की है और पांडव-विष्टि भी लिखा है। माधव के पुत्र तुलसी ने ध्रुवाख्यान लिखा है। सूरत के हरिराम बभ्रुवाहनाख्यान, सीता-स्वयंवर एवं रुक्मिणीहरण के रचयिता हैं। पोठा बारोट ने मोरध्वजाख्यान एवं सुधन्वाख्यान लिखा है। मुरारि ने ४० कड़वो मे ईश्वर-विवाह की रचना की है। नरसिंह नवल ने ६७ कड़वों में ओखाहरण लिखा है। सुरभट्ट ने महाभारत के स्वर्गारोहण पर्व का सारांश २२ कड़वों मे रचा है। ये रैकव ब्राह्मण और नारायण के पुत्र थे। सूरत के कंसारा, मोरा के पुत्र गोविन्द ने सुधन्वाख्यान लिखा है, जिसमे करुण और वीररस का अच्छा वर्णन है।

विश्वनाथ जानी—ये पाटण के निवासी थे और प्रेमपचीसी, सगाळ चरित्र, मोसालाचरित्र, मामेरु और चातुरी चालीसी के लेखक है। इनसे पहले विष्णुदास, कृष्णदास तथा गोविन्द ने नरसिंह मेहता के जीवन पर रचनाएँ की थीं, किन्तु विश्वनाथ ने घटनाओ को बड़े विस्तार मे एव अधिक कुशलतापूर्वक लिखा है। इनका सगाळ चरित्र एक आख्यान है, जो शिवपुराण से लिया गया है और २३ कड़वों मे है। इसमे करुणरस प्रधान है। इनका मोसाळु प्रेमानंद की तुलना मे आ सकता है। प्रेमपचीसी मे २५ पद है, जिनमे उद्धव का संदेश कहा गया है, जो भागवत के अनुसार है। चातुरी चालीसी नरसिंह मेहता की ही भाँति है, जिसमे कृष्ण और गोपियों का शृंगार वर्णित है।

मुकुन्द—ये द्वारका के गुग्गी ब्राह्मण थे। इन्होंने अपनी दो कविताओं, गोरखचरित्र और कबीरचरित्र में हिन्दी का भी उपयोग किया है। गोरक्ष-चरित ९ तथा कबीरचरित्र १५ कडवों में हैं। पहली रचना में तो हिन्दी का अंश थोड़ा है, किन्तु दूसरी में बहुत अधिक है। केशवानंद स्वामी के संपर्क में आने पर इन्होंने नाभाजी के भक्तमाल की भांति संतों की जीवनियाँ लिखने का निश्चय किया। ऐसा प्रतीत होता है कि इन्होंने ऐसे ८ चरित्र लिखे। नाथ संप्रदाय के गोरक्ष का जीवन चरित इन्होंने लिखा और कबीर का भी। इन दो काव्यों में ज्ञान तथा योग की प्रधानता होना स्वाभाविक है, क्योंकि चरित्र नायक ही इसी कोटि के हैं।

रतनजी—ये गुजरात के बाहर नासिक के पास बागलाण में रहते थे। इन्होंने 'द्रौपदीचीरहरण', 'सगाल शा' और 'विभ्रमी राजानुं आख्यान' की रचना की है। सगालशा में इनका एक पद २१ कडियों का है, जो धीरा की काफी शैली में है। विभ्रमी आख्यान में १३ कडवे हैं, जो अश्वमेध पर्व की कथा पर आधृत हैं, और जिसमें अद्भुत तथा वीर रस प्रधान है। यह ध्यान देने की बात है कि गुजरात के बाहर रहते हुए भी इन्होंने ३ आख्यानों की रचना की है।

प्रेमानंद—१७वीं शताब्दी में बहुत अधिक आख्यान लिखे गये, जो महाकाव्यों एवं पुराणों से लिखे गये थे। ये बहुत अधिक प्रसिद्ध हुए और इनके द्वारा भक्ति का अच्छा प्रचार हुआ, साथ ही लोगों को इनसे नैतिक शिक्षाएँ तथा काव्य-मनोरंजन प्राप्त हुआ। परिमाण और श्रेष्ठता, दोनों दृष्टियों से प्रेमानंद इस युग के सभी कवियों में उत्तम ठहरते हैं। इतना ही नहीं, ये मध्यकालीन गुजराती साहित्य में भी सर्वश्रेष्ठ रचनाकार हैं। ये महाकवि, जो अपने को भट कहते हैं, बड़ौदा के नागोरा चतुर्वेदी ब्राह्मण थे। इनकी आयु बड़ी लंबी सन् १६३६ से १७२४ तक की थी। कुछ के मत से तो इनका अंत १७३४ में हुआ था। प्रेमानंद जब बालक थे, तभी इनके पिता कृष्णराम का देहान्त हो गया था, अतः इनका लालन-पालन इनकी मौसी के यहाँ नन्दरबार में हुआ। जीविका के लिए ये नन्दरबार, सूरत और बड़ौदा में रहे। परंपरा बताती है कि १४ वर्ष की अवस्था तक ये निरक्षर थे, किन्तु अपनी सेवा से इन्होंने एक

साधू को प्रसन्न किया, जिसने इन्हें गुजराती का अच्छा कवि होने का वरदान दिया; साथ ही यदि ये साधु के बताये हुए निश्चित दिन पर उससे मिलते तो संस्कृत के भी अच्छे कवि हो जाते। दूसरे मत के अनुसार ये जब संन्यासी रामचरण हरिहर, जो पाटण के नागर थे, के सम्पर्क में आये, तब शिक्षित हुए। प्रेमानन्द ने उनके साथ भारत के विभिन्न भागों में भ्रमण किया और हिन्दी में लिखना आरंभ किया। ऐसी भी किंवदन्ती है कि इन्होंने प्रण किया था—जब तक मैं गुजराती भाषा का स्तर ऊँचा करके इसे उच्च स्थान पर प्रतिष्ठित न कर दूँगा, तब तक सिर पर साफा न बाँधूंगा।

इन्होंने अपना पहला आख्यान 'लक्ष्मणाहरण' सं० १७२० में लिखा। उस समय ये बड़ौदा में थे और अपने मित्र माधवशेठ की प्रेरणा से यह काव्य लिखा था। तीन वर्ष बाद इन्होंने २९ कडवों में 'ओखाहरण' की रचना की। सं० १७३० में ये गोदावरी-यात्रा पर निकले और ऐसा कहा जाता है कि इन्होंने मराठी कवि वामन पंडित की कविताएँ पढ़ी। ऐसी मान्यता भी है कि इनके समय के पौराणिक ईर्ष्यावश इनसे झगड़ा बहुत करते थे, क्योंकि महाकाव्यों तथा पुराणों के प्रसंगों को लेकर इन्होंने सफलता एवं कुशलता से उनका वर्णन किया है। ऐसा लगता है कि इनका संस्कृत-ज्ञान अच्छा था। महाकाव्यों तथा पुराणों के अत्यन्त रुचिकर प्रसंगों को इन्होंने चुना है और उनको अपनी प्रतिभा के बल से अधिक कलात्मक बना दिया है। इनके आख्यान उस समय के समाज के लिए बड़े शिक्षाप्रद थे। उस समय जनता में शिक्षा का अभाव था, किन्तु धर्म की ओर झुकाव था। लोगों ने प्रेमानंद के आख्यानों का, जिनमें अनेक रस होते थे और पौराणिक पात्रों में कुछ गुजरातीपन सम्मिलित कर दिया गया था, स्वागत बड़े उत्साह से किया। संगीत वाद्यों के साथ ये आख्यान आधी-आधी रात तक चलते थे, जो लोगों को आनंद प्रदान करके उनका मनोरंजन करते थे। इस प्रकार प्रेमानन्द को आख्यानों द्वारा लोगों में धार्मिक तथा नैतिक संस्कार भरने का केवल यश ही नहीं मिला, वरन् नन्दरबार, सूरत और बड़ौदा में अपने सफल साहित्यिक कार्यों द्वारा इन्होंने प्रचुर धन-सम्पत्ति प्राप्त की। इन्हें लंबी आयु मिली थी और वे बहुत ठाठ से रहते थे। ब्राह्मणों को भोजन कराने में वे बहुत अधिक खर्च करते थे।

अपने बाद उन्होंने ८ घर और कुछ चल सम्पत्ति छोड़ी थी। कवि को नन्दरबार के ठाकोर तथा अपने मित्र—शंकरदास, माधवशेठ और अन्य—का आश्रय प्राप्त था। किन्तु इनमें से किसी का कवि ने अत्यधिक यश गान नहीं किया। बाद में इनकी रचना-शैली और आख्यान कहने के ढंग का अनुकरण हुआ। ऐसा कहा जाता है कि इनके शिष्यों का एक दल था, जिसमें से प्रत्येक को इन्होंने एक न एक विशेष कार्य सौंप रखा था, किन्तु अधिकांश विद्वान् इस मत से सहमत नहीं हैं।

इस काल में मुगल शासन के अन्तर्गत देश सुखी और सम्पन्न था। ऐसा प्रतीत होता है कि प्रेमानंद ने अपनी जीविका एक गागरिया भट्ट के रूप में आरंभ की, यद्यपि कुछ विद्वानों को इसमें संदेह है कि प्रेमानंद ने एक माणभट्ट की तरह आख्यान कहने में अपना जीवन बिताया न कि एक साधारण पौराणिक की तरह। उनके कुल ५७ काव्य बताये जाते हैं। इनमें कुछ बहुत बड़े हैं। इनकी कथावस्तु महाभारत, भागवत, मार्कण्डेयपुराण, रामायण और नरसिंह मेहता की जीवनी से ली गयी है। पूर्ण महाभारत, भागवत, मार्कण्डेय पुराण और कुछ फुटकर रचनाएँ, जो उनकी कही जाती हैं, उनकी प्रतीत नहीं होतीं।

प्रेमानंद के आख्यानों का इतना अधिक प्रचार हुआ और वे इतने प्रसिद्ध हुए कि अपढ़ स्त्रियों ने भी कुछ को कंठस्थ कर लिया तथा शिक्षित और साहित्यिक व्यक्तियों ने भी बड़े चाव से उन्हें पढ़ा और सुना। नरसिंह मेहता के जीवन से संबंधित उनके आख्यानों में एक विशेष आकर्षण तथा सौन्दर्य है। प्रेमानंद की दृष्टि बड़ी तीक्ष्ण थी। अतः महाकाव्य, पुराण एवं नरसिंह-जैसे भक्तों की जीवनी से कथावस्तु लेते हुए भी उन्होंने पुराने पात्रों में नया जीवन फूंक दिया है। किसी भी घटना को कलात्मक ढंग से कहने में वे बड़े निपुण थे और इसके लिए गुजराती भाषा के सभी साधनों का उपयोग उन्होंने किया है। अपने समय के समाज का भी उन्होंने बड़ा सूक्ष्म निरीक्षण किया था। वे नीरस हृदय में भी रस का संचार कर सकते थे, साथ ही एक रस से दूसरे रस में बड़ी कुशलता से आ जाते थे। उन्होंने जन-जीवन की वास्तविक झाँकी दी है। अपने श्रोताओं की नाड़ी के सूत्र पहचानते थे और समझ जाते थे कि उन्हें क्या

चाहिए। इस कार्य की सिद्धि के लिए उन्होंने पौराणिक पात्रों को अपने समय के गुजराती पात्रों में बदल दिया था। इनका यह कार्य गुण भी माना गया और दोष भी, क्योंकि कभी-कभी व्यास-वाल्मीकि जैसे महान् चरित्रों को भी उस समय की गुजराती जनता के मनोरंजनार्थ उन्होंने बहुत निचले स्तर पर उतार दिया था। फिर भी प्रेमानंद के हाथों आख्यान-शैली साहित्य का एक ऐसा लचीला माध्यम बन गयी, जो उपन्यास की भाँति सभी प्रयोजन सिद्ध करती थी।

प्रेमानंद ने भालण, उद्धव, विष्णुदास, नाकर, विश्वनाथ जानी तथा दूसरों के काव्य-ग्रंथ अवश्य पढ़े होंगे। उन्होंने अनेक ऐसे विषयों पर आख्यान लिखे हैं, जिन पर उनके पूर्ववर्ती पहले ही लिख चुके थे; किन्तु प्रेमानंद की रचना को पहली बार पढ़ते ही हमारे मन में यह भाव उठता है कि इसे किसी योग्य व्यक्ति ने लिखा है। प्रेमानंद ने महाकाव्यों तथा पुराणों के प्रसंगों को बदला है, सुधारा है, कुछ जोड़ा है और कभी कुछ निकाल दिया है, किन्तु यह सब करते हुए उनका ध्यान बराबर अपने श्रोताओं और आख्यान को अधिक रसपूर्ण बनाने पर था। वे प्रतिवर्ष औसतन दो अथवा तीन आख्यान लिखते थे। यद्यपि उनके अनेक विषयों पर उनके पहले के कवि भी लिख चुके थे, किन्तु विभिन्न रसों से युक्त घटनाओं के वर्णन का उनका अपना विशेष ढंग होता था, जो मौलिक होता था। गुजरात के अनेक नगरों और गाँवों में उनके आख्यान २०० वर्षों से बराबर प्रेमपूर्वक गाये जा रहे हैं। चैत्र, वैशाख में 'ओखाहरण', भाद्रपद के श्राद्धपक्ष में 'नरसिंह मेहता का श्राद्ध', सीमन्त उत्सवों में अब भी 'कुंवरबाई का मामेरुं' गाया जाता है। उनका 'दशम स्कंध' चातुर्मास में और 'देवीचरित्र' नवरात्र में लोग गाते हैं। बहुत-से लोग शनिवार को उनका 'सुदामा चरित्र' और रविवार को 'हुंडी' गाते हैं। दूसरे शब्दों में उनके आख्यान मनोरंजन तथा पुण्य-लाभ दोनों दृष्टियों से गाये जाते हैं।

प्रेमानंद ने प्रचलित रागों—देशी, चाल, ढाल—में रचनाएँ की हैं। उनका चरित्र-चित्रण बड़ी उच्चकोटि का है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि उन्होंने पौराणिक पात्रों में तत्कालीन समाज की प्रवृत्तियों तथा विशेषताओं का आरोपण किया है; हाँ, ऐसा करने में निःसन्देह उन्होंने अपनी कल्पना-शक्ति और आदर्शवादिता का परिचय दिया है।

प्रेमानंद के श्रेष्ठ आख्यान हैं—अभिमन्यु आख्यान, चंद्रहास आख्यान, ओखा-हरण, सुदामाचरित, सुधन्वाख्यान, रणयज्ञ, नलाख्यान, हरिश्चंद्राख्यान, मदालसाख्यान, रुक्मिणीहरण, हुंडी, श्राद्ध, मामेरु, नरसिंह मेहतानो विवाह और उनका भागवत का दशम स्कंध। स्वामी नीमरुणी, भगवद्गीता, द्रौपदी स्वयंवर, सम्पूर्ण महाकाव्य और पुराण तथा अन्य दूसरे ग्रंथों के रचयिता होने में भी संदेह है।

पुरानी बड़ौदा रियासत ने रायबहादुर हरगोविन्ददास द्वा० कांटावाला, दीवान बहादुर केशवलाल ह० ध्रुव, नाथाशंकर पू० शास्त्री तथा छोटा-लाल नरभराम भट्ट के द्वारा संपादित करा कर प्राचीन काव्यमाला के अन्तर्गत कई ग्रंथ तथा उसी नाम की एक त्रैमासिक पत्रिका का प्रकाशन किया है। इस प्रकार के प्रकाशित और पुरानी गुजराती के ग्रंथों में नरसिंह मेहता, प्रेमानंद, वल्लभ और कुछ अन्य रचनाओं के कुछ ग्रंथों के संबंध में संदेह प्रकट किया गया है। प्रेमानंद के तीन नाटक प्रकाशित किये गये थे—सत्यभामा रोषदर्शिका आख्यान, पांचाली प्रसन्न आख्यान और तापती आख्यान। किन्तु प्रकाशित होते ही उनके प्रेमानंद द्वारा रचे जाने में संदेह उठाया गया। श्री नरसिंहराव भो० दिवेटिया ने अपने गौरवपूर्ण निबंध में निश्चित रूप से यह सिद्ध कर दिया है कि इन नाटकों का रचयिता प्रेमानंद को मानना कल्पित और भ्रमयुक्त है। इस विषय में दोनों पक्षों में घोर खंडन मंडन हुआ। किन्तु आज अधिकांश विद्वानों द्वारा मान लिया गया है कि ये रचनाएँ प्रेमानंद की नहीं हैं। और शब्दों से उनमें संदेह उत्पन्न होता है। प्रकाशकों ने आज तक उनकी हस्तलिखित प्रति उपस्थित नहीं किया और किसी ने उन्हें नहीं देखा। भाषा-शास्त्र से सिद्ध होता है कि शैली, शब्दावली, मुहावरे, भाषा तथा विचार-पद्धति आधुनिक तथा बनावटी है। इस ग्रंथ का प्रकाशन बड़े संदेहास्पद परिस्थिति में हुआ है। आरम्भ में प्रकाशकों तथा समालोचकों ने प्रेमानंद, उनके पुत्र वल्लभ तथा शिष्य आदि का वैयक्तिक जीवन वर्णित किया है किन्तु बाद में अनेक प्रमाणों से सिद्ध कर दिया गया है कि वह कपोलकल्पित कहानी में दी गई थी। इस प्रकार के अनेक प्रसंग हैं, जिनसे आधुनिक रचयिता होने का संदेह होता है। इससे प्रतीत होता है कि इन सभी रचनाओं का

का कोई एक ही रचयिता है। इनके रचयिता छोटालाल नरभेराम भट्ट एवं नाथाशंकर शास्त्री कहे जाते है तथा इस सबंध मे दीवान बहादुर केशवलाल ध्रुव और एच० एच० ध्रुव का भी नाम लिया जाता है। यदि इन संदेहात्मक ग्रंथो को छोड दे, तो भी प्रेमानद के वास्तविक ग्रथ इतने पर्याप्त है कि मध्य-कालीन गुजराती साहित्य के वे सर्वश्रेष्ठ कवि माने जा सकते है।

प्रेमानद की विशेपताओ मे से कुछ ये है—उनकी कथन-शैली, श्रोताओ मे रुचि उत्पन्न करने का ढंग और उन्हे मत्रमुग्ध कर लेना; उत्तम और प्रासादिक ढग से विभिन्न रसो को व्यक्त करना तथा किसी विशेप घटना पर मुख्य रूप से रहना; व्यर्थ का विस्तार करके रसभग न लाना, वरन् उचित अनुपात का ध्यान मस्तिष्क मे रखना; वास्तविक एवं स्वाभाविक चरित्रचित्रण; जहाँ भी रसोद्रेक सभव हो, वहाँ न चूकना, तथा श्रोताओ को बोध होने के पहले ही बड़ी कुशलता से एक रस से दूसरे रस मे पहुँच जाना। उन्होने नल-दमयन्ती और उपा-अनिरुद्ध के सच्चे प्रेम का वर्णन किया है। नन्द-यशोदा तथा वसुदेव-देवकी के वात्सल्य प्रेम का इनका वर्णन भी बहुत सुन्दर है। साधारण जाति के लोगो की दुर्बलताएँ भी इन्होने अच्छे ढग से कही है, साथ ही संबधों के विपय मे भी लिखा है, जैसे सास-पतोहू आदि और वे वर्णन सजीव है। 'हुडी' मे कृष्ण एक मोटे गुजराती बनिया की भाँति ठेठ गुजराती वेश-भूपा मे आते है और नरहरि मेहता की हुंडी सकारते है। 'मामेरु' मे हास्य रस उत्पन्न करने के उद्देश्य से कवि ने एक टूटी गाड़ी मे नरसिंह मेहता को अपनी पुत्री कुँवरबाई की समुराल जाते हुए बताया है। बेचारे नरसिह के पास अपनी पुत्री को देने के लिए कुछ भी नही था, अत वह अपने साथ झाञ्ज-करताल और गोपी-चंदन ले जाता है। 'सुभद्राहरण' मे कवि ने अर्जुन को एक जोगी के रूप मे बताया है, जो श्रीकृष्ण के कहने से सुभद्रा को हरने के लिए आये थे। 'अभिमन्यु-आख्यान' मे कृष्ण शुक्राचार्य का रूप धारण करते है। 'सुदामा चरित्र' मे सुदामा अपनी पत्नी के व्यंग्यो के कारण द्वारका की ओर चलते है। 'नलाख्यान', 'सुदामाचरित्र' और 'मामेरुं' मे प्रेमानद ने बड़ी कुशलता से हास्य रस उत्पन्न किया है। यद्यपि 'नलाख्यान' मे प्रधान रस करुण है, फिर भी कवि उसमे हास्य रस के लिए अवसर और स्थान निकाल लेता है। स्वयंवर का वर्णन;

बड़े तथा सुरूप राजाओं में, यहाँ तक कि देवताओं में भी, दमयन्ती को पाने की लालसा, बाहुक का वर्णन आदि कुछ ऐसे अवसर हैं, जिनका लाभ कवि ने हास्य उत्पन्न करने के लिए उठाया है। यद्यपि प्रेमानंद ने नवों रस पैदा किये हैं, किन्तु शृंगार, करुण एवं हास्य रस उत्पन्न करने में उसने सर्वोत्तम क्षमता दिखायी है। 'रणयज्ञ' में मुख्यतः वीर रस का वर्णन है। प्रेमानंद अन्य कवियों की अपेक्षा सबसे अधिक गुजराती हैं और अपने आख्यानों में उन्होंने परिचित गुजराती समाज का वर्णन किया है, जिसमें गुजराती रीति रिवाज, उत्सव, वेष-भूषा, आभूषण, स्वभाव आदि बताये गये हैं और इन्हीं ढाँचों में पौराणिक पात्रों को ढाला है। पहले कहा जा चुका है कि इसी कार्य ने महाकाव्यों तथा पुराणों के पात्रों की भव्यता को नीचे झुका दिया है। कभी-कभी श्रोताओं को सन्तुष्ट करने के लिए प्रेमानंद ने हास्यरस की अधिकता कर दी है। उन्होंने वर्णन की परम्परागत परिपाटी का ही अनुकरण किया है और कहीं-कहीं उन्होंने उपमाओं की लंबी सूची अथवा लंबे-लंबे वर्णन रखे हैं, जो अनुपातरहित हैं। तो भी उन्होंने गुजरात को वार्ता एवं काव्य का आनन्द प्रदान किया, धर्म-नीति के संस्कारों का पोषण किया तथा गुजरात के व्यास बन गये। वे केवल मध्यकालीन कवियों में ही सर्वोत्तम नहीं थे, किन्तु आज के नवीन शिक्षित-समाज को भी अपनी ओर आकर्षित करते हैं। सर्वसम्मति से वे मध्यकालीन गुजराती साहित्य के 'कवि शिरोमणि' घोषित किये गये हैं, यह उचित ही है।

प्रेमानंद के दो पुत्र थे—वल्लभ और जीवणराम। वल्लभ ने अनेक ग्रंथ लिखे, जिनमें 'दुःशासन-रुधिरपान-आख्यान', 'यक्ष प्रश्नोत्तर', 'कुन्ती प्रसन्नाख्यान', 'कृष्णविष्टि', 'प्रेमानंद कथा', 'युधिष्ठिर-वृकोदराख्यान' और 'मित्रधर्माख्यान' है, यह एक सामाजिक कहानी है। इनमें से कई ग्रंथों का उनके रचयिता होने में विद्वानों को संदेह है। बड़ौदा की प्राचीन काव्यमाला के संपादकों ने वल्लभ के विषय में लिखा है कि वे सामल के विरुद्ध अपने पिता का पक्ष लेने में सदा तल्लीन रहते थे। उन्होंने सामल-प्रेमानंद का संघर्ष भी प्रस्तुत कर दिया है। वल्लभ को हठी और अहंकारी लेखक बताया गया है, जो अपने पिता के बड़े भक्त थे और सबकी निंदा करके, यहाँ तक कि चन्द-बरदाई को भी, अपने पिता के काव्य को सर्वश्रेष्ठ बताया करते थे। प्रेमानंद

के शिष्य बहुत अधिक थे, जिनमे १२ महिलाएं बतायी जाती है। ऐसा कहा जाता है कि प्रेमानंद ने वल्लभ को हिन्दी के ढग की रचना करने का आदेश दिया, रत्नेश्वर को सस्कृत और मराठी के ढंग की तथा वीर जी को उर्दू और फारसी के ढग की। प्रेमानद अपना 'दशम स्कध' ग्रथ अधूरा छोड़कर स्वर्ग-वासी हुए थे, जिसको उनके एक शिष्य सुन्दर ने पूर्ण किया।

प्रेमानंद की कुछ कृतिया, वल्लभ की कुछ रचनाएँ, प्रेमानद और शामल का झगड़ा, जो इस तर्क से अस्वीकृत कर दिया गया है कि प्रेमानद के समय मे शामल बहुत ही छोटे थे, तथा प्रेमानद का बहुत बड़ा शिष्यमडल होना—ये सब तथ्य अब विश्वसनीय नही माने जाते। वल्लभ के बताये हुए ग्रथो मे यत्र-तत्र कुछ अच्छे स्थल है, किन्तु सब मिलाकर शैली निरर्थक, अस्पष्ट, क्लिष्ट और घृणित आत्म-प्रशंसा से युक्त है। 'मित्र धर्माख्यान' भी वल्लभ की रचना कही जाती है। उनके कई ग्रथों मे यही एक ऐसा है, जिसमे कुछ दम है। यह एक ब्राह्मण के दो पुत्र इन्दु और मिन्दु की सामाजिक कहानी है। वास्तविक जीवन का यह पहला आख्यान है।

प्रेमानद के समकालीन कवियो मे रत्नेश्वर सर्वोत्तम है। वे डभोई के मेवाडा ब्राह्मण थे। आरभ मे वे एक पौराणिक थे, किन्तु स्थानीय पौराणिको की ईर्ष्या का शिकार होने के कारण उन्हे डभोई छोड़ना पड़ा। उनके प्रति-द्वन्द्वियो ने उन्हे इतना सताया कि उनके अशिक्षित पुत्रो को भडकाकर उनके भागवत का एक भाग नर्मदा नदी मे फिकवा दिया। उनका सस्कृत का अध्ययन अच्छा था तथा उनकी शैली उत्तम, शुद्ध और ललित थी। अपने समकालीन पौराणिको की अपेक्षा वे बहुत श्रेष्ठ थे। उन्होने भागवत, भगवद्गीता, गगालहरी, महिम्न स्तोत्र, लकाकाण्ड, स्वर्गारोहण, अश्वमेध पर्व आदि की रचना की; साथ ही कामविलास एवं वैराग्यलता भी लिखा। उनकी रचना 'राधा कृष्ण महीना' मे, जिसमे उन्होने मालिनीवृत्त का भी उपयोग किया है, आधुनिक काव्य का सा सौन्दर्य है। ऐसा कहा जाता है कि प्रेमानद न उन्हे संस्कृत और मराठी के अनुरूप रचना करने का आदेश दिया था। मध्यकालीन युग के सर्वोत्तम कवियो मे से एक ये भी है, जिन्होने सस्कृत के अनेक ग्रथो का अनुवाद गुजराती मे किया है।

वीर जी वडनगर के रहनेवाले थे और कुछ आख्यानों तथा 'कामावतीनी कथा' की रचना की है। इनका कंठ बड़ा मधुर था। ऐसा कहा जाता है कि प्रेमानंद रचनाएँ इन्हीं से पढ़वाया करते थे। वीर जी का 'सुभद्राहरण' बहुत प्रसिद्ध है। प्रेमानंद के दूसरे शिष्य थे हरिदास। इन्होंने 'नरसिंह मेहताना बापनु श्राद्ध', 'शामल शाहनो विवाह' तथा 'सीता विरह' आदि लिखा है। ऐसा कहा जाता है कि इनके 'शामल शाहनो विवाह' को पढ़कर इन्होंने अपना दूसरा विवाह किया। द्वारकादास जाति के वैश्य थे, जिन्हें ५० वर्ष की अवस्था में प्रेमानंद से कविता करने की प्रेरणा प्राप्त हुई और इन्होंने रामहमामी की अच्छी रचनाएँ की हैं। धनदास, रत्नो आदि भी कई शिष्य प्रेमानंद के कहे जाते हैं। किन्तु उनके कहलानेवाले शिष्यों ने कोई बहुत अच्छी रचना प्रस्तुत नहीं की। वे जन्मजात कवि नहीं थे, किन्तु प्रेमानंद से थोड़ी-बहुत प्रेरणा भर प्राप्त की थी।

वल्लभ मेवाड़ो—हरि भट्ट के पुत्र वल्लभ धोला चुवाल की देवी बाला बहुचरा के परम भक्त तथा उपासक थे। उनका काल सन् १६४० से १७५१ ई० तक है। इन्हें १११ वर्ष की लंबी आयु प्राप्त हुई थी। ऐसा भी कहा जाता है कि वल्लभ और धोला दो जुड़वाँ भाई थे। किन्तु अधिक मत एक ही व्यक्ति के आग्रह है। कहते हैं कि इन्हें एक ब्रह्मचारी के पास अध्ययन के लिए भेजा गया था, किन्तु उन्होंने इन्हें अयोग्य देखकर लौटा दिया। फिर भी इन्हें नवार्ण मंत्र की दीक्षा दी गयी, जिससे जप कर इन्होंने सिद्धि पा ली तथा बालादेवी के दर्शन करके उनसे कवित्व शक्ति प्राप्त कर ली। उसके बाद इन्होंने देवी की महिमा में अनेक गरबे तथा गरबियों की रचना की। इनका विवाह वडनगर में हुआ था और जीवन भर ये बाला बहुचरा देवी की भक्ति करते रहे। ये दक्षिणाचार शाक्त थे। कहा जाता है कि इन्होंने वैरोचन नामक नागरवाणिया को त्रिपुरा की उपासना सिखायी, जिसके बल पर वैरोचन ने प्रचुर सम्पत्ति प्राप्त की। वल्लभ मेवाड़ा शक्ति-पूजा के मर्म को जानते थे और देवी सम्बन्धी उत्तम गरबों की रचना उन्होंने की। इन्होंने तीनों शक्तिपीठों की महिमा में गीत गाये हैं—ये पीठ हैं, आराशुर की अंबिका, पावागढ़ की कालिका और चुवाल की बाला बहुचरा। द्वितीय शादि के कवियों में ये सर्वोत्तम माने जाते हैं। इनका आनंदनो गरबो,

आरासुरनो गरबो, महाकालीनो गरबो, शणगारनो गरबो आदि बहुत प्रसिद्ध हैं तथा वर्णनों से पूर्ण हैं, जिनमें कवि की भक्ति प्रकट होती है। देवी के मंदिरों में लोग "वल्लभ धोलानी जय" बोलते हैं। इन्होंने अन्य विषयों पर भी अनेक गरबे लिखे हैं और गरबा-लेखकों में इनका स्थान प्रथम है।

लोकवार्ता तथा अन्य साहित्य

माधव और कामकन्दला की कहानी किसी अज्ञात लेखक द्वारा लिखी गयी है। १७वीं शताब्दी की कुछ लोकवार्ता रचनाएँ ये हैं—दामोदर की माधवानल कथा; खंभात के शिवदास की दो कहानियाँ—कामावती और हंसावली; केशवदास की कामावतीनी कथा; यही कथा वीरजी द्वारा लिखी हुई तथा पाचा की कुंडलाहरण। माधव ने सन् १६५० में "रूपसुन्दर कथा" विभिन्न अक्षरमाला वृत्तों में लिखी। इसकी भाषा संस्कृत-बहुला और समास-युक्त है। यह एक पुरोहितपुत्र सुन्दर और राजकुमारी रूपा की प्रेमकथा है, जिसमें संभोग और विप्रलंभ शृंगार का अच्छा वर्णन है। गोपाल भट्ट की 'फूला चरित्र' भी इसी प्रकार की समास-युक्त रचना है, जो ४० कड़ियों में है। 'विनेचटनी वार्ता' सूरत के दो वैश्य-बन्धुओं द्वारा लिखी गयी है। इसी शताब्दी में जैनों ने भी अनेक वार्ताओं की रचना की है, जिनमें से कई अभी भी अप्रकाशित हैं। इन कहानियों का विषय है—सगालशाह, पंचदंड, सिंहासन बत्तीसी, वछराज, सदयवत्स सावलिंगा, विद्याविलास, विक्रमादित्य, भोज-प्रबंध, शीलवती आदि। इनके लेखक जैन साधु हैं। नेमिविजय के 'शील-वती रास' में नायक चन्द्रगुप्त तथा नायिका शीलवती के जीवन की अनेक विपत्तियों एवं चमत्कारों का वर्णन है। विभिन्न पात्रों से युक्त यह एक असाधारण कहानी है और इसमें भाषा का पुराना रूप भी सुरक्षित है।

इस काल में लोक-कथाओं के अतिरिक्त अनेक जैन कवियों ने कई रास और प्रबंध भी लिखे हैं। समय सुन्दर द्वारा रचित 'नल दमयन्ती रास' इस काल की एक श्रेष्ठ रचना है। मुनि आनंदघन जी ने 'आनन्दघन चोवीसी' तथा 'आनन्दघन बहोतेरी' लिखी है, जिनमें ज्ञान-भक्ति के पद हैं। आनन्दघन जी का एक दूसरा नाम भी था—लाभानन्द अथवा लाभ विजय। वे आत्मा-

नुभवी, महान् ज्ञानी, यागी और भक्त थे। उनके काव्य में गभीर दर्शन, भक्ति और त्याग की भावना है। उन्होंने प्रेम की मधुर भाषा में भी कुछ पद लिखे हैं तथा हिन्दी में भी उनके कई पद हैं। यशोविजय तथा केसर विमल ने अनेक सुभाषित लिखे हैं।

पारसियों का योगदान

गुजरात ने पारसियों का स्वागत किया और उन्होंने गुजराती को अपनी मातृभाषा स्वीकार कर ली। यहां बस जाने के बाद उन्होंने अपने धार्मिक ग्रंथों का अनुवाद गुजराती में किया। 'अर्दाविराफ़' ग्रन्थ का गद्यात्मक पारसी-गुजराती अनुवाद है। इसमें अर्दाविराफ द्वारा ७ दिन रात की समाधि में देखे हुए स्वर्ग नरक के दृश्यों का वर्णन है। १७वीं शताब्दी में सूरत के मोबेद रुस्तम पशोतन ने ८ पद्यात्मक ग्रंथों की रचना की। वे हैं—जरथोस्त नामेह, स्यावक्ष नामेह, बीराफ नामेह और अस्पदरपाह नामेह। नामह का अर्थ है चरित्र। भाषा में पारसियों द्वारा बोली जाने वाली भाषा का भी पुट है तथा इसमें पहेलवी और फारसी भाषा के भी शब्द हैं।

अध्याय ९

सन् १७०१ से १८५२ तक

लोकवार्ताकार कवि शामल

यद्यपि कवि शामल का जन्म १७वी शताब्दी मे हुआ, तथापि उनका रचना-काल १८वी शताब्दी मे आता है। ये लोकवार्ता के सर्वश्रेष्ठ रचयिता है। जिस प्रकार धार्मिक उपदेश और नैतिक शिक्षा के लिए लोग आख्यान श्रवण करते थे, उसी प्रकार मनोरंजन और व्यवहार-बुद्धि के लिए वे लोकवार्ताओ को भी सुना करते थे। लोकवार्ताओ मे प्रणय और साहसिक कार्यो मे युक्त कथा-कहानी का आकर्षण रहता है। पहले शामल एक पौराणिक कथाकार थे, किन्तु उसमें असफल होने से वे लोकवार्ता की ओर झुक गये। उनकी पहली कहानी 'पद्मावतीनी वार्ता' की रचना सन् १७१८ मे हुई थी। प्रेमानंद के समय मे ये इतने छोटे थे कि दोनो की कथित स्पर्धा कदापि संभव नही, इसी लिए शामल और प्रेमानंद की स्पर्धा की बात अब झूठी पड गयी। इसी प्रकार प्रेमानद के पुत्र वल्लभ के साथ इनके झगड़े की बात भी काल्पनिक ही है। प्राचीन काव्य-माला के संपादको ने अपनी प्रस्तावना मे यह विश्वास दिलाया था कि 'प्रेमानद कथा" और "वल्लभ झगडो" रचनाएँ प्रकाशित की जायँगी, किन्तु अभी तक न तो वे प्रकाशित हो सकीं और न किसीने उनकी मूल पांडुलिपि देखी। ऐसा लगता है कि ये काल्पनिक प्रसंग केवल प्रेमानंद का गौरव बढ़ाने के लिए गढ़ लिये गये है। कुछ विद्वानों का तो मत है कि वल्लभ और शामल की रचनाओ से पुष्ट होनेवाले ये झगड़े जानबूझ कर किसी दूसरे द्वारा रचकर जोड़े हुए है।

शामल अहमदाबाद के उपनगर वेगणपुर के निवासी, वीरेश्वर के पुत्र, नानाभट्ट के शिष्य थे, और श्री गोड़ मालवीय ब्राह्मण थे। इनकी 'बत्रीस पुतलीनी वार्ता' सिंहुज के धनी पाटीदार रखीदास की दृष्टि मे पड़ी। उन्होंने

प्रसन्न होकर शामल को अपने स्थान पर आमंत्रित किया और भूमि रियासत देकर अपने यहाँ बसा लिया। वे ही कवि के आश्रयदाता थे। शामल ने भी उनके उपकार को स्वीकार किया और प्रायः अपनी रचनाओं में उदार राजा भोज तथा दानेश्वर कर्ण से उनकी तुलना करते हुए रखीदास का उल्लेख किया है।

शामल को संस्कृत, व्रज तथा फारसी भाषाओं का ज्ञान था। उनके बाद उनका कोई अनुयायी नहीं था और न उनकी काव्य शैली का कोई वंश ही शेष रहा। उनके कुछ ग्रंथ महाकाव्य तथा पुराणों पर आधृत हैं, जैसे—शिवपुराण, रेवाखंड, अंगदविष्टि, रावण मंदोदरी-संवाद, कलि माहात्म्य, सुदेवाख्यान तथा द्रौपदी वस्त्रहरण। इनमें से कुछ ग्रंथ इनके लिखे नहीं जान पड़ते। इन्होंने अनेक लोकवार्ताएँ अथवा काल्पनिक कहानियाँ भी लिखी हैं—बत्रीसपुतली, शुकबहोतरी, पद्मावती, नन्दबत्रीसी, बिने चटनी वार्ता तथा बरासकस्तूरी वार्ता आदि। उनकी कुछ फुटकर रचनाएँ भी हैं—जैसे, रूस्तमबहादुरनो पवाडो, रणछोड़ना सलोका आदि। इनके आख्यान बहुत ही साधारण हैं, इसीलिए उनकी रचना आगे चलकर इन्होंने बंद कर दी। लोकवार्ता की रचना में भी इनकी मौलिकता अधिक नहीं दिखाई देती। उनके पूर्व अनेक जैन तथा अजैन कवि हुए हैं, जिन्होंने इन्हीं विषयों पर लोकवार्ताएँ लिखी हैं, जिन पर शामल ने लिखा है। शामल संस्कृत के वार्ता साहित्य पर भी बहुत-कुछ निर्भर थे। इन्होंने उन कहानियों को अपने ढंग से लिखा है और प्रायः उनका सुधार कर उनका विस्तार किया है। कभी तो इन्होंने कथावस्तु का क्रम बदल दिया है, कभी उनमें कुछ अपनी बात जोड़ दी है और कभी घटनाओं में परिवर्तन कर दिया है। पचास वर्ष पहले ऐसा विश्वास किया जाता था कि शामल एक महान् और मौलिक रचनाकार एवं समाज-सुधारक थे किन्तु उनके पूर्ववर्ती जैन तथा अजैन कवियों के ग्रंथ जब से प्रकाश में आये, तब से यह सिद्ध हो गया है कि शामल की रचनाओं में सामाजिक दशाओं के वर्णन ज्यों के त्यों पूर्ववर्ती कवियों की रचनाओं से लिये गये हैं।

'सिंहासन बत्रीसी और शुक बहोतरी' कहानियाँ संस्कृत से संबद्ध हैं तथा 'पद्मावती', 'मदनमोहना' और 'विद्याविलासिनी' स्वतंत्र लोक कहानियाँ

हैं। इन कहानियों का मुख्य उद्देश्य मनोरंजन है। ये गल्प दैवी घटनाओं तथा चमत्कारों से पूर्ण हैं। देवियां, सिद्धजन, जोगिनियां, वैताल, पक्षी और पशु सम्मुख उपस्थित होकर मानवी भाषा में स्त्री-पुरुषों से बात करते हैं। इन कहानियों के पात्र अपने पूर्वजन्मों का स्मरण रख सकते हैं, किसी दूसरी काया में प्रवेश कर सकते हैं, मृत व्यक्ति जीवित हो सकते हैं, आकाश में उड़ सकते हैं और पाताल में जा सकते हैं। किसी व्यापारी का साहसी पुत्र व्यापार के लिए संसार के दूसरे छोर तक पहुँच जाता है। स्त्री पात्र सुशिक्षित, योग्य और बहुत बुद्धिमान् हैं। इनमें प्रेम-विवाह और विजातीयविवाह भी प्रायः होते हैं। इन कहानियों के पात्र साहसी, उदार, सहानुभूति रखनेवाले, प्रतिभाशाली और जीवन को तुच्छ समझनेवाले हैं। शामल ने इन्हीं में अनेक उपकथाओं की भी रचना कर दी है। इन्होंने प्राय. कोई समस्या प्रस्तुत करके नायक अथवा नायिका की बुद्धि की परीक्षा करायी है। उस समय के समाज का इन समस्याओं से अच्छा मनोरंजन होता था। स्त्रियाँ केवल उसी पुरुष को वरण करना पसंद करती थी, जो उनके द्वारा प्रस्तुत की हुई समस्या का समाधान कर देता था। इस प्रकार की स्त्रियों में कुछ ऐसी भी थीं, जो पुरुष वेश धारण करके साहसिक कार्यों के लिए चल पड़ी थीं, किसी अन्य देश में एक या अनेक कुमारियों से विवाह करती थीं और अन्त में अपने सहित सबको अपने पति के सामने उपहार स्वरूप उपस्थित कर देती थीं। शामल ने नैतिक शिक्षा से पूर्ण लंबे उपदेशों तथा सुभाषितों को भी बीच-बीच में रख दिया है। ऐसे स्थलों में वे व्यावहारिक बुद्धि प्रदान करते जान पड़ते हैं, दर्शनशास्त्र से उनका कोई संबंध नहीं होता। उनका वार्ता-साहित्य बहुत विशाल है। उन्होंने अनेक छप्पयों की भी रचना की है, जिनमें अनेक अच्छे सुभाषित हैं। दलपतराम ने उनके ७०० दोहों को संगृहीत करके उसे 'शामल सतसई' का नाम दिया है।

शामल की महत्ता कहानी कहने के ढंग में है और कहावतों, सुभाषितों, समस्याओं, सूत्रवाक्यों तथा बुद्धिमत्तापूर्ण वचनों को प्रस्तुत करने में है। इन्होंने अपनी रोमांचकारी कहानियों में जीवन की प्रसन्नता और तरलता, जीवन के प्रति प्रेम और साहस, रक्त सुखा देनेवाले दैवी दृश्य तथा स्तब्ध कर देनेवाले चमत्कार हमारे लिए सुरक्षित रख छोड़े हैं। जैसे प्रेमानंद

सवश्रेष्ठ आख्यानकार हैं, वैसे ही शामल सवश्रेष्ठ लोकवार्ताकार हैं। कवि की दृष्टि से ये इतने ऊँचे नहीं हैं, किन्तु इनकी कहानी कहने की शैली विलक्षण है। ये श्रोताओं को आकर्षित करके उन्हें मत्रमुग्ध कर सकते थे, किन्तु काव्य-रस, अलकार, चरित्र-चित्रण की दृष्टि से प्रेमानद इनसे बहुत आगे हैं। शामल वार्ताकार होना ही पसद करते थे और इस माध्यम से उन्होंने मनोरजन, व्यवहार-बुद्धि, नैतिक उपदेश, समस्याओ द्वारा बुद्धि-परीक्षा, सुभाषित, कहावतें और सूत्रवाक्य हमारे समक्ष प्रस्तुत किये। शामल के बाद लोकवार्ता का क्षेत्र किसी प्रशसायोग्य सीमा तक विकसित नहीं हुआ।

प्रेमानद सर्वोत्तम आख्यानकार थे। उनके पश्चात् आख्यान-शैली मन्द पडने लगी और इनके बाद जो कवि हुए, उन्होंने मुख्यत पदो की रचना की, जैसे नरसिंह, भालण और मीरा आदि। साहित्य एव प्रतिभा की दृष्टि से ये कवि द्वितीय श्रेणी के समझे जाते हैं, किन्तु परिमाण की दृष्टि से इस युग के कवियो का बहुत बडा महत्त्व है। इनमें से कुछ तो तुक मिलानेवाले कवि थे और दयाराम को छोडकर इस युग में कोई प्रथम कोटि का कवि नहीं हुआ। कुछ आलोचको ने तो इसे 'साहित्य का बजर युग' कहा है। किन्तु निर्माण के बडे परिमाण को देखते हुए,—भले ही द्वितीय या निम्न श्रेणी का काव्य हो—यह तीक्ष्ण आलोचना उचित प्रतीत नही होती।

राजे बेरवाडा के रहने वाले मुसलमान और कृष्णभक्त थे। इन्होंने कृष्ण की स्तुति में शृगार तथा प्रेमलक्षण भक्ति से युक्त अनेक पदो की रचना की है। इनका 'राधा कृष्ण विरहना महीना' एक श्रेष्ठ बारहमासी काव्य है। कपडवज के रणछोड ने अनेक पदो, रणछोडजीना गरबो तथा कई अन्य ग्रथो की रचना की है। सूरत के नागर शिवानद स्वामी ने शिव की स्तुति में कई पद, कई थाल, घोल और आरतिया लिखी हैं। रामकृष्ण, बापण तथा रघुनाथ ने भी कुछ अच्छे गीतात्मक पदो की रचना की है।

कमावट के कालिदास ने कई आख्यान लिखे हैं, जिनमें से ४० कडवा का प्रह्लादाख्यान कुछ अच्छा है। मन जी भट्ट, लज्जाराम एव गोविदराम ने भी कई आख्यानो की रचना की है। शिवराम भट्ट ने एक स्पष्ट काव्य लिखा है जिसका नाम है, 'जीवरान सेठनी मुसाफरी', जिसमें जीव को शिव से पृथक्

होना, फिर ज्ञान और भक्ति की सहायता से पुनः शिव मे मिल जाना बताया गया है। गोविंदराम 'कलियुग नो धर्म' के रचयिता है, जिसमें कवि ने कलियुग के अनेक अनाचारो का वर्णन किया है। भीकमदास ने, जो पर्वत-दास की ११वी पीढ़ी मे हुए और नरसिंह मेहता के चाचा थे, 'पर्वत पच्चीसी' लिखी है।

ज्ञान-भक्ति के कवि

जैसा कि पहले बताया गया है कि अखो और गोपालदास, नरहरि और बूटियो एक ही गुरु के शिष्य माने गये है। अखो के शिष्य लालदास थे। 'सन्तोनी वाणी' मे उनके भजन प्रकाशित है। इनके बाद शिष्यो की एक ऐसी परपरा चली, जिसने ज्ञान-वैराग्य के पदो की रचना की है।

नाथभवान सौराष्ट्र मे घोडासर के वडनगरा नागर थे। इन्होने ४१ कड़ियों मे 'अम्बा आननो गरबो' की रचना की है, जो अब तक गाया जाता है; साथ ही इन्होने शिवगीता, श्रीधरीगीता, ब्रह्मसहिता, विष्णुपद और अनेक चातुरी लिखी है। जीवन के अतिम दिनो मे ये सन्यासी हो गये थे। चरोतर के जगजीवन ने ज्ञानगीता तथा अन्य ग्रथ लिखे। पाटण के श्रीदेव ने ४८० कड़ियो का हस्तामलक तथा कुछ पदो की रचना की। प्राग जी ने कक्का, महीना आदि लिखे है।

प्रीतमदास (१७२०–१७९८) जाति के बारोट थे और बावला मे उत्पन्न हुए थे। परपरा के अनुसार कहा जाता है कि ये जन्मान्ध थे, किन्तु इनके ग्रंथों से पता चलता है कि इन्होने वेदान्त और योग का अध्ययन किया था। इन्होने कक्का, महीना, तिथि,वार लिखा है। इनकी रची हुई ज्ञानगीता अखेगीता से मिलती-जुलती है और जैसे अखो ने छप्पय लिखे है, वैसे ही प्रीतमदास ने ६३८ साखियाँ लिखी है। उद्धव-गोपी-सवाद के रूप मे इन्होने 'सरसगीता' की भी रचना की है। सन् १७९१ मे जो अकाल पड़ा था, उस समय इन्होने 'प्रेमप्रकाश' नाम से ईश्वर की प्रार्थना लिखी थी। मुख्यतया इन्होंने ज्ञान, भक्ति, और वैराग्य के पद लिखे है, जो बहुत प्रसिद्ध हुए। इन्होने प्रेमलक्षणाभक्ति के भी कुछ पद रचे है, किन्तु इनका शृगार-वर्णन

उतना उन्मुक्त नही है, जितना नि नर्गमिह और दयाराम का, इनका शृगार वहुत सयत है। इनके कुछ ग्रथ अभी भी अप्रकाशित हैं। इनकी भाषा सरल है। ये १८वी शताब्दी के प्रमुख कवियो में से हैं।

मोठु (सन् १७३८ से १७९१) एक बहुत बडे शाक्त थे। इन्होने विन्ध्याटवी जाकर श्रीचक्र की यामलविद्या प्राप्त की। ये मोट ब्राह्मण जाति के शुक्ल थे। इन्हें सगीत का भी अच्छा ज्ञान था। इन्होने अपने शिष्या का एक रासमण्डल बना रखा था, जिसमें स्त्री-पुरुष दोनो थे। जनीबाई भी इनकी शिष्या थी। ये मोठु महाराज भी कहलाते थे। इनके लगभग ११ ग्रथ हैं—जैसे, रसिकवृत्तिविनोद, श्रीरस (१२ उल्लासो में), १०३ शिखरिणी छन्दो की श्रीलहरी, जो शकराचार्य की सौन्दर्यलहरी का समश्लोकी अनुवाद है, स्त्रीतत्त्व, ३२ उल्लासो का महान् ग्रथ रामरस आदि। ये शाक्त सिद्धान्तो के प्रकाण्ड पडित थे और इन्होने इस विषय पर सस्कृत तथा गुजराती दोनो में खूब लिखा है। इनकी रचनाओ में केवल काव्य-तत्त्व ही नही है, बल्कि उनमें रहस्य एव शाक्त मत के सिद्धान्त है। कहा जाता है कि इनकी शिष्या जनीबाई ने बाला के दर्शन किये थे और श्रीविद्या का मर्म जान लिया था। जनीबाई ने 'नवनायिका वर्णन' नामक एक काव्य की रचना भी की है।

धीरो—ये गोठडा के बारोट थे और अखा एव प्रीतमदास की भाति ज्ञानी कवि थे। किसी सिद्ध पुरुष की कृपा इन्हें प्राप्त थी। यद्यपि रणयज्ञ और अश्वमेध आदि कुछ आख्यान भी इन्होने लिखे हैं, किन्तु इनकी ख्याति इनके पदो के कारण है। इनके पद 'काफी' कहलाते हैं, जिनमें १० पक्तिया होती हैं। ऐसा कहा जाता है कि ये अपनी कविताएँ कागज के टुकडो पर लिखकर उन्हें बास के खोखले में बद कर देते थे और मही नदी में इस दृष्टि से बहा देते थे कि दूर-दूर के लोग इन्हें पकडकर खोलेंगे और कविताएँ पढेंगे। इनकी भाषा बडी मधुर, किन्तु साथ ही शक्तिशाली है। इनकी रचनाएँ हैं—स्वरूप, ज्ञानबक्को, प्रश्नोत्तरमालिका, आत्मज्ञान और ज्ञानबत्तीसी। 'स्वरूप', जिसमें अनेक विषयो की काफियाँ है, 'ज्ञानबत्तीसी' तथा 'आत्मज्ञान' के कारण धीरो की गणना उच्चकोटि के कवियो में होने लगी। ये केवलाद्वैत सिद्धान्त को मानने वाले वेदान्ती कवि थे। इनके ज्ञान बक्को और प्रश्नोत्तरमालिका में अनेक

दार्शनिक समस्याओ पर विचार हुआ है। इनके ग्रंथ वेदान्त की चर्चा करते हुए ज्ञान, वैराग्य, भक्ति का महत्त्व स्थापित करते हैं। इनकी रचनाएँ अपने स्वयं के अनुभव तथा गुरु की शिक्षा पर आवृत हैं। कभी-कभी इन्होंने रहस्यवाद की अवलवाणी भी लिखी है, साथ ही कुछ गरवियाँ और कुछ पद भी। इनके कुछ पद हिन्दी मे भी हैं। इनकी काफियाँ वहुत प्रसिद्ध हैं। प्रतिभा की दृष्टि से ये १८वी शताव्दी के प्रमुख कवि हैं।

निरांत—एक मत के अनुसार ये एक पाटीदार थे और दूसरे मत से एक राजपूत थे तथा देथाण के रहनेवाले थे। इनका समय १७७० से १८४६ ई० है। ऐसा कहा जाता है कि ये प्रति पूर्णमासी को अपने हाथ पर तुलसी उगाकर डाकोर जाया करते थे। इन्होने प्रेमलक्षणा भक्ति के कुछ पद लिखे हैं, किन्तु इनके अधिक पद ज्ञान और निर्गुण भक्ति पर हैं। इन्होने नाम-स्मरण को अधिक महत्त्व दिया है। इन्होने साखी, पद, घोल, छप्पय, काफी, वार, तिथि, महीना आदि विविध प्रकार की रचनाएँ की हैं। इनकी भाषा मे सरलता और प्रवाह है। इनके अनुयायी वहुत अधिक संख्या मे थे। निरात और वापू गायकवाड दोनों धीरो के समकालीन थे तथा अखो के वाद से चली आती हुई अद्वैत दर्शन की परम्परा को दोनों ने पुष्ट किया। निरात के शिष्यो ने उनकी गद्दी स्थापित की। इनके कुछ पद हिन्दी मे भी मिलते है। ये केवलाद्वैत दर्शन के ज्ञानमार्गी कवि हैं।

वापू साहेव—वापू साहेव गायकवाड (१७७७–१८४३ ई०) एक मराठा थे। पहले ये धीरो के शिष्य थे, पीछे निरांत के शिष्य वन गये। मराठा होते हुए भी इन्होंने अच्छी गुजराती मे अनेक पद, गरवियाँ, राजिया, काफियाँ और महीने आदि लिखे। इनके महीनों मे राधा-कृष्ण का वियोग वर्णित नही है, वरन् ब्रह्मानंद के सुख की झाँकी है। केवलाद्वैत दर्शन के अनुकूल वैराग्य और ज्ञान की चर्चा इनकी रचनाओं का मुख्य विषय है। ये धर्म-भेद को कोई महत्त्व नही देते थे। अखा की सी सवल शैली मे इन्होने भी धर्म की आड़ मे होनेवाले अज्ञान तथा पाखंड की कड़ी आलोचना की है। इनकी रचनाओं मे आनेवाले विवरण-युक्त वर्णन उनकी शक्ति वढ़ाने में सहायक सिद्ध हुए है।

भोजो—ये सौराष्ट्र के अन्तर्गत फत्तेहपुर के कणवी थे और इनका काल

१७८५ से १८५० ई० है। इनकी रचनाएँ हैं—मैलेयाख्यान, भक्तमाल, अनेक पद, काफिया, होरी और चाबखा एवं वार, तिथि, महीना भी। ये ज्ञानमार्गी कवि हैं और इन्होंने योग की पारिभाषिक शब्दावली में अपने अनुभव को अनेक पदों में व्यक्त किया है। षटचक्रभेद का वर्णन करते हुए इन्होंने ब्रह्मबोध नामक काव्य लिखा है। इनके पदों का विषय है, भगवत्-स्तुति एवं संसार की अनित्यता, गुरु-महिमा और आत्मानुभूति आदि। भोजा की विशिष्टता उनके चाबखा में दिखाई देती है, जिनमें उन्होंने सशक्त व्यंग्य के साथ संसार के अनाचारों एवं पाखंडों की आलोचना की है। ऐसा कहा जाता है कि १२ वर्षों तक ये केवल दुग्धाहार करते रहे और उसके बाद १२ वर्षों तक निराहार अजपाजप करते रहे।

अहमदाबाद के कृष्णराम मेवाडा ने 'कलि काल वर्णन' की रचना की है। जूनागढ़ के प्रधानमंत्री नागर रणछोडजी दीवान (१७६८ से १८४१ ई०) ने 'शिव रहस्य' का अनुवाद ब्रजभाषा में तथा 'शिवगीता' का गुजराती में किया। साथ ही ८३ कवचावाली 'चण्डीपाठ' को कई गरबों में रचा तथा फारसी में 'तवारीखे सोरठ और वण' लिखा। नरभेराम ने भक्ति-वैराग्य के कुछ पदों की रचना की। यहाँ रेवाशंकर, हरदास, मोतीराम, हरिभट्ट, सच्चिदानन्द स्वामी (मनोहर) तथा गिरधर का नाम भी लिया जा सकता है। गिरधर ने कई आख्यानों और रामायण की रचना की है।

स्वामीनारायण सम्प्रदाय और उसके कवि

सहजानंद स्वामी का जन्म अयोध्या से ७ मील दूर छपैया में चैत शुक्ल ९ सं० १८३७ को हुआ था। इन्हीं के बाद गुजरात में स्वामीनारायण अथवा उद्धव सम्प्रदाय का प्रचार हुआ। इनका पूर्वाश्रम का नाम हरिकृष्ण था। अपने माता-पिता के साथ ये केवल ११ साल ८ महीने रहे, फिर ७ वर्षों के लिए विभिन्न तीर्थों की यात्रा को निकल पडे। सं० १८५६ में वे मुक्तानंद स्वामी से मिले, जो रामानंद स्वामी के पट्ट शिष्य थे। संवत १८५७ में इन्होंने रामानंद स्वामी से दीक्षा ली, जिन्होंने इनसे उद्धव सम्प्रदाय का आचार्य होने को कहा। यद्यपि मुक्तानंद इनके ज्येष्ठ गुरुभाई थे, फिर भी उन्होंने सहजानंद

जी को नम्रतापूर्वक अपना गुरु माना। सहजानंद ने गुजरात, सौराष्ट्र और कच्छ मे २८ वर्ष ५ महीनो तक धर्म की शिक्षा दी और उद्धवसंप्रदाय का प्रचार किया। इन्होने देखा कि स्त्रियों के साथ लोग अच्छा व्यवहार नही करते, अनेक वर्गो मे अनैतिकता फैली है, वाममार्गी अनाचार कर रहे है, कुछ धर्माचार्य भी गुप्त रूप से भ्रष्टाचार करते है, लोग अमुविधा के कारण कन्याओ की हत्या कर देते है, कोली-वाघरे-भील आदि जाति के लोगों ने अपने हिंसक कर्मो से जनता मे आतक फैला रखा है। इन सभी लोगों मे सहजानंद ने अपने उपदेश द्वारा पवित्रता लाने की चेष्टा की।

इस संप्रदाय के मूल सस्थापक आत्मानंद कहे जाते है, जो शांकर सिद्धात को माननेवाले थे। किन्तु उनके वाद के रामानन्द एवं शिष्य सहजानंद ने रामानुज के श्री संप्रदाय का सिद्धान्त स्वीकार कर लिया। यद्यपि सहजानंद ने पचदेवो का पचायतन भी स्वीकार किया था, तथापि उपदेश और प्रचार केवल श्रीकृष्ण-भक्ति का ही किया। अपने संप्रदाय मे उन्होने सभी जाति के लोगो को सम्मिलित किया। इन्होने ही गुजराती भाषा मे प्रार्थनाएँ आरंभ कीं, और अपना वचनामृत गुजराती मे भी लिखा तथा अपने मुख्य उन साधुओं को, जो कविता करते थे, गुजराती मे रचना करने को कहा। इनके प्रभाव मे आकर अपराधी जातियों ने गैरकानूनी काम करना छोड़ दिया; समाज मे महिलाओ का आदर वढ़ा; कई जातियो ने मांसाहार छोड़ दिया; भूत, प्रेत, मंत्र, तंत्र, मूठ आदि पर विश्वास करनेवालों के मन से भय दूर हो गया और उन्होंने केवल नारायण की प्रार्थना पर भरोमा करना सीख लिया। विवाह तथा होली के उत्सव मे गाये जानेवाले अश्लील गीतो तथा फटाणों को वद किया। इन्होने धर्म, ज्ञान और वैराग्य से युक्त भक्ति का उपदेश किया।

इनकी कृतियाँ है—वचनामृत (स्वयं उन्ही के वचन), उनके पत्र और वेदरहस्य। वचनामृत उस समय की प्रचलित गुजराती गद्य मे है, जिसमे वेदान्त, धर्मशास्त्र, नीति, वैराग्य और भक्ति की चर्चा है और इन सवको व्यवहार मे लाने का ढग वताया गया है। दार्शनिक सिद्धात एव आत्मज्ञान की दृष्टि से इन्होंने रामानुज के सिद्धान्त को स्वीकार किया और उपासना के लिए पुष्टिमार्ग की पद्धति स्वीकार की, जिसकी स्थापना वल्लभाचार्य के पुत्र

विट्ठलेश गोस्वामी ने की थी। सहजानंद ने अपने शिष्यों को उपदेश देने तथा मार्ग-दर्शन के लिए अनेक पत्र लिखे हैं। इन्होंने वेदरहस्य भी लिखा है, जिसमें आत्मानुभूति तथा आत्मा-परमात्मा संबंध को जानने में सहायक मार्ग का वर्णन है। इन्होंने एक पुरुष मुमुक्षु के लिए स्त्री के २६ प्रकार के त्यागों का उपदेश किया है, इसी प्रकार एक स्त्री मुमुक्षु को पुरुष के २६ प्रकार के त्यागों की बात कही है।

इस संप्रदाय में कई ऐसे कवि हो गये हैं, जिन्होंने भजनों की रचना की है। इनमें से वासुदेवानंद और दीनानाथ शास्त्री-जैसे कुछ कवियों ने केवल संस्कृत में रचनाएँ की हैं और मुक्तानंद, ब्रह्मानंद, प्रेमानंद, निष्कुलानंद, देवानंद तथा मंजुकेशानन्द ने गुजराती में भजन लिखे हैं। कवि दलपतराम भी इसी संप्रदाय के थे। इनमें से किसी साधु ने कवि होने का दावा नहीं किया, सभी ने अपने ढंग से भक्ति-ज्ञान-वैराग्य के गीत गाये हैं। फिर भी इनमें कुछ द्वितीय श्रेणी के उत्तम कवि कहे जा सकते हैं।

मुक्तानंद—साधु होने के पहले इनका नाम मुकुन्ददास था। वस्तुतः ये रामानन्द स्वामी के पट्ट शिष्य थे। किन्तु जब रामानंद ने यह पद सहजानन्द स्वामी को दिया, तब मुक्तानंद ने प्रसन्नतापूर्वक सहजानंद का शिष्यत्व स्वीकार कर लिया। ये बड़े विनम्र थे और कभी-कभी सहजानंद स्वामी के सामने नाचते हुए पद गाते थे। इनकी रचनाएँ हैं—मुकुन्दबावनी, उद्धवगीता, और सतीगीता। इन्होंने भगवान् और भक्त के माहात्म्य का वर्णन किया है और राग तथा भक्तिरस का अच्छा चित्रण। विधवाओं को संयम एवं भक्तिपूर्ण जीवन बिताने का उपदेश इन्होंने दिया है। इनके रचे हुए पद बहुत हैं।

ब्रह्मानन्द स्वामी—पूर्वाश्रम में इनका नाम था लाडू बारोट। इनका जन्म आबू की तराई में खाण ग्राम में हुआ था। इस संप्रदाय के ये प्रमुख कवि थे। ब्रजभाषा में भी इनके अनेक ग्रंथ हैं, जैसे सुमति प्रकाश, वर्तमान विवेक, ब्रह्मविलास, उपदेश चिन्तामणि और छन्द रत्नावली। सहजानंद इन्हें सखा कहा करते थे। ऐसा कहा जाता है कि ब्रह्मानन्द ने यह शपथ ली थी कि प्रतिदिन इतने पदों की रचना किये बिना भोजन न करूँगा। कच्छ की पाठशाला में इन्होंने शिक्षा पायी थी और बारोट होने के कारण छन्दों पर इनका अच्छा

अधिकार था। इन्होंने गोपियों की प्रेम लक्षणा भक्ति तथा ज्ञान-वैराग्य के पद भी उतनी ही कुशलता से लिखे हैं। उनकी शैली आकर्षक तथा काव्य उच्च कोटि का है। निस्सन्देह इनमें काव्यत्व उत्तम कोटि का था और भाषा पर इनका अधिकार था। उनके पदों में कई स्थल ऐसे हैं, जो श्रेष्ठता की दृष्टि से भालण, प्रेमानन्द और दयाराम का स्मरण दिलाते हैं।

निष्कुलानंद (सन् १७६६–१८४८ ई०) का पूर्व नाम लाल जी सुथार था। ये कच्छ में सहजानंद स्वामी के साथ हो गये थे। इन्होंने सादी, किन्तु सशक्त भाषा में ३००० पद लिखे हैं, जिनमें भक्ति-वैराग्य का उपदेश है। उनके कुछ पद बहुत प्रसिद्ध हैं।

प्रेमानंद—प्रेमानद(१७७९–१८४५)का दूसरा नाम प्रेमसखी भी था। स्वामी नारायण सम्प्रदाय के सर्वश्रेष्ठ कवि माने जाते हैं। ये अपने को गोपी के रूप में मानते थे। ये बड़े अच्छे गायक थे और बहुत प्रेम-भक्ति के साथ इन्होंने श्रीकृष्ण तथा उनके अवतार सहजानन्द स्वामी के गीत गाये हैं। ज्ञान-वैराग्य-भक्ति संबंधी बहुत से पदों की रचना इन्होंने की है। इनके बारहमासी और विरह के पद सर्वोत्तम हैं। अच्छे सगीतज्ञ होने के कारण इन्होंने विभिन्न रागों में पदों की रचना की है और उन्हें स्वयं बडी मधुरता से गाया है। नरसिंह के बाद शुद्ध भक्ति के ये सर्वश्रेष्ठ कवि माने जाते हैं।

इस सम्प्रदाय के अन्य कवि हैं—मजुकेशानंद, देवानंद, योगानंद, भोमानंद और गुणातीतानंद, जिन्होंने अनेक पदों की रचना की है।

कबीर पन्थ

यह तो निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि कबीर कभी सौराष्ट्र पधारे थे, किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि उनके कुछ योग्य उत्तराधिकारी अवश्य यहाँ पहुँचे थे। कबीर के बाद सौराष्ट्र में दो पंथ हुए—एक रामकबीरिया और दूसरा सतकबीरिया। जो कबीर को राम का अवतार मानते थे, वे रामकबीरिया कहलाये। ये पीला अँगरखा और सिर पर टोप पहनते थे। १८वीं तथा १९वीं शताब्दी में कबीरपंथ के सन्त विशेषत. समाज के निम्न श्रेणी के लोगों को उपदेश दिया करते थे। कबीर के लगभग २०० वर्ष बाद भाणदास हुए,

जो जाति के लुहाणा थे और कनगिलोड में उत्पन्न हुए थे। इनका काल सन् १६९८ से १७५५ तक है। इनके गुरु आरो छट्ठो नाम के एक भरवाड थे। सौराष्ट्र में इन्होंने ही रामकबीरिया पथ आरंभ किया। इनके ८० शिष्यों का एक दल था, जो भाणफौज के नाम से प्रसिद्ध था। इनको सब लोग भाण-साहेब कहते थे। ये देहाती भाषा में—विशेषकर गावों में—लोगों को वैराग्य गुरु-महिमा, रहस्यवाद, प्रेमलक्षणाभक्ति आदि का उपदेश दिया करते थे। गोरखनाथ के नाथ-सम्प्रदायवाले हठयोग, ब्रह्मचर्य तथा स्त्री के पूर्ण त्याग का उपदेश करते थे। गोरखनाथ का भावुक भक्तों की भावुकता से बड़ी घृणा थी। किन्तु गुजरात के सन्त-काव्य में गोरखनाथ के योग, कबीर के रहस्यवाद, वैष्णवों की भक्ति तथा ब्रह्मानन्द की मस्ती का मिश्रण है। भाणसाहेब का जन्म यद्यपि गुजरात में हुआ था, तथापि उनके उपदेश का क्षेत्र सौराष्ट्र था। सन् १७५५ में उन्होंने जीवित समाधि ले ली। रवजी नाम का एक व्यापारी बहुत अधिक ब्याज लेता था तथा अनेक छल-कपट के काम करता था, भाण-साहेब ने उसे बदल दिया और अपना शिष्य बना लिया। इन रवजी की इतनी अधिक उन्नति हुई कि ये बहुत प्रसिद्ध हो गये और भाणसाहेब के योग्य शिष्य सिद्ध हुए। बाद में ये रविसाहेब कहलाये और इन्होंने उच्चकोटि के अनेक भजनों की रचना की।

खीम साहेब भाण साहेब के पुत्र थे और इन्होंने भी अनेक पद लिखे। मोरार साहेब रवि साहेब के शिष्य थे। ये थराद के राजकुमार थे। इन्होंने भक्ति-ज्ञान-वैराग्य के पदों की रचना की है और जीवित समाधि ली है। त्रीकम साहेब एक अछूत और खीम साहेब के शिष्य थे। इन्होंने भी अनेक पदों की रचना की और जीवित समाधि ली। होथी एक मुसलमान और मोरार-साहेब के शिष्य थे। सन्त जीवणदास जाति के चर्मकार और त्रीकम साहेब के शिष्य के शिष्य थे। ये दासी जीवण कहलाते थे और सखीभाव के अत्यन्त मधुर पदों की रचना इन्होंने की है। ये राधा के अवतार समझे जाते थे। इन कवियों की रचनाओं में कुछ विशेष पारिभाषिक शब्द मिलते हैं, जैसे सुन, सूरती-सूरतां, अलख, गगनमंडल आदि। योग की भाषा, कुण्डलिनी, षट्चक्रभेद, अनाहत-नाद आदि शब्दों का अधिकता से प्रयोग हुआ है। इन कवियों के बनाये हुए

भजन बहुत प्रसिद्ध हुए। इन्होंने स्त्री-पुरुषों का मार्ग-दर्शन किया। आजतक इनके भजन गाये जाते हैं। इनकी रचनाओं में गुरु का बहुत अधिक महत्त्व है और सद्गुरु पर विशेष जोर दिया गया है।

महिला कवियों में डूंगरपुर की एक नागर महिला गौरीबाई का स्थान प्रमुख है। इन्होंने वेदान्त, भागवत तथा योग का अध्ययन किया था और कुछ दिन वाराणसी में रही थी। वेदान्त, ज्ञान, वैराग्य आदि के लगभग ६५० पद इन्होंने लिखे हैं। ये प्रमुख ज्ञानमार्गी कवियित्री हैं। डभोई की एक विधवा ब्राह्मणी दिवालीबाई ने रामजन्म, रामविवाह, कुछ धोल, गरबियाँ, महीने और ब्रह्मज्ञान के पदों की रचना की है। इन्होंने तुलसी-रामायण का अध्ययन किया और विशेषकर रामभक्ति के गीत ही गाये हैं। वडनगर की एक नागर महिला कृष्णाबाई ने सीताविवाह तथा कई अन्य ग्रंथों की रचना की। उमरेठ की पुरीबाई ने सीतामंगल लिखा। वड़ोदा की राधाबाई ने श्रीकृष्ण तथा महाराष्ट्र के संतो की जीवनी पर रचनाएँ की हैं। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, मीठु महाराज की शिष्या जनीबाई ने नवनायिकावर्णन लिखा है। इसी प्रकार बणारसी बाई, नानीबाई, रतनबाई तथा अन्य कवयित्रियों ने भी रचनाएँ की हैं।

दयाराम

मध्यकालीन गुजराती साहित्य की समाप्ति दयाराम से होती है, जो परिमाण और प्रतिभा, दोनों दृष्टियों से प्रथम कोटि के कवि माने गये हैं। इनका जन्म भाद्रपद शुक्ल १२ सं० १८३३ को डभोई में हुआ था। ये साठोद्रा नागर ब्राह्मण थे और इनके पिता प्रभुराम भट चांदोद के रहने वाले थे। इनकी माता का नाम राजकोर था। इनके माता-पिता परम धार्मिक और कट्टर सनातनी थे। बचपन में ही दयाराम अनाथ हो गये और अपनी मौसी के द्वारा पाले-पोसे गये। इनका स्वरूप अत्यन्त आकर्षक था, गौर वर्ण के थे और बचपन में कुछ ऊधमी भी थे। माता-पिता की मृत्यु के बाद ये डभोई में मौसी के पास रहने लगे। इन्होंने भ्रमण बहुत किया और बहुत-से तीर्थस्थानों की यात्रा की। इन्होंने हिन्दी, व्रज और संस्कृत भाषा का अध्ययन किया। ऐसा कहा जाता

है कि आरंभिक काल में इन्होंने किसी स्त्री के साथ ऐसा दुर्व्यवहार किया कि गाव के लोग क्रुद्ध हो गये और इन्हें गाव छोडकर पडोस के गाव में जाना पडा। वहीं इनकी भेंट केशवानद सन्यासी से हुई और ये उनके शिष्य बन गये। कालान्तर में वैष्णव मत की ओर वे आकर्षित हुए। ये डाकोर के इच्छाराम भट्टजी के सपर्क में भी आये, जिन्होंने वल्लभाचार्य के अणुभाष्य पर प्रदीप भाष्य लिखा था। इस सपर्क के कारण इनके मन में कृष्ण की भक्ति उदय हुई और ये तीर्थयात्रा को निकल पडे। कुछ तीर्थों में तो ये कई बार गये, कई तीर्थों में ३ बार और नाथद्वार में ७ बार गये। तीर्थयात्रा-काल में ये अनेक पडितो और विद्वानो के सपर्क में आये तथा कई प्रान्तीय भाषाओं का ज्ञान प्राप्त किया। इसीलिए दयाराम की रचनाएँ कई भाषाओं में मिलती हैं। गुजराती के अतिरिक्त इन्होंने व्रज, मारवाडी, पजाबी, सिंधी, उर्दू और बिहारी में भी कविताएँ की हैं। ये वृन्दावन गये और आसपास के २८ वनो में भी पहुँचे। स० १८५८ म दयाराम ने 'मन मरजाद' और स० १८६१ में 'पाकी मरजाद' ली। ३२ वर्ष की अवस्था में स० १८६५ में इन्होंने अपनी अतिम तीर्थयात्रा पूरी की और फिर सदैव के लिए डभोई में आकर रम गये।

दयाराम बहुत ही उदार और निराले थे। वस्त्रों की ओर उनका ध्यान बराबर रहता था। यद्यपि उनकी जीविका बहुत थोडी थी, तथापि उनके मित्र तथा प्रशसक बराबर उनकी सहायता किया करते थे। ये पान बहुत खाते थे, लम्बे बाल रखते थे, इत्र और सुगधित तैल का उपयोग करते थे, धोती नागपुर की और साफा नदियाद का होता था। ये भाग का भी सेवन करते थे। मधुर स्वर में ये बहुत ही अच्छा गाते थे। जीवन भर ये अविवाहित रहे। इनके प्रशसक बहुत अधिक थे, विशेषकर औरतों में इनकी ख्याति अच्छी थी। एक विधवा सोनारिन, जिसका नाम रतनबाई था, इनके जीवन भर इनके साथ रही, और इनकी वृद्धावस्था में उसने अच्छी सेवा की। ये अभिमानी और क्रोधी भी थे। यद्यपि पुष्टि सप्रदाय में इन्होंने दीक्षा ली थी, तथापि जब इनके गोस्वामी ने इनके प्रति थोडा सा तिरस्कार प्रदर्शित किया, तो उसी समय इन्होंने दीक्षा में मिली तुलसी की माला तोडकर फेंक दी। फिर इन्होंने असयम के

लिए गोस्वामियो की निंदा पूर्ण स्वतत्रता से की। स० १८९८ मे ये बीमार पड़े और माघ कृष्ण ५ स० १९०९ मे इनका देहान्त हो गया।

मध्यकालीन गुजराती साहित्य के अंतिम कवि होने से ये अधिक निकट पड़ते है, इसीलिए अनेक विद्वानो ने इनके जीवन से सबधित अनेक तथ्य विस्तार मे सग्रहीत किये है। कई छोटी-मोटी बातो मे विद्वानो का मतभेद भी है। कुछ विद्वान्, विशेषकर पुष्टिमार्गीय वल्लभ सप्रदाय वाले, दयाराम को विनयी, कृष्णभक्त, निर्दोष और सादा चित्रित करते है। कुछ कहते है, वे शृगारी कवि थे, जिन्होने कृष्ण-भक्ति की आड़ मे मानव-प्रेम का ही गान किया है। किन्तु उनके विशाल साहित्य को देखते हुए—जिनमे उन्होने धार्मिक, दार्शनिक एव साम्प्रदायिक दृष्टिकोण से अपने मत के सिद्धान्तो को बडी कुशलता से व्यक्त किया है—यह विश्वास करना कठिन है कि वे ढोंगी थे और कृष्णभक्ति की आड़ मे वे कुछ दूसरा ही गा रहे थे।

दयाराम की कृतियां—इन्होने पुष्टिमार्ग के सिद्धान्तो का विवेचन करने के लिए धार्मिक और दार्शनिक ग्रथ लिखे, पौराणिक आख्यान लिखे, नरसिंह मेहता के जीवन पर काव्य रचे, षड्ऋतुवर्णन की रचना की,अनेक पद बनाये तथा इन सबके अतिरिक्त अद्वितीय गरबियाँ लिखी है।

इनके 'रसिकवल्लभ' मे शुद्धाद्वैत दर्शन की विवेचना है। जैसे 'अखे-गीता' मे अखो ने केवलाद्वैत दर्शन का प्रतिपादन किया है, उसी प्रकार दयाराम ने 'रसिक वल्लभ' मे अन्य मतो का खडन करके, विशेपत मायावाद पर आक्रमण करके, शुद्धाद्वैत को स्थापित करने की चेष्टा की है। वल्लभाचार्य के मत के अनुसार भगवत्प्राकट्य ही फल है, इस फल को प्राप्त करने का एकमात्र हेतु प्रेम है और इस प्रेम को पाने के लिए नवधा भक्ति की व्यवस्था बतायी गयी है। इस नवधा भक्ति मे सभी प्रकार के साधन अपनाये जा सकते है। दूसरे आचार्य केवल प्रस्थानत्रयी को ही मानते है, किन्तु वल्लभाचार्य उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र, गीता के अतिरिक्त भागवत पुराण को चतुर्थ प्रस्थान मानते है। उनके अनुसार ब्रह्म जगत् का कारण है। कारण ब्रह्म सत्य है, अत इसका कार्य जगत् भी सत्य ही होना चाहिए। इस तर्क से मायावाद—जिसके अनुसार जगत् मिथ्या है—स्वीकार नही किया जा सकता। किन्तु उन्होंने जगत्

अथवा प्रपंच में, जो सत्य है, और संसार में, जो अहंता-ममतात्मक और मिथ्या है, भेद माना है। दूसरे शब्दों में द्वैत=प्रपंच=जगत् सत्य है, किन्तु द्वैतज्ञान मिथ्या है। श्रीकृष्ण पूर्ण पुरुषोत्तम सच्चिदानंद हैं। जगत् में जो जड है, सत् अंश आविर्भूत है और चित् तथा आनंद अंश तिरोभूत हैं। जीव में सत् और चित् दोनों अंश आविर्भूत हैं, केवल आनंद अंश तिरोभूत है। अक्षर ब्रह्म में सत् और चित अंश आविर्भूत हैं तथा आनंद अंश एक सीमा में आविर्भूत है अर्थात् वह गणितानंद है। किन्तु पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण में सत्-चित-आनंद तीनों अंश पूर्ण प्रकट हैं, साथ ही आनंद अंश गणित नहीं, वरन् पूर्ण एवं प्रकट है। ब्रह्म सगुण और निर्गुण दोनों हैं। वह निर्गुण इसलिए है कि उसमें प्राकृत धर्म नहीं हैं और सगुण इसलिए है कि उसमें अलौकिक धर्म हैं। जीवों का विभाग पुष्टि, प्रवाह, और मर्यादा में हुआ है। प्रवाह जीव संसारी आत्माएँ हैं। उनका जन्म मरण होता है। मर्यादा जीव ज्ञान के आश्रित होते हैं तथा पुष्टि जीव कृष्ण-भक्ति पर आश्रित होते हैं। पुष्टि जीव ही सर्वोत्तम हैं। सगुणत्व एवं निर्गुणत्व परस्पर विरोधी होते हुए भी एक ही समय में ब्रह्म में निवास करते हैं, किन्तु अचिन्त्य शक्ति के कारण वह दूषण नहीं, भूषण बन गया है। शुद्धाद्वैत में 'शुद्ध' का अर्थ है माया-रहित। इस वाद को ब्रह्मवाद भी कहते हैं। पुष्टि का अर्थ है भगवान् का अनुग्रह। इसके लिए व्यक्ति का अपना सर्वस्व, यहाँ तक कि आत्मा भी, कृष्ण के प्रति समर्पण अथवा निवेदन करना पड़ता है।

दयाराम ने अपने 'रसिकवल्लभ' में शुद्धाद्वैत के सिद्धान्तों का विवेचन करते समय कुछ भूलें भी की हैं। उदाहरणस्वरूप, असमवायि कारण को उन्होंने उपादान कारण कहा है और निमित्त कारण को समवायिकारण के रूप में वर्णन किया है। जान् और संसार में उन्होंने भ्रम उत्पन्न कर दिया है। अक्षर ब्रह्म को उन्होंने केवल चिद्घन कहा है। इन दार्शनिक भूलों के होते हुए भी उनकी कविताओं में कुछ भक्ति-वर्णन बहुत अच्छे हैं।

'पुष्टिपथ रहस्य' में बताया गया है कि पुष्टिमार्ग में जीव को सेवा किस प्रकार करनी चाहिए। इसमें ९ मीठा हैं और गोपालदास के वल्लभाख्यान की भाँति उसमें भी वल्लभाचार्य तथा उनके पुत्र विट्ठलेश का वर्णन है।

'ब्राह्मण भक्त विवाद' मे दो ब्राह्मणो का सवाद इस विषय पर है कि वैष्णव और ब्राह्मण मे कौन श्रेष्ठ है। निर्णय भागवत ७–९–१० के अनुसार ही है कि एक कृष्ण-विमुख विप्र की अपेक्षा एक चाण्डाल, जो भक्त है, कहीं अधिक अच्छा है। 'भगवद्गीता माहात्म्य' में गीता का माहात्म्य वर्णित है, जो पद्म-पुराण के अनुसार है। 'भक्तिपोषण' मे भक्ति तथा उसके स्वरूप की चर्चा है।

'अजामिलाख्यान' मे ९ कडवो के द्वारा भगवन्नाम की महिमा बतायी गयी है और यह आख्यान-शैली मे है। 'रुक्मिणी विवाह' भी एक आख्यान है, जिसका आधार भागवत १०–५३ है। 'सत्यभामा-विवाह' भागवत १०–५६ पर आधृत है और इसमे ८ कडवा है। इसमे नागरो के वैवाहिक उत्सवो का वर्णन अत्यन्त रोचक है। 'दशम स्कंधलीलानुक्रमणिका' मे १३१ पद है, जिनमे भागवत का अति सक्षिप्त रूप गुजराती मे आ गया है। 'काल-ज्ञान सारांश' मे कवि ने ८२ पदो के द्वारा बताया है कि मृत्यु किस प्रकार विभिन्न ढगो से मनुष्य के पास आती है। 'कुवरबाई नूं मामेरु' में नरसिंह मेहता के जीवन मे घटी मामेरुं घटना का वर्णन है। 'षड् ऋतु वर्णन' में ६ ऋतुओं मे श्रीकृष्ण-लीला वर्णित है। भाषा अलकारमयी है तथा नवीन वर्णनो से पूर्ण है। इसमे अक्षर मेल वृत्त का भी उपयोग हुआ है। 'प्रबोध-बावनी' कहावतो का सग्रह है और दयाराम ने इसमे ५२ कुडलियाँ भी लिखी है। उनकी अन्य रचनाओं—तिथि, बारहमासी, पारणुं, कक्को, मनप्रबोध आदि—मे भक्ति तथा उपदेश है।

कवि की कई कृतियाँ हिन्दी और व्रज मे भी है। 'रसिक रंजन' हिन्दी का ग्रथ है, जिसमे १७ अध्याय है और शुद्धाद्वैत के सिद्धान्तों का वर्णन है; इसी प्रकार 'सिद्धान्त-सार' मे ४१ पद है। 'श्रीकृष्ण स्तवनामृत', 'श्रीभक्ति विधान', 'पुष्टिपथ-सार-मणिदास' आदि व्रज की रचनाएँ है। सतसैया भी व्रजभाषा मे ही है और इसमे ७३१ दोहे है। यह बिहारी सतसई के ढंग की है। कवि ने स्वय इस पर टीका लिखी है। ऐसा कहा जाता है कि अली उदेपुर दरबार मे बिहारी सतसई की अपेक्षा दयाराम की सतसई अधिक पसद की गयी, क्योंकि दयाराम की सतसई मे अलौकिक शृंगार है और बिहारी सतसई मे लौकिक। इन्होंने 'कृष्णनाम-माहात्म्य-मंजरी', 'श्रीकृष्णस्तवन चन्द्रिका', 'नाम प्रभाव

बत्रीसी' आदि ग्रंथों की भी रचना की है, जिनमें भक्ति की महिमा गायी गयी है। इनकी एक रचना 'भक्तिवेल' है तथा 'चौरासी वैष्णवना धोल' में वैष्णवों के जीवन-चरित है।

वल्लभ सम्प्रदाय के सिद्धांतों का वर्णन करने के लिए इन्होंने जो धार्मिक और दार्शनिक रचनाएँ की हैं, उनमें कहीं-कहीं बड़ी कटु भाषा का भी प्रयोग किया है। किन्तु 'रसिकवल्लभ' गुजराती छन्दों में वल्लभ सम्प्रदाय का उतना ही महान् ग्रन्थ है, जितना कि गुजराती में केवलाद्वैत दर्शन का ग्रंथ अखो का 'अखेगीता'। अपने कुछ आख्यानों में दयाराम उतने सफल नहीं हुए, जितने कि प्रेमानंद। राधा एवं गोपियों की प्रेमलक्षणा भक्ति का वर्णन करने में निस्सन्देह दयाराम सर्वश्रेष्ठ हैं। 'प्रेमरसगीता' भागवत के भ्रमरगीत का अनुकरण है। इन्होंने सारावलि, बाललीला, कमललीला, रासलीला, रूपलीला, श्रीकृष्ण जन्म खंड, मुरली लीला, राधा जीनो विवाह खेल, राधी जीनो वखाण आदि ग्रन्थों की भी रचना की है।

दयाराम ने कई भाषाओं में सब मिलाकर ७५ ग्रंथ तथा कई हजार पदों की रचना की है। उन्होंने कुछ गद्य-साहित्य भी लिखा है, किन्तु गुजराती साहित्य में काव्य-कला की दृष्टि से उनका सर्वोत्तम योग उनकी गरबियाँ हैं। इन गरबियों का काव्य गीतात्मक है और नृत्य-गान के उद्देश्य से लिखा गया है, इनमें स्वर की मधुरता, सुंदरता और ताल है। कृष्णलीला संबंधी इनकी गरबियाँ सर्वश्रेष्ठ हैं, जिनमें अधिकांशतः कृष्ण के प्रति गोपियों के वचन हैं। इनमें शब्द चयन बहुत अच्छा हुआ है तथा स्वर और शब्द का सामंजस्य भी सुन्दर हुआ है। दयाराम के विशाल साहित्य में यद्यपि गरबियों का भाग अपेक्षाकृत थोड़ा है, तथापि गुजराती साहित्य का यह सर्वोत्तम अंश है। ये गरबियाँ विभिन्न रागों और ढालों में गायी जा सकती हैं। कृष्ण के लिए तड़पने वाली गोपियों के अनेक भावों का वर्णन इनमें किया गया है। उनकी कृष्णभक्ति, कृष्ण को उनका उपालंभ, कृष्ण की वंशी को उनका अपनी वैरिन समझना, उनकी विरहानुभूति, कृष्ण-मिलन पर उनका हर्ष—इन सब भावों का वर्णन बड़े मधुर गीतों में कोमलता और सूक्ष्मता से हुआ है।

गरबियों के कुछ विभिन्न भाव देखिए—

१. उभा रहो तो कहुं वातडी बिहारी लाल।
(हे बिहारी लाल! थोड़ी देर खड़े रहो, तो मैं अपनी बात कहूँ।)

२. आठ कुवाने नव बावड़ी रे लोल। सोलमें पनिहारी हाग, म्हारा व्हाला जी हो। हावां नहिं जाउं मही वेचवा रे लोल।
(वहाँ ८ कुएँ हैं, ९ बावड़ियाँ हैं और १६ वीं पनिहारिन एक पंक्ति में खड़ी हैं। अब मैं दही बेचने नहीं जाऊँगी।)

३ एक गोपी कृष्ण से कुछ दूर ही खड़े रहने को कहती है, क्योंकि उसे भय है कि अगर काले कृष्ण से छू जायगी, तो उसका रंग भी कुछ काला हो जायगा। इसके उत्तर में कृष्ण कहते हैं कि प्रथम स्पर्श में कृष्ण स्वयं गोरे हो जायेंगे और द्वितीय स्पर्श के बाद गोपी और भी गोरी हो जायगी। इस प्रकार स्पर्श से बचने के स्थान पर वे दो-दो बार का स्पर्श चाहते हैं।

४. श्याम रंग समीपे न जावु मारे आज थकी।
(अब से मैं किसी काली वस्तु के समीप नहीं जाऊँगी।)

५. एक सास अपनी पुत्र-वधू को समझाती हुई कहती है कि सदाचरण कर और कृष्ण का साथ छोड़ दे। गोपी इस लांछन का उत्तर देती हुई कृष्ण का बचाव करती है।

६. गरबे रमवाने गोरी नीसर्यां रे लोल। राधिका रंगीली जेनु नाम अभिराम व्रजवासणी रे लोल। ताली देता वागे झांझर झूमखां रे लोल।
(गोरी-रंगीली व्रजवासिनी, जिसका नाम राधिका है, गरबा खेलने के लिए चली। जब वह हाथों से तालियाँ देती है, तो हाथ के झांझर बजते हैं।)

७. ओ वांसलडी! वेरण थई लागी रे व्रजनी नारने।
(ओ बाँसुरी! व्रज की नारियाँ तुझे अपनी वैरिन समझती हैं।)
ओ व्रजनारी! श्या माटे तुं अमने आल चडावे।
(ओ व्रजनारी! तू व्यर्थ में मुझे दोष क्यों देती है?)

८. उद्धव जी! माधव ने कहेजो एटलुं।
(हे उद्धवजी! माधव से इतना कहना।)

९. वाँकारे वाँका गुरे हींडोरे आवड़ु गुरे गुमान रे।

(तुने इतना गुमान क्यो है और अवडवर क्या चलता है ?)

१० कृष्ण ने एक गोपी को दान के लिए रोक रखा है। गोपी छोड़ने की प्रार्थना करती है, कृष्ण उत्तर देते हैं।

११ एक गोपी मधुकर द्वारा सदेश भेजती है, जिसमें तिथिक्रम से उसकी विरह-व्यथा का वर्णन है। इसी प्रकार बारहमासी में राधा के विरह का वर्णन है।

१२ वागे वृंदावन मा वासली रे, उभो उभो वगाडे कहान।
(वृन्दावन में कान्हा बाँसुरी बजा रहा है।) इसमें रासलीला का बडा सुन्दर वर्णन है।

१३ इसी प्रकार कृष्ण की बाललीला तथा जसोदा से गोपियो की शिकायत का वर्णन है।

१४ कामण दीसे छे अलबेला तारी आख मा रे, भालु भाख मा रे।
(जो अलबेले ! तेरी आँखो में वशीभूत करनेवाला जादू है, तू भोला बनकर चाल मत कर।)

१५ राधा कृष्ण पर यह दोष लगाती है कि तुम दूसरी गोपी के साथ खेल रहे थे। ईर्ष्यावश राधा क्रोधित होती है और कृष्ण उन्हें मनाने का प्रयत्न करते हैं।

१६ लोचन मननो रे झगडो, लोचन मनना।
(नेत्र और मन के बीच झगड़ा हुआ कि नन्दकुँवर को पहले किसने देखा।)

१७ गोपी की प्रेम-समाधि का वर्णन सुन्दर है।

१८ कृष्ण को प्राप्त करने के लिए गोपियो द्वारा कात्यायनी व्रत का पालन।

१९ माता जसोदा झुलावे पुत्रने पारणे।
(माँ यशोदा पुत्र को पालना झुला रही है।)
यह हालरडा कविता बहुत प्रसिद्ध है और जन्माष्टमी के दिन सभी जगह निश्चित रूप से गायी जाती है।

२० एक गोपी दूसरी से पूछती है—हे प्यारी सखी ! कल रात तू कहाँ क्रीडा करती थी ! तेरे पसीना क्यो आ रहा है और तेरी भौहें भीगी क्यो है ?

२१. कानुडो कामणगारो रे ।

(कृष्ण जादूगर है ।)

२२ जे कोई प्रेम अंश अवतरे, प्रेमरस तेना उर मां ठरे ।

(प्रेम रस केवल उसी के हृदय मे रहता है, जो प्रभु के प्रेम अंग से उत्पन्न होता है । सिंहिनी का दूध केवल सिंह के बच्चे ही पी सकते है और यह केवल सोने के पात्र में ही ठहर सकता है, यदि किसी दूसरी धातु के पात्र में रखा जायगा, तो वह वर्तन फट जायगा ।)

२३. राकमारी राधा ने दगो एणे दीधोरे,
फांदा मां नाखी रे एणे फासीरे दीधोरे ।

(राधा की माँ शिकायत करती है कि मेरी बेटी बेचारी राधा को धोखा दिया गया । उसे फंदे मे फँसाकर फाँसी दे दी ।)

२४. मारुं ढणकतुं ढोर ढणके छे सहुनग्र मां,
सीम खेत रखलुं काई न मूके ।

(दयाराम कहते है कि उनका मन एक स्वच्छन्द पशु के समान सारे नगर मे इधर-उधर घूमता फिरता है। वे इसे अधीन करने के लिए कृष्ण को सौंपते है ।)

२५. व्रज वहालुरे वैकुंठ नहि आवुं
मने न गमे चतुर्भुज थावु,
त्यां श्री नन्दकुवर क्यां थी लावु ?

(व्रज मुझे बहुत प्रिय है, मैं वैकुण्ठ नही जाऊँगा । मुझे चतुर्भुज होने की अभिलाषा नहीं है । वैकुण्ठ मे मैं नन्दकुमार को कैसे लाऊँगा ?)

२६. मारे अन्त समे अलबेला मुजने मूकशो मा ।

(ओ अलबेला ! अन्त समय मे मुझे त्याग मत देना ।)

कभी-कभी दयाराम का शृगार-वर्णन अतिशयता की ओर पहुँच गया है, जिसके लिए उनकी आलोचना भी हुई है । डाक्टर क० मा० मुन्शी की दृष्टि में दयाराम एक शृगारी कवि थे, जिन्होंने कृष्णभक्ति की आड मे मानव-प्रेम का वर्णन किया है । दयाराम का शृगार गीतगोविंद का अनुकरण-जैसा प्रतीत होता है । इन्होंने सखीभाव अथवा गोपीभाव की भक्ति स्वीकार की थी ।

पुत्र होने के कारण इन्होंने साहस और ऊर्जा का अभाव प्रदर्शित किया है, तथा मीरा की भाँति इन्होंने शृंगार की अपेक्षा गुप्त शृंगार वर्णित किया है। प्रस्तुत विद्वानों ने विभिन्न दृष्टियों से इनकी प्रशंसा की है।

दयाराम कहते हैं—"जब कामदेव स्वयं श्रीकृष्ण के वश में हो गया था, तो कृष्ण काम-वश कैसे हो सकते हैं?" आगे इन्होंने कहा है—"कृष्ण की क्रीड़ा का गान करने से हृदय का काम रोग नष्ट हो जाता है।" दयाराम की इन पंक्तियों का आधार भागवत १०-२२-२६ है, यथा —

"न मय्यावेशितधियां कामः कामाय कल्पते।
भर्जिता क्वथिता धाना प्रायो बीजाय नेष्यते॥"

(जिनका मन मुझमें लगा है उनके लिए काम काम नहीं रह जाता, भूना हुआ या उबाला हुआ अन्न में बीज बनने की शक्ति नहीं रहती और वह पुनः उग नहीं सकता।) भागवत १०-३३-४० में कहा है —

"विक्रीडितं व्रजवधूभिरिदं च विष्णोः श्रद्धान्वितोऽनुशृणुयादथ वर्णयेद्यः।
भक्तिं परां भगवति प्रतिलभ्य कामं हृद्रोगमाश्वपहिनोत्यचिरेण धीरः॥"

अर्थात् जो व्यक्ति रास के साथ कृष्ण और गोपियों की क्रीड़ा को श्रवण करता है उसे कृष्ण की पराभक्ति प्राप्त होती है और धीर होकर शीघ्र ही वह अपने हृदय से काम रोग दूर कर देता है। दयाराम द्वारा व्रज और गुजराती भाषा में रचे विशाल साहित्य का दर्शन हुआ, जिसमें स्तुति, भक्ति, पुष्टि मार्ग के सिद्धान्तों का रहस्य और शास्त्रार्थादि प्राप्त हैं। यद्यपि आपाततः पुष्टि शृंगार की रचना कम है ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने शृंगार-वर्णन में अपने पूर्ववर्ती कवियों का ही अनुकरण किया है, जिन्होंने मर्यादा से युक्त प्रेमलक्षणा भक्ति का वर्णन किया था, साथ ही भागवत के उपर्युक्त उद्धरणों को ध्यान में रखते हुए दयाराम में शास्त्रानुकूल गुप्त शृंगार वर्णन करने में कोई दोष नहीं लगता। उन पर कामुकता का भी आरोपण किया जाता है।

कुछ ने दयाराम को नरसिंह मेहता का अवतार माना है। दोनों वैष्णव थे। दयाराम की गरबियाँ नरसिंह का स्मरण कराती हैं, विशेषकर 'रास सहस्रपदी' और 'चातुरी' रचनाएं। किन्तु नरसिंह का संबंध किसी सम्प्रदाय विशेष से नहीं था, जब कि दयाराम पुष्टि मार्ग के कट्टर अनुयायी

थे, साथ ही अन्य मतो के प्रति अनुदार। फिर भी दयाराम की गरवियाँ गुजरात की महिलाओ द्वारा स्थायी रूप से गायी गयी है, जिसके कारण वे गुजरात के प्रथम कोटि के गीतकार माने गये है। वर्तमान युग के सर्वश्रेष्ठ कवि नानालाल ने दयाराम से ही प्रेरणा प्राप्त की है, विशेषतः रास-रचना मे। नानालाल ने कहा है कि दयाराम ने गुजरात के साहित्य कुंज मे अमर वसी वजायी है।

सन् १८५२ ई० मे दयाराम के देहान्त से गुजराती साहित्य का मध्ययुग समाप्त होता है। ८०० वर्षो के इस युग मे मुख्यतः भक्ति, ज्ञान और वैराग्य का साहित्य हमें मिलता है। आख्यानो का प्रधान विषय था महाकाव्यो तथा पुराणो की धर्मकथाएँ, जैनो, वैष्णवों और केवलाद्वैत के ज्ञानमार्गी कवियो के उपदेश, शुद्धाद्वैत, उद्धव सम्प्रदाय, शाक्त मत तथा कवीर सम्प्रदाय आदि। इसी युग मे पद्यवार्ताओ की भी रचना हम पाते है।

१८वी तथा १९वी शताब्दी मे जैन साधुओ ने उसी परपरागत साहित्य की रचना वड़े पैमाने पर जारी रखी; जैसे रास, धर्मकथाएँ, वालाववोध, स्तवन, सज्झाय आदि। इस युग मे उदयरत्न, नेमिविजय, देवचन्द्र, भावप्रभसूरि, जिन-विजय, गंगविजय, हसरत्न, ज्ञानसागर, भानुविजय, अनोपविजय और वीर-विजय का नाम उल्लेखनीय है। जैन-साहित्य की धारा वरावर अजैन-साहित्य की धारा के साथ-साथ वही है। किन्तु वर्तमान साहित्य के उदय होने के वाद जैन-अजैन दोनों साहित्य-धाराएँ पीछे छूट जाती है और सन् १८५० से हम नवीन युग मे प्रवेश करते है।

मध्ययुगीन साहित्य के इस पूरे काल मे लोकसाहित्य भी वहुत वड़े परिमाण मे रचा गया, जो पुस्तकों के रूप मे नही था, वरन् अपढ़ देहातियो द्वारा कंठस्थ करके गाया जाता था। चारण एक विशिष्ट भाषा डिंगल मे, राजपूत राज-कुमारो तथा वीरो की वीरता अत्यन्त मधुर, निर्भय और स्पष्ट भाषा मे गाया करते थे। हेमचन्द्र और मेरुतुग के समय से दोहे लिखे जाते है और यह दोहा छद विशेषत सौराष्ट्र तथा राजस्थान मे वहुत अधिक प्रसिद्ध हुआ है। ये वहुत छोटे मुक्तक होते है, जिनमे सुभाषित रहते है। दोहे मुक्तक तथा दोहा-माला—दोनो रूपों मे लिखे जाते थे। दोहा माला लवी रचनाएँ होती थी, जिनमे वीरो, राजपूत राजकुमारों, काठियों यहाँ तक कि विद्रोहियों की भी प्रेम

तथा वीरतापूर्ण कहानियाँ कही जाती थी। इसी प्रकार नाटों, रावळों तथा दूसरी जाति के लोगों ने भी दोहा, वार्ताओं और बिरदावलिया की रचना की है। किसानो के अपने भिन्न गीत थे। नाथ बावा रावण हत्था बाजे के साथ गाते हैं। विविध सम्प्रदायो के सन्तो के अपने विशेष भजन हैं, चारण लोग शक्तिशाली वीरतापूर्ण गीत गाते हैं, महिलाएँ व्रत, उत्सव, विवाह, सीमन्त, यज्ञोपवीत, मामेरा आदि के गीत गाती हैं। वे हालरडा और राजिया भी गाती हैं। कन्याएँ त्यौहारो पर गाए गाती हैं। इसी भाँति नवरात्र तथा अन्य अवसरो पर राम, गरबा, रामडा, हीच, हमची आदि गीत गाये जाते हैं। घर में औरतें काम की थकान या ऊब को हल्का करने के लिए दूसरे प्रकार के गीत गाती हैं। इसी प्रकार माझी, भील, दूबला, मुसलमान तथा पारसी लोगो के अपने गीत हैं। काम की अरोचकता मिटाने के लिए मजदूरिनियो के अपने गीत है। इन लोकगीतो ने बहुत-से वर्तमान कवियो को प्रेरणा दी है। उनके छन्दो और ढालो का अनुकरण किया गया है और अनेक आधुनिक कवियो की रचनाओं में लोकगीतों की शब्दावली पायी जाती है।

इस प्रकार मध्यकालीन गुजरात ने कष्ट, परिश्रम, कठिनाई एव विदेशी शासन के अतर्गत रहकर भी अपनी चेतना बनाये रखने की चेष्टा की तथा उपर्युक्त विभिन्न साहित्य-स्वरूपो के द्वारा अपने सस्कार, धर्म, भक्ति और श्रद्धा की रक्षा की।

भाग २

उत्तरकालीन

गुजराती साहित्य का इतिहास

अध्याय १०

परिवर्तन-काल

मध्ययुगीन गुजराती साहित्य के अंतिम प्रमुख प्रतिनिधि दयाराम थे। ९ फरवरी सन् १८५२ ई० में उनकी मृत्यु हुई और तभी मध्ययुगीन गुजराती साहित्य का काल समाप्त होता है। हम सरलतापूर्वक कह सकते हैं कि उनकी मृत्यु के बाद आधुनिक काल प्रारंभ हुआ।

जिन मुख्य कारणों से मध्ययुग का परिवर्तन आधुनिक काल में हुआ, वे हैं (१) पश्चिमी ससार तथा पाश्चात्य शिक्षा से सम्पर्क स्थापित होना, (२) नवीन साहित्य, परंपरा एवं जीवन शैली से परिचित होना। ईस्ट इंडिया कंपनी ने अपना शासन-केन्द्र सूरत से उठाकर बंबई में स्थापित किया। परिणामस्वरूप परिवर्तन एवं नवीन सुधारों में बंबई का ही प्रधान हाथ रहा और उसने अनेक क्षेत्रों में प्रयत्न आरंभ किया। सन् १७५२ ई० में ईस्ट इंडिया कंपनी के डाइरेक्टरों ने यह सुझाव रखा कि निःशुल्क शिक्षा-शालाएँ खोली जायँ। उसके अनुसार बंबई तथा अन्य स्थानों में ऐसी शालाओं की स्थापना हुई और गुजराती एवं मराठी भाषा की पुस्तकें प्रकाशित की गयी थीं। सन् १८०४ में डा० ड्रमंड ने गुजराती का एक व्याकरण प्रकाशित किया। सन् १८२५ में नेटिव एजुकेशन सोसाइटी बनी। सन् १८२६ में कई स्थानों पर स्कूल खुले। सन् १८५७-५८ में श्री थियोडोर होप की अध्यक्षता में 'द होप वाचनमाला' नाम से गुजराती पाठ्य-पुस्तकों की माला तैयार हुई। अनुभवी गुजराती विद्वानों द्वारा ये पुस्तकें तैयार की गयी थीं, जो शिक्षा-क्षेत्र में ५० वर्षों से भी अधिक समय तक रहीं।

अंग्रेजी भाषा की शिक्षा देने के प्रबंध किये गये। सन् १८२७ में बंबई में एल्फिन्स्टन इन्स्टीच्यूट की स्थापना हुई थी, उसीको सन् १८५६ में एक स्कूल और कालेज में बदल दिया गया। पूना में डेक्कन कालेज और अहमदा-

बाद मे गुजरात कालेज भी खुले। बबई विश्वविद्यालय की स्थापना सन् १८५७ में हुई। गुजरात के उन प्रमुख शिक्षा-शास्त्रियों की शिक्षा इन्हीं सस्थाओ मे हुई थी, जो आगे चलकर नेता बने और सार्वजनिक कार्यों मे आगे रहे। आधुनिक शैली से अनेक विषयो पर पुस्तके लिखी जाने लगी। नव जागरण लाने मे सूरत, बंबई और अहमदाबाद ने प्रमुख प्रयत्न किया।

दुर्गाराम मछाराम मेहताजी (सन् १८०९–१८७८) यद्यपि कट्टर नागर ब्राह्मण परिवार के थे, किन्तु अन्य चार व्यक्तियो के साथ मिलकर सुधारो के लिए उन्होंने बडा सघर्ष किया। सयोग मे उन चार व्यक्तियों का नाम भी 'द' से आरंभ होता था। दुर्गाराम ने अपनी रचनाओ और अपने भाषणों मे जादू, टोना, भूत आदि अंधविश्वासों की तथा अन्य प्रचलित रीतियो और प्रयोगों की कड़ी आलोचना की। उन्होंने ही समाज एवं परिवार की गभीर समस्याओ पर विचार-विमर्श करने के लिए सूरत मे मानव-धर्म-सभा की स्थापना की। सरकारी विरोध होने पर भी वे बबई मे एक लीथो-ग्राफ प्रेस सूरत ले आये। वे एक गुजराती स्कूल मे अध्यापक थे। वे विचार-शील व्यक्ति थे। यद्यपि कट्टरपथियों द्वारा उनका काफी विरोध किया जाता था, फिर भी अपने विचारो को वे बडी निर्भीकता और स्पष्टता के साथ व्यक्त करते थे। वे मानव-धर्म-सभा की बैठकों की कार्यवाही बड़ी सतर्कता मे लिखा करते थे। आग के प्रकोप से उन लेखो का कुछ ही अंश बच पाया है। उसी अश के आधार पर महीपतराम नीलकंठ ने दुर्गाराम की जीवनी सन् १८९३ मे प्रकाशित की थी।

श्री फार्बस एक अंग्रेज थे, जो गुजरात के लोगो तथा गुजराती साहित्य से बडी सहानुभूति रखते थे। उनके प्रयत्न से सन् १८४८ मे अहमदाबाद मे गुजरात-वर्नाकुलर-सोसाइटी की स्थापना हुई। उन्होने भोलानाथ साराभाई के द्वारा कवि दलपतराम से सम्पर्क स्थापित किया। श्री फार्बस को इतिहास, पुरातत्त्व तथा पाडुलिपियो के संग्रह का बहुत बड़ा शौक था। उन्होने "रासमाला" नाम की एक पुस्तक लिखी थी, जिसमे उन्होंने पूर्व एवं मध्यकालीन गुजरात के इतिहास तथा कहानियों का वर्णन किया है। वे शिक्षा-प्रेमी थे और उन्ही के कारण अनेक पांडुलिपियो का सग्रह सभव हो

सका। वे कवियों और विद्वानों को भी बहुत प्रोत्साहन देते थे। सन् १८५४ में गुजरात वर्नाकुलर सोसाइटी का साप्ताहिक पत्र 'बुद्धि-प्रकाश' प्रकाशित हुआ। जब फार्बस की बदली सूरत में हो गयी, तब उन्होंने वहाँ भी उसी तरह की एक सोसाइटी बनायी, जिसका पत्र था 'सूरत-समाचार'। उनके अवकाश ग्रहण करने पर उनके मित्रों ने बंबई में 'फार्बस सभा' की स्थापना की।

बंबई में श्री बार्नेस ने १८२० में 'द बाबे एजुकेशन सोसाइटी' की स्थापना की, जिसने बंबई में चार, सूरत में एक और भड़ोच में एक स्कूल खोला। सन् १९२५ में बिशप कार के निर्देशन में गुजरात में 'दि नेटिव एजुकेशन सोसाइटी' आरंभ हुई, जिसने रणछोड़ भाई गिरधर भाई (१८०३–१८७३) की सेवाओं को हस्तगत किया। उन्होंने अत्यन्त परिश्रम के साथ गुजराती की सर्वप्रथम पाठ्य पुस्तकें तैयार कीं, बंबई में अध्यापकों को शिक्षित करने का काम उन्हें सौंपा गया, अगले ३० वर्षों तक शिक्षा विषयक कार्यों के मुख्य तत्त्व रहे और इस प्रकार गुजरात में आधुनिक शिक्षा के स्थापक बने।

पूना के पास किरकी में मराठों के साथ हुए युद्ध के बाद ईस्ट इंडिया कंपनी भारत की सर्वश्रेष्ठ शक्ति सिद्ध हो चुकी थी। अतः सन् १८१८ के पश्चात् पश्चिम भारत में अंग्रेजों की प्रधानता हो गई। सन् १८१९ में श्री एलफिन्स्टन बंबई के गवर्नर हुए, जो १८२७ तक रहे। हिन्दू तथा पारसी जाति के नेताओं ने एलफिन्स्टन के अवकाश ग्रहण करने पर एक बहुत बड़ी निधि एकत्र की, जिसके अधिकांश धन से बंबई का एलफिन्स्टन कालेज खुला। स्काटलैंड के गिरजाघर के श्री जान विल्सन ने बंबई में विल्सन कालेज की स्थापना सन् १८३५ में की। उनके उपदेशों के प्रभाव से बहुत से हिन्दू तथा पारसी युवकों ने ईसाई धर्म स्वीकार कर लिया। हिन्दू एवं पारसी लोगों में प्रगतिशील आंदोलन भी आरंभ हुए। ब्रह्मसमाज के नेता श्री केशवचन्द्र सेन सन् १८६४ तथा १८६७ में बंबई आये और एक प्रार्थना-समाज आरंभ किया। इस प्रार्थना-समाज के प्रमुख थे डा० आत्माराम पांडुरंग (१८२३ से १८९८), जो डा० विल्सन के मित्र थे। इस समाज के उद्देश्य थे आस्तिक भावयुक्त भगवत् पूजा तथा समाज-सुधार। केशवचन्द्र सेन सन् १८६९ में

फिर वंबई आये और उस प्रार्थना-समाज को शक्ति दी। वंबई के गिरगाम मुहल्ले में इस समाज का एक भवन वन गया और सर रामकृष्ण गोपाल भंडारकर तथा न्यायाधीश एम० जी० रानडे इसके सदस्य वने। श्री दयानद सरस्वती सन् १८७४ मे वंबई आये; किन्तु उनके वेद-सम्बन्धी विचार प्रार्थना-समाज के अनुकूल नही थे, अत उन्होने १८७५ मे आर्य-समाज की नीव डाली। यद्यपि प्रार्थना-समाज ने मूलत राजा राममोहन राय (१७७२ से १८३३) द्वारा स्थापित ब्रह्म-समाज से ही प्रेरणा प्राप्त की थी, किन्तु ववई के ब्रह्म समाजी नेता अपने को ब्रह्म समाज से सवंधित नही वताना चाहते थे, क्योकि उस समय तक ब्रह्म-समाज मे काफी विचार-सघर्ष हो चुका था। पंडिता रमाबाई रानडे ने महिलाओ मे काफी ठोस कार्य किया और उन्होने 'आर्य महिला समाज' आरभ किया।

ब्रह्म-समाज अव्यक्त भगवान् को मानता था और औपनिषदिक सिद्धांतो का समर्थक था, जिसमे मूर्ति-पूजा के लिये कोई स्थान नही। राजा राममोहन राय के वाद केशवचन्द्र सेन तथा देवेन्द्रनाथ टैगोर इसके नेता वने। वंबई के प्रार्थना-समाज का प्रचार वहुत अधिक नही हो सका। मुख्यरूप से इसने हिन्दू धर्म-ग्रन्थो एव महाराष्ट्रीय संतो से प्रेरणा प्राप्त की। इसने भी मूर्ति-पूजा का विरोध किया। इसके धार्मिक कृत्यो मे एक था 'रविवारीय सेवा'। यद्यपि आर्य समाज के संस्थापक दयानद सरस्वती (संन्यासी होने के पूर्व मूलशंकर) सौराष्ट्र के अन्तर्गत मोरवी के निकट टंकारा के रहनेवाले थे, किन्तु उनका धर्म पजाव एवं संयुक्त प्रदेश (अव उत्तर प्रदेश) मे खूव जोरो से फैला। वे वेदो को ही पूर्ण प्रामाणिक मानते थे। हिन्दी मे उन्होने 'सत्यार्थ प्रकाश' लिखा, सस्कृत मे 'वेद-भाष्य' तथा 'ऋग्वेद भाष्य भूमिका' की रचना अशत संस्कृत मे और अशत हिन्दी मे की। वे भी मूर्ति-पूजा के विरुद्ध थे। उनके प्रभाव मे स्त्री-शिक्षा और हिन्दी-अध्ययन को आश्रय मिला। इस आर्य समाज का उद्देश्य था जनता की शारीरिक, आत्मिक तथा सामाजिक उन्नति करना। ३० अक्तूवर १८८३ को ५९ वर्ष की अवस्था मे स्वामीजी का देहावसान हो गया।

हाल मे ही स्थापित 'एलफिस्टन इंस्टीच्यूट' मे पढ़े हुए कुछ युवको ने

'द स्टुडेंट्स सोसाइटी' (विद्यार्थी-समाज) को आरंभ किया, जिसकी गुजराती शाखा का नाम था 'गुजराती ज्ञान प्रसारक मंडल'। इस समाज ने 'ज्ञान-प्रसारक' नाम का एक पत्र भी निकाला। सन १८५१ में इसी संस्था का एक और संघ बना, जिसका नाम था, 'बुद्धिवर्धक सभा', जिसका मासिक पत्र था 'बुद्धिवर्धक'। इस दल के सदस्य थे रणछोड भाई, उदयराम, दुर्गा राम मछाराम, तुलजाराम सुखराम, मोहनलाल रणछोड भाई, महीपतराम रूप-राम, मोरावजी बंगाली, आरदेशर मूस, नानाभाई रानिना तथा अन्य लोग। इन्हीं में करसनदास मूलजी भी थे, जो समाज-सुधारक थे और जिन्होंने बाद में वैष्णव सम्प्रदाय के गोस्वामियों के अनैतिक आचरण का भंडाफोड किया। इनमें से कुछ उत्साही कार्यकर्ताओं ने गणित, इतिहास, जीवनी-लेखन आदि विभिन्न आधुनिक विषयों पर पुस्तकें लिखीं तथा कुछ महत्त्वपूर्ण ग्रंथों के अनुवाद किये। तब तक बहुत से साप्ताहिक एवं मासिक पत्र निकलने लगे थे, जिनके कारण बंबई-लेखकों को साहित्य-निर्माण और समाज-सुधार का अवसर मिला। फारदूनजी मर्जबानजी ने सन् १८२२ में ही 'बंबई-समाचार' का प्रकाशन आरंभ कर दिया था।

करसनदास मूलजी ने सन् १८५५ में एक साप्ताहिक पत्र 'सत्यप्रकाश' आरंभ किया, जिसमें उन्होंने वैष्णव सम्प्रदाय के गोस्वामियों की कड़ी आलो-चना की। सन् १८५६ में नर्मदाशंकर ने समाज-सुधार विषयों पर निबंध लिखना आरंभ किया और उनकी कविताओं का 'सुधार-पुराण' के रूप में मान होने लगा। नागर समाज के महीपतराम सन् १८६० में इंग्लैण्ड गये। उसी वर्ष विधवा-विवाह के प्रश्न पर नर्मदाशंकर का विवाद गोस्वामी जदुनाथ के साथ छिड गया। सन् १८६२ में बंबई हाईकोर्ट में महाराजा की मानहानि का प्रसिद्ध मुकदमा लडा गया। कुछ प्रभावशाली पारसी सज्जनों ने तथा एल्फिन्स्टन इंस्टीट्यूट के कुछ युवा पारसी व्यक्तियों ने मिलकर पारसी-समाज में 'द रिलीजस रिफार्म एसोसिएशन' (धार्मिक-सुधार-संघ) की स्थापना की। इस संघ में दादाभाई नौरोजी, जे० बी० वाछा, एस० एस० बंगाली और नौरोजी फरदून जी थे। उन्होंने एक साप्ताहिक पत्र निकाला 'रस्त गोफ्तार' (सत्य-वक्ता), जो बडा प्रभावशाली और सम्मान्य था।

खरदेसजी रुस्तमजी कामा यूरोप गए और वहाँ से लौटने पर भाषा तथा व्याकरण के तुलनात्मक अध्ययन के साथ पाश्चात्य पद्धति से उन्होंने अवेस्ता (पारसी धर्मग्रंथ) की शिक्षा देना आरंभ किया। वहरामजी मलावारी ने स्त्री और बच्चों के सुधार का काम हाथ में लिया। बाद में दयाराम गीदूमल की सहायता से उन्होंने सेवा-सदन की स्थापना की। पारसी लोगो ने योरोपवालों से बहुत बड़ी घनिष्ठता पैदा कर ली और एक धनी पारसी ने एक फ्रासीसी महिला से विवाह भी कर लिया। इस प्रकार सुधार संबधी आदोलन बड़ी शक्ति के साथ चल रहे थे।

शासक होने की श्रेष्ठ भावना से युक्त होकर अंग्रेजो ने इन सुधार-आंदोलनों को बहुत प्रोत्साहन दिया। लोगो को ईसाई बनाने तथा भारतीय सभ्यता पर आक्रमण करने के लिये ईसाई पादरियो ने अंग्रेजी शिक्षा को अपना माध्यम बनाया। धर्म-परिवर्तन का कार्य अबाध गति से चलने लगा और विशेपकर निर्धन वर्ग के लोग ईसाई धर्म स्वीकार करने लगे। हिन्दू-धर्म और हिन्दू-समाज की भर्त्सना खुलकर होने लगी। समाज तो निस्सन्देह अशिक्षित था ही, किन्तु पहले के कुछ सुधारको का ज्ञान भी अधूरा था तथा हिन्दुत्व एवं भारतीय संस्कृति से वे पूर्ण परिचित न थे। इसमे कोई सन्देह नही कि उनके प्रबल प्रयत्नो के कारण समाज मे जागृति आयी, किन्तु कुछ सुधारक कट्टर और अविवेकी थे। इन घोर सुधारकों की प्रवृत्ति से लड़ने के लिए तथा पश्चिम की अंधी नकल से बचने के लिये अनेक परिवर्तन-विरोधी-आन्दोलन आरभ हुए। बंगाल मे श्री रामकृष्ण परमहस तथा उनके शिष्य विवेकानंद ने बंगाल में कार्य आरंभ किया और केवल भारत मे ही नही, सारे संसार मे उनकी ख्याति हो गयी। दक्षिण मे 'थियोसाफिकल सोसाइटी' का आरंभ हुआ। दयानंद सरस्वती ने इस धर्म-परिवर्तन के विरुद्ध बहुत बड़ा काम किया और शुद्धि-आंदोलन चलाया। हिन्दू-समाज की एकता और अछूतो को ऊपर उठाने की दिशा मे भी स्वामीजी ने अच्छा प्रयत्न किया। उत्तर भारत मे स्वामी रामतीर्थ कार्य कर रहे थे। स्वामी दयानद से प्रेरणा पाकर बाद में स्वामी श्रद्धानंदजी (महात्मा मुशीराम) तथा लाला लाजपतराय द्वारा गुरुकुलो की स्थापना हुई।

यह सत्य है कि पश्चिम के सम्पर्क ने भारत में एक नवजागरण उत्पन्न किया, किन्तु यह कथन मिथ्या है कि भारत तब तक अशिक्षित था। पहले ही भारत में शिक्षा का चतुर्दिक् प्रसार था। प्रायः प्रत्येक गाँव में एक पाठशाला, टोल या मदरसा था। लोगों को नीति, धर्म, स्वास्थ्य-विज्ञान, शिष्टाचार आदि का सामान्य ज्ञान था। उच्च शिक्षा संस्कृत अथवा अरबी-फारसी के माध्यम से जनता प्राप्त करती थी। धनी लोग विशेष अध्यापकों को नियुक्त कर लेते थे। महाकाव्यों एवं पुराणों की शिक्षा पौराणिक या पुराणवाचक और गगरिया भट्ट देते थे। यह सब होते हुए भी यह सत्य है कि औरंगजेब की मृत्यु के बाद जो अव्यवस्था फैली, उसमें स्वदेशी शिक्षा की बड़ी अवनति हुई।

भारत के विभिन्न भागों में, प्रत्येक शताब्दी में, अनेक ऐसे साधु-महात्मा और योगी हुए, जिन्होंने नैतिक तथा आध्यात्मिक पक्ष को सबल बनाने में और भारतीय संस्कृति के कुछ उत्तम अंगों को सुरक्षित रखने में काफी सहयोग दिया। उन्होंने केवल जनता को ही उपदेश नहीं दिया, बरन् कुछ बड़े नेताओं के जीवन को परिवर्तित कर दिया। १९वीं शताब्दी में रामा बावा हुए, जो प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ तथा वेदान्त दर्शन के सुज्ञ पण्डित, गोकुलजी झाला एवं प्रसिद्ध कथाकार जयकृष्ण व्यास के गुरु थे। नित्यानंदजी तथा मनोहर स्वामी, एक दूसरे बड़े नेता थे जो दर्शनशास्त्री एवं भावनगर निवासी, गगा ओझा के गुरु थे। स्वामीनारायण सम्प्रदाय के साधुओं ने भी गुजराती की साहित्यिक तथा धार्मिक उन्नति के लिये बहुत काम किया। साधु देवानंद ने कवि दलपतराम को दीक्षा दी। दयानंद, जिन्होंने आर्य समाज की स्थापना की, स्वामी विरजानंद के द्वारा दीक्षित हुए थे। नृसिंहाचार्य की दीक्षा सूरत के मोहनस्वरूपजी के द्वारा हुई। नर्मदाशंकर अपने उत्तर जीवन में रूढ़िवाद की ओर झुक गये और उन्होंने प्राचीन विचारधारा के पक्ष में अपने ग्रंथ 'धर्म-विचार' में सबल तर्क उपस्थित किया। उस समय मनीलाल नभूभाई का उत्कर्ष होते हुए भी बहुत हो रहा था। नर्मदाशंकर के बाद उन्होंने ही यह कार्य सँभाला। श्रीमन् नृसिंहाचार्य तथा श्री नाथूराम शर्मा ने बड़े वेग से प्राचीन विचारों का समर्थन किया और दोनों में से प्रत्येक के अनुयायी बहुत बड़ी संख्या में थे। हिन्दुत्व और भारतीय संस्कृति की रक्षा करने में दयानंद,

रामकृष्ण, विवेकानंद, थियोसाफिकल सोसाइटी और श्रीमती ऍवेसेंट ने भी बहुत योग दिया। अंत में प्राचीनता की रक्षा का यह सूत्र गुजरात में गोवर्धनराम आनदशकर तथा दूसरो द्वारा पहुँचा।

इस प्रकार सूरत तथा वबई मे अपने पूर्व जीवन मे नर्मदाशंकर तथा उनके कुछ सहयोगी, सुधार के प्रबल पक्षपाती थे। अहमदावाद में दलपतराम सुधार-कार्य, मन्द किन्तु निश्चित गति से कर रहे थे। भोलानाथ साराभाई ने भी, जो प्रार्थना-समाज मे सम्मिलित हो गये थे, वहाँ सुधारो के पक्ष मे उपदेश दिया। सौराष्ट्र के सास्कृतिक नेता मनीशकर किकानी थे। स्पष्टत. सन् १८५० से १८७० तक का काल नव-जागरण काल था।

एक ओर सुधारो के प्रति अपार उत्साह था, दूसरी ओर प्राचीन विश्वासो की रक्षा के लिए अनेक आदोलन खड़े हुए। पूर्व-पश्चिम के प्रथम विचार-संघर्ष के परिणामस्वरूप ऐसा होना स्वाभाविक था। इन दोनो का सामजस्य वाद मे गोवर्धनराम की रचनाओ मे, विशेषकर उनकी अमर रचना 'सरस्वती चन्द्र' मे, उत्पन्न हुआ, और इसका कारण था सस्कृत तथा अतीत भारत के वैभवपूर्ण साहित्य का गहन अध्ययन। आगे चलकर गुजरात मे सुधार-कार्य रमनभाई महीपतराम, नरसिहराव भोलानाथ तथा मनीशंकर रतनजी भाट (कात रूप मे प्रसिद्ध) के हाथो मे था; और प्राचीनतावाद की रक्षा का काम नर्मदाशकर (उत्तर जीवन मे), नृसिहाचार्य (जिन्होने 'श्रेयस साधक वर्ग' की स्थापना की), नाथूराम शर्मा, मनीलाल, गोवर्धनराम, मनसुखराम त्रिपाठी आदि के ऊपर था।

पश्चिम के सपर्क के कारण साहित्य के रूपों और उसकी परंपरा में भी परिवर्तन हुआ। मध्यकाल मे गद्य का उपयोग वहुत सीमित था। व्यापार-सम्वन्धी पुस्तको, स्वीकार-पत्रों, सरकारी सहायता-पत्रो तथा राजनीतिक एव अन्य पत्र-व्यवहार मे ही गद्य का प्रयोग होता था। साहित्य मे गद्य का उपयोग वहुत कम होता था। इसके विरुद्ध आधुनिक काल मे गद्य का वहुत अधिक प्रसार हुआ, विशेषकर अपने नये रूपो मे, जैसे निबंध, नाटक, उपन्यास और लघुकथा आदि। दोनो कालो मे दूसरा अन्तर यह है कि मध्यकालीन साहित्य का विषय धर्म तथा पुराण तक ही सीमित था, किन्तु आधुनिक काल

में विषय का क्षेत्र आगे बढ़ा और अनेक धर्मेतर विषय भी इसके अंतर्गत आ गये। मध्यकालीन साहित्य मुख्यतः बहिर्मुखी था, किन्तु आधुनिक काल में अन्तर्मुखी काव्य तथा गीतों का आरंभ हुआ। साथ ही पुराने देशी छंदों में ही सीमित न रहकर काव्य में संस्कृत छन्दों का प्रयोग होने लगा। सुधारों के प्रति अति उत्साह होने के कारण साहित्य-सृजन का कार्य भी सुधार के उपदेश के उद्देश्य से होता था और बाद में प्राचीनतावाद की रक्षा के उद्देश्य से होने लगा। इस नवीन साहित्य के उत्थान के साथ ही साहित्यिक आलोचना का साहित्य भी विकसित हुआ। काव्य में नये-नये रूपों का समावेश हुआ। इन रूपों में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण रूप गीत का था, जिसमें मुख्य रूप से कोई एक भाव व्यक्त किया जाता है। गजल का रूप फारसी साहित्य से लिया गया है। इसमें प्रायः प्रेम, वैराग्य एवं भक्ति की भावना रहती है। एक दूसरा रूप सॉनेट (चतुर्दशपदी) भी है, जो अंग्रेजी-साहित्य से आया है। गरबा मध्यकालीन गरबी का विकसित रूप है। खंड-काव्य, करुण प्रशस्ति, भजन तथा मुक्तक भी अन्य रूप हैं। आधुनिक साहित्य में हमें देशभक्ति के गान भी मिलते हैं, प्रतिकाव्य तथा हास्य-काव्य के भी दर्शन होते हैं।

आधुनिक गद्य में निबंध, उपन्यास, नाटक, जीवन-चरित, शब्दचित्र, पत्र, लघुकथा, मनोरंजन एवं बुद्धि प्रधान साहित्य, साहित्यिक आलोचना, यात्रा-साहित्य, बाल-साहित्य, धार्मिक एवं दार्शनिक साहित्य, उच्च स्तरीय शोध-साहित्य, अन्य भाषाओं के कुछ ग्रंथों का अनुवाद, राजनीतिक तथा पत्रकारिता का साहित्य समाविष्ट है। निबंधों के भेद हैं—वर्णनात्मक, विचारात्मक, दार्शनिक, साहित्यिक एवं सुगम-सामान्य। उपन्यासों के प्रकार हैं—लघु, दीर्घ, ऐतिहासिक, सामाजिक तथा जासूसी। नाटक भी इतने तरह के पाये जाते हैं—धार्मिक, पौराणिक, ऐतिहासिक, सामाजिक, अद्भुत वार्ताओं से युक्त, संपूर्ण गद्य में अथवा पद्य में या गद्य-पद्य मिश्रित, अभिनेय की दृष्टि से लिखे जानेवाले तथा केवल पढ़ने के लिए एकांकी नाटक।

गुजराती साहित्य का आधुनिक काल, जो सन् १८५२ में हुई दयाराम की मृत्यु के साथ समाप्त होनेवाले मध्यकालीन साहित्य से सर्वथा भिन्न है, बड़ी सरलता से निम्नांकित उपकालों में बाँटा जा सकता है—

१—सन् १८५२ से १८८५ तक

२— „ १८८५ से १९१४ तक

३— „ १९१५ से १९३४ तक

४— „ १९३५ से आगे

मध्यकाल में धार्मिक दृष्टिकोण की प्रमुखता थी, किन्तु आधुनिक युग में सामाजिक एवं धार्मिक-निरपेक्षता का दृष्टिकोण प्रधान है। यह परिवर्तन भारत में अंग्रेजी शासन के साथ आया।

आधुनिक काल दलपतराम और नर्मदाशंकर से आरंभ होता है। उनके पहले का साहित्य मुख्यतः पद्य में था। सामान्य धारणा यही थी कि किसी विषय के विचारों को व्यक्त करने का उचित माध्यम काव्य ही है, दूसरी मान्यता यह है कि जो कुछ भी छन्दबद्ध लिखा जाता है, वह सब काव्य है।

दलपत और नर्मदाशंकर के पहले धर्म की प्रवृत्ति मुख्य थी। किन्तु बाद में धर्म निरपेक्षता तथा दूसरी समस्याओं की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित हुआ। अतः समाज-सुधार काव्य का विषय बना। ज्ञान, उपदेश, शिक्षा तथा सम्मति देने के लिए छन्दों का उपयोग होता था। पद्यों का गान जनता में सामूहिक रूप से होता था और सरलतापूर्वक समझे भी जाते थे। आशु काव्य, शब्दचित्र काव्य, अक्षर चमत्कृति से लोगों का बहुत मनोरंजन होता था। उखाणो, पादपूर्तियों तथा प्रबंधों की रचना बहुत अधिक हुई। धर्म के अतिरिक्त संसार-सुधार और नीतिबोध इन दो विषयों का समावेश और हुआ। नर्मद कवि के साथ ही आत्मलक्षी काव्य आरंभ होता है। उन्होंने चिन्तन काव्य भी आरंभ किया। इसका कारण यह था कि हमारा संघर्ष पाश्चात्य सभ्यता के साथ हुआ; और इस संघर्ष ने हमें चिन्तन की ओर प्रेरित किया। इन्हीं नर्मदाशंकर के साथ सृष्टि-सौन्दर्य-काव्य भी आरंभ हुआ। सन् १८८६ में नर्मदाशंकर की मृत्यु हो गयी। पाश्चात्य काव्य से लोगों को परिचित कराने के लिए तथा उसके प्रति लोगों की रुचि उत्पन्न करने के लिए चित्रों से पूर्ण 'कुसुममाला' का प्रकाशन सन् १८८७ में हुआ। इसी समय साहित्यिक आलोचना का सूत्रपात हुआ।

अब हम दलपतराम और नर्मदाशंकर की कृतियों पर विचार करेंगे।

अध्याय ११

दलपतराम और नर्मदाशंकर

समय की दृष्टि से, आधुनिक काल की प्रथम कविता दलपतराम की 'बापानी पीपर' थी, जिसकी रचना सन् १८४५ में हुई थी, यद्यपि आधुनिक कविता को वास्तविक रूप में आरम्भ करनेवाले नर्मदाशंकर कहे जा सकते हैं। श्रीमाली ब्राह्मण दलपतराम डायाभाई त्रिवेदी का जन्म १८२० में वढवाण में हुआ और मृत्यु सन् १८९८ में हुई। उनकी आरम्भिक शिक्षा पुराने ढंग की पाठशाला में हुई थी। उनके पिता निर्धन थे, किन्तु संस्कृत और प्राचीन वैदिक शिक्षा में पारंगत थे। १४ वर्ष की आयु में बालक दलपतराम की दीक्षा स्वामी नारायणी साधु देवानंद द्वारा स्वामी नारायण सम्प्रदाय में हुई। उन्होंने ब्रजभाषा और संस्कृत का अध्ययन किया। अपने गुरु से उन्होंने पिंगल तथा अलंकार शास्त्र भी पढ़ा। जीवन के प्रारम्भिक काल में उन्होंने सादरा के 'पोलिटिकल एजेंट' के कार्यालय में नौकरी की। सन् १८४८ में भोगीलाल साराभाई ने उन्हें श्री फार्बस के पास भेजा, जो एक ऐसे व्यक्ति की तलाश में थे, जो उनके द्वारा लिखे जानेवाले 'गुजरात का इतिहास' के लिए सूचनाएँ एकत्र कर सके। तब तक दलपतराम कविताएँ लिखने लगे थे। अतः फार्बस उनसे बहुत प्रभावित हुए और दलपतराम को नियुक्त कर लिया। फार्बस की सरकार में अच्छी प्रतिष्ठा थी। वे गुजरात के लोगों, गुजराती साहित्य और गुजरात के इतिहास से बड़ा प्रेम करते थे। फार्बस के सम्पर्क ने दलपतराम के जीवन में बहुत बड़ा परिवर्तन उपस्थित कर दिया और उनके जीवन की दिशा बदलने में इस सम्पर्क का बहुत बड़ा हाथ था। दलपतराम ने यद्यपि अंग्रेजी नहीं पढ़ी थी, किन्तु अंग्रेजी के विद्वान् फार्बस के साहचर्य ने दलपतराम के इस अभाव की किसी हद तक पूर्ति कर दी और उन्हें ऊपर उठाया। दलपतराम 'गुजरात वर्नाक्युलर सोसाइटी' के मंत्री बना दिये गये।

कई वर्षों तक वे इस पद पर काम करते रहे, साथ ही इसी सोसाइटी का पत्र 'वुद्धिप्रकाश' सपादित करते रहे। जीवन के उत्तर भाग मे उनकी आँखे चली गयी, फिर भी साहित्य-सृजन का काम उन्होने वद नही किया। फार्वस के संपर्क तथा सोसाइटी के मंत्री होने के कारण उन्हें प्राय. लंवी-लंवी यात्राएँ करनी पडती थी। फलस्वरूप जनता तथा कुछ राजकुमारो से उनका परिचय अधिक वढ गया। अपने जीवन-काल मे उन्हे अनेक सम्मान प्राप्त हुए तथा आर्थिक रूप से भी उन्हे पर्याप्त सहायता मिला करती थी। अंग्रेजी सरकार से उन्हे सी० आई० ई० की उपाधि मिली, जो भारतीयो के लिए वडी दुर्लभ समझी जाती थी। गुजरात मे उनके समकालीन विद्वान् उन्हे कवीश्वर कहते थे। अहमदावाद मे भोलानाथ साराभाई के साथ मिलकर वडी प्रिय एवं मधुर शैली में उन्होने मंदगति से, किन्तु लगातार, सुधार कार्य किया ; उस समय नर्मदाशंकर वंवई में वडे जोर-शोर से सुधार के लिए साहित्यिक कार्य कर रहे थे तथा सौराष्ट्र मे मनीशंकर किकाणी सुधार के लिए वरावर प्रयत्नशील थे।

दलपतराम की रचनाएँ लगभग ६५० पृष्ठोवाली 'दलपत काव्य' मे सग्रहीत है। उनका सर्वोत्तम काव्य 'फार्वस-विरह' (सन् १८६५) है, जो उनके मित्र तथा आश्रयदाता फार्वस की मृत्यु पर रचा गया था। 'वेनचरित्र' मे उन्होने विधवाओं की दुर्दशा का वर्णन किया है। यह आख्यान-शैली मे लिखा गया है। नउनकी 'मागलिक गीतावली' का प्रकाशन सन् १८८१ मे हुआ, जिसमे कुछ अच्छे गीत है। दलपतराम समाज के दोषो का सुधार धीरे-धीरे करने के पक्ष मे थे। उन्होने अत्याचार का भी विरोध किया और देश-प्रेम के भाव को भी अच्छी प्रकार व्यक्त किया है। सन् १८५२ मे उन्होने 'राजविद्याभ्यास' और 'हुन्नरखाननी' चढ़ाई' तथा १८५१ मे 'सप-लक्ष्मी-सवाद' की रचना की थी। फार्वस कवियो तथा विद्वानो को प्रोत्साहन वहुत देते थे—उनके इस गुण का वखान करने के लिए दलपतराम ने सन् १८६१ मे 'फार्वस-विलास' की रचना की, जिसमे उन्होने काल्पनिक कवि-मेला का वर्णन किया है। किन्तु इसकी अपेक्षा उनका 'फार्वस-विरह' अधिक श्रेठ काव्य है। दलपतराम ने कई पुरस्कार प्रतियोगितावाले निवध पद्य मे लिखे

हैं। अंग्रेजी न जानने पर भी फार्बस तथा कर्टिस-जैसे अंग्रेज अफसरों के सम्पर्क में आने के कारण दलपतराम रूढ़िवाद से ऊपर उठने में समर्थ हो सके, और जन्म तक अपने विश्वासों पर दृढ़ रहे। अपनी रचनाओं में वे ध० द० डा० (कवि दलपतराम डाह्याभाई) हस्ताक्षर करते थे। उन्होंने अनेक गरबियों की रचना की है। उनके कई पद्यों में आदेश तथा सम्मति दी गयी है, किन्तु आक्रमणात्मक न होकर हल्के हास्य रंग में रंगी हुई। लोगों में जागृति लाने के लिए उन्होंने अनेक राजनीतिक, सामाजिक तथा औद्योगिक विषयों पर पद्य लिखे। भले ही आज के युग में उन पद्यों का कोई प्रभाव न हो, किन्तु अपने समय में अपने उद्देश्य की पूर्ति उन्होंने की। दलपतराम ने लगभग ६० वर्षों तक पद्य-रचना की। उनके उत्साही सहायक उन्हें कवीश्वर कहते थे और जब वे अन्धे हो गये, तो उनकी तुलना अंध-कवि मिल्टन से उन्होंने की (शारीरिक दशा में)। नर्मदाशंकर के अनुयायी द्वेषवश उन्हें गरजी-भट कहते थे। दलपतराम बड़े उत्साही, परिश्रमी और विवेकी थे तथा अपने देशवासियों को बहुत प्रेम करते थे। इसीलिए वे 'जनता परायण-कवि' के रूप में विख्यात हुए। उनकी कविताएँ सभा रंजन की दृष्टि से रची गयी हैं, किन्तु अपनी कविताओं में उत्तम कोटि का रस निष्पन्न करने में वे समर्थ नहीं थे। उन्होंने अनेक अन्योक्ति काव्यों, व्यंग्य काव्यों तथा हास्य काव्यों की रचना की है। वे बड़े गंभीर विलक्षण ज्ञान युक्त व्यक्ति थे। वे इस बात से बहुत सतर्क रहते थे कि शिष्टाचार का उल्लंघन न हो। उनका हास्य बहुत हल्का होता था तथा व्यंग्य दबा हुआ रहता था। इन दो गुणों से युक्त उनकी अनेक कविताएँ बहुत समय तक स्मरण रहेंगी। जनता को मुग्ध करनेवाली कविताएँ करने में भी उन्होंने अपनी कुशलता का परिचय दिया है।

गद्य में उनके लिखे हुए कई निबंध हैं, जिनमें उन्होंने उस समय के सामाजिक दोषों तथा रूढ़िवादिता की आलोचना की है। उनके कुछ निबंध हैं भूत निबंध, ज्ञाति निबंध, बाललग्न निबंध तथा पुनर्विवाह निबंध आदि। गद्य में उन्हें अधिक सफलता नहीं मिली। इस क्षेत्र के नवलराम विद्वान् समर्थ गद्यकार माने जाते हैं। दलपतराम ने दो नाटक भी लिखे हैं—लक्ष्मी नाटक और मिथ्याभिमान नाटक। इन दोनों में दूसरा पहले की अपेक्षा

उत्तम है। आलोचना-क्षेत्र में वे पुराने परंपरागत विचारों को ही मानते थे। इसीलिए मध्यकालीन कवि प्रेमानंद तथा शामल की तुलना करते हुए उन्होंने शामल को श्रेष्ठ कवि बताया है।

दलपतराम ने हिन्दी में भी पर्याप्त रचनाएँ की हैं। ज्ञान चातुरी, श्रवणाख्यान और पुरुषोत्तम चरित उनकी हिन्दी की प्रमुख रचनाएँ हैं। हिन्दी पर भी उनका असाधारण अधिकार था। वस्तुतः साहित्यिक दृष्टि से उनकी हिन्दी की रचनाएँ उनकी गुजराती रचनाओं से अधिक श्रेष्ठ हैं। श्रवणाख्यान उनकी उत्तम हिन्दी-रचना है। उन्होंने दलपत-पिंगल नाम का एक ग्रंथ लिखा है, जिसमें उन्होंने पिंगल शास्त्र पर शास्त्रीय विवेचन किया है। गुजराती मे यह सर्वप्रथम स्वतंत्र पिंगल-ग्रंथ है।

शब्द चमत्कृति और अर्थ चमत्कृति पर दलपतराम का अच्छा अधिकार था। अनुप्रास, यमक, चित्र प्रबंध तथा विभिन्न शब्द और अर्थ अलंकारों का प्रयोग उन्होंने स्थान स्थान पर किया है। उन्होंने अनेक छन्दों का उपयोग किया है, और भिन्न-भिन्न विषयों पर बहुत अधिक लिखा है। अनेक गरबियां, पद और गीत उन्होंने लिखे। उनकी कविताओं में उपदेश का तत्त्व बहुत अधिक था, जो उस समय के अनुकूल था। किसी भी भावना का वर्णन वह बहुत ऊँचे स्तर पर नहीं करते थे। उन्होंने कई मुक्तक, दोहरे छप्पय भी लिखे हैं। इस क्षेत्र में वे व्रजभाषा की काव्य-शैली से बहुत प्रभावित थे। तत्कालीन महापुरुषों तथा सामयिक समस्याओं पर भी दलपतराम ने अनेक काव्य रचे हैं। उनमें से कुछ मे तो सुधार का उपदेश है। जब नर्मदाशंकर ने आत्म-लक्षी और प्रकृति-वर्णन की रचनाएँ आरंभ की, तब दलपतराम को भी प्रेरणा मिली और उन्होंने भी 'ऋतु-वर्णन' तथा 'प्रकृति-वर्णन' की रचना की। उनका सर्वोत्तम काव्य 'फार्बस-विरह' है। इसमे अधिकांश आत्मलक्षी काव्य है। उनकी यह परिपक्व अवस्था का ग्रंथ है—हरिलीलामृत, जो एक धार्मिक ग्रंथ है तथा जिसमे स्वामीनारायण संप्रदाय के संस्थापक सहजानंद स्वामी की जीवन-लीलाएँ वर्णित है। ऐसा कहा जाता है कि उनकी कविताएँ बालकों या उस वर्ग के लोगों द्वारा अधिक पसंद की जायँगी, जो वर्ग विकास की दिशा में अभी भी आरंभिक अवस्था मे है। दलपतराम ने बड़ी ईमानदारी के साथ

अपना सारा जीवन काव्य और साहित्य की सेवा में बिताया। उनके अनेक वचन भी थे, जिनमें से कुछ उनकी अवस्था और काल के कारण थे। उनकी ख्याति अनेक नामों से है, जैसे समर्थ उपकवि, जनतापरायण कवि तथा प्रजा-वत्सल साहित्यकार इत्यादि।

नर्मदाशंकर

कवि नर्मदाशंकर लालशंकर दवे २४ अगस्त १८३३ को सूरत में वडनगरा नागर ब्राह्मण-परिवार में उत्पन्न हुए थे। बम्बई के एल्फिंस्टन इन्स्टीच्यूट में उनकी शिक्षा हुई थी। वे दलपतराम से १३ वर्ष छोटे थे। हिंदू-संस्कारों में उनका लालन-पालन हुआ था और ईश्वर पर उनका पूरा विश्वास था। बहुत छोटी अवस्था में उनका विवाह हो गया था। जब वे बम्बई में बड़ी तीव्रता के साथ अध्ययन कर रहे थे, तभी उनके श्वसुर ने उन्हें सूरत बुला लिया और यह कहा कि अब अपना घर बसाओ, क्योंकि तुम्हारी पत्नी गृहिणी के योग्य हो गयी है। विवश होकर नर्मदाशंकर रांदेर के एक स्कूल में पन्द्रह रुपए मासिक पर अध्यापक हो गये। संयोग से शीघ्र उनकी पत्नी की मृत्यु हो गयी और वे आगे पढ़ने के लिए फिर बम्बई आ गये। यहां आकर सुधार-कार्यों में उन्होंने अत्यन्त उत्साहपूर्वक भाग लेना आरंभ किया। उन्होंने 'बुद्धि-वर्धक-सभा' की स्थापना की और 'मंडलीथी थता लाभ विशे' पर एक भाषण दिया। ये बड़े महत्वाकांक्षी थे। २२ वर्ष की आयु में उन्होंने प्रार्थना के ढंग पर एक पद की रचना की थी, बस तभी से पद-रचना में वे रुचि लेने लगे। वे स्वयं कहते थे, "यदि पद-रचना में मुझे आनंद मिलता है, तो मैं वही करूंगा। जीवन निर्वाह के लिए आध सेर ज्वार कमा लेना कोई कठिन काम नहीं है। उसके बाद से अपने काव्य संबंधी कामों की तैयारी में जुट गये। वे बम्बई के एक स्कूल में अध्यापक हो गये थे, किन्तु स्कूल का शोरगुलवाला वातावरण उनके अनुकूल नहीं पड़ा। इसलिए २३ नवंबर, १८५८ को उन्होंने उस नौकरी से त्यागपत्र दे दिया। उसी सन्ध्या को अश्रुपूर्ण नेत्रों से अपनी लेखनी की ओर देखकर उन्होंने कहा, "कलम! हवे हु तारे खोळे छू', अर्थात् लेखनी! अब मैं तेरी गोद में हूँ। उन्होंने निश्चय किया कि अब से आजी-

विका के लिए किसी अन्य पर आश्रित न रहकर साहित्य-सेवा द्वारा ही जीवन-निर्वाह करूँगा। अपने इस निश्चय पर वे २४ वर्षो तक दृढ रहे और इस काल में साहित्य के विभिन्न क्षेत्रो मे उन्होने बडे महत्त्वपूर्ण कार्य किये, साथ ही दूसरे लोगो को भी इस ओर प्रेरित किया। बड़ी वीरता से उन्होने अनेक कठिनाइयों का सामना किया और निश्चय का पालन करने के लिए निर्धनता को भी स्वीकार किया। किन्तु २४ वर्षो के वाद असहाय हो गये और नौकरी की खोज मे निकले।

नर्मद उत्साही, सत्यप्रिय और निर्भीक थे। प्रेम-शौर्य उनका उद्देश्य था। सुधार-आन्दोलन के वे नेता हो गये। वे सघर्प को पसद करते थे। उन्होंने अनेक साहसपूर्ण साहित्यिक कार्य आरभ किये, नये रूपो का प्रयोग किया और अज्ञान, रूढिवाद, अंधविश्वासो तथा लोगो की कायरता पर आक्रमण किया। विधवा-विवाह विपय पर गोस्वामी जदुनाथ जी महाराज के साथ उनका विवाद वहुत दिनो तक चला। "दाडियो" नामक पत्र का वे संपादन करते थे, जिसमे अनेक सामाजिक दोपो की उन्होंने कडी आलोचना की। सन् १८६६ मे लोग सट्टा वाजार मे वहुत अधिक सट्टा खेलने लगे थे। इस दोष को भी उन्होने नही छोडा और अपने पत्र मे इसकी काफी निन्दा की। जो भी उन्हे सत्य प्रतीत होता, उसी को मानने का उनका स्वभाव था। इसी के फल-स्वरूप अपने जीवन के अंतिम समय मे उन्होने वड़ी वीरता से अपने विचारों को वदल दिया। उस समय सारे देश मे पश्चिम के संपर्क से होने वाले भयकर आक्रमण से हिन्दुत्व को वचाने की एक सशक्त लहर फैली हुई थी। ब्रह्म-समाज, प्रार्थना-समाज, आर्य-समाज, थियोसफी, रामकृष्ण परमहस तथा अन्य लोगो ने अपने अपने ढंग से इसमे योग दिया। नर्मद ने भी हिन्दू धर्म के मूल ग्रन्थो का अध्ययन वढाया और उन्होने मान लिया कि विना समझे-बूझे प्राचीनता की आलोचना करना उचित नही। उन्होंने अनुभव किया कि आर्य-धर्म तथा संस्कृति का पुनर्निर्माण करने मे ही देश का कल्याण है। उन्होने देखा कि सुधार का प्रचार करनेवाले उनके अधिकाश मित्र या तो स्वार्थ-साधन कर रहे हैं या भटके हुए हैं। उनकी टीका-टिप्पणी की कोई परवाह न करके अपने परिवर्तित विचारो को वे व्यक्त करने लगे और उन्होने 'धर्म-विचार' लिखा।

नर्मद को विश्वास था कि उनके भाग्य में ही कवि होना लिखा है, वे तो महाकवि बनने की अभिलाषा रखते थे। उसकी तैयारी भी उन्होंने कर दी थी। एक राहगीर के पास पिंगल की एक पुस्तक थी, जिसे द्वेषवश वह छिपाये हुए था। नर्मद ने उसकी प्रतिलिपि करने का साहसपूर्ण प्रयत्न किया। वे नित्य उसके घर जाते और उस पुस्तक की प्रतिलिपि करते थे। साहित्य के कई क्षेत्रों में वे अग्रणी और आधुनिक गुजराती गद्य-पद्य के जनक कहलाये।

नर्मदाशंकर ने पहले-पहल ज्ञान, भक्ति, वैराग्य आदि मध्यकालीन विषयों पर धीरा भगत के ढग की कविताएँ लिखनी आरंभ किया। किन्तु बाद में आत्मलक्षी कविता करने लगे, जिसमें प्रेम एवं देशप्रेम के भाव तथा प्रकृति के वर्णन आदि होते थे। उन्होंने सुधार-सम्बन्धी उपदेश भी पद्य में लिखे। महाकाव्य लिखने की उनकी बहुत बड़ी इच्छा थी। उन्होंने अपने दो अधूरे ग्रंथों 'वीरसिंह' तथा 'रुदन-रसिक'—में इसका प्रयोग भी किया।

आधुनिक कविता का वास्तविक आरंभ नर्मदाशंकर से होता है। उन्हे जो 'युगधर' कहा गया है, वह उचित ही है। उन्होंने विचार किया कि काव्य की आत्मा न तो छन्द-अलंकार है और न शब्द-योजना। काव्य की आत्मा के दर्शन हृदय की गहन भावनाओं को अभिव्यक्ति में होते हैं। इसी को हैजलिट ने (Passion) मनोभाव और नर्मदाशंकर ने 'जोस्सो' कहा है। यद्यपि नर्मद भली भांति जानते थे कि कविता क्या है, किन्तु उनकी क्षमता सीमित थी। उन्होंने जो कुछ लिखा है, एक प्रचारक की दृष्टि से लिखा है। महाकाव्य के लिए उन्होंने वीरवृत्त और प्रलंबित रोला छंद का उपयोग किया था। उन्होंने गद्य-पद्य दोनों बहुत अधिक परिमाण में लिखा है। उनकी मुख्य कृतियाँ है—नर्म गद्य, नर्म कविता, नर्म कोश, राज्य रंग, मारी हकीकत, धर्म विचार, गुजरात सर्वसंग्रह तथा कुछ नाटक। मध्यकालीन कवियों के कई ग्रंथों का संपादन भी उन्होंने किया। 'नर्म कविता' में उनकी कविताएँ संगृहीत हैं और उनके गद्य का अधिकांश भाग 'नर्म गद्य' में है। उनके गद्य में निबंध, जीवन-चरित, आत्म चरित्र, नाटक, संवाद, कोश, भाषण, पत्र तथा पत्रकारिता संबंधी साहित्य है। गुजराती साहित्य का सर्वप्रथम कोश उन्होंने बिलकुल अकेले तैयार किया है, साहित्यिक आलोचनाएँ लिखीं, पिंगल-अलंकार

और व्याकरण-संबंधी विषयों पर लेखनी चलायी तथा धार्मिक विषयो पर विवाद चलाया। अपने 'धर्म विचार' मे उन्होंने आर्य-धर्म तथा संस्कृति के पक्ष मे लिखा। उनके गद्य-पद्य में आधुनिक गद्य-पद्य के सभी लक्षण पाये जाते है। उनकी अधिकांश कविता सन् १८५५ से १८६७ की लिखी है। यद्यपि अनेक विषयों पर उन्होंने बहुत बड़ी मात्रा मे कवितायें लिखी हैं, किन्तु उच्च महत्व उन्हे नहीं प्राप्त हो सका। दलपतराम ने जहाँ शब्द-चमत्कृति और अर्थ-चमत्कृति पर अधिक ध्यान दिया, वहाँ नर्मदाशकर ने रस और भावों पर अधिक बल दिया। यद्यपि काव्य के प्रति उनकी मान्यता बिल्कुल ठीक थी, किन्तु उनका प्राय. रस-निर्माण कृत्रिम लगता था। श्रेष्ठता की अपेक्षा उनका ध्यान परिमाण की ओर अधिक था। इसीलिए अनेक विषयों पर उनकी अधिकाश कविताएँ बहुत जल्दी में रची हुई लगती है। उनकी समस्त रचनाओ मे बहुत ही थोडी ऐसी है, जिन्हे प्रथम कोटि की कविताओ मे रखा जा सकता है। किन्तु यह भी सत्य है कि इन इनी-गिनी कविताओ मे उनकी काव्य-शक्ति के दर्शन हो जाते है। मध्यकालीन शैली पर उन्होने लगभग २०० पदो की रचना की है। गोपी-गीत तथा रुक्मिणी-हरण जैसे दीर्घ काव्य भी उन्होने लिखे है, किन्तु उनकी मुख्य कृतियां है आधुनिक शैली पर सुधार, देशप्रेम, प्रकृति-वर्णन, प्रेम आदि विषयो की कविताएँ; कुछ आत्मलक्षी काव्य, हिन्दुओनी पडती, जो रोलावृत्त मे १५०० पक्तियो का एक दीर्घ काव्य है। हिन्दुओनी पडती एक रूपक है, जिसमे नर्मदाशंकर ने अत्यन्त प्रभावशाली ढंग से वीर तथा करुण रस उत्पन्न किया है। उनका यह प्रौढ काव्य है। उनकी सर्वश्रेष्ठ कविताएँ है—जय जय गरवी गुजरात, या होम करीने पडो, कवीरवड पर कुछ कविताएँ, अवसार-सदेश और हिन्दुआनी पडती का कुछ अश।

इतना अधिक पद्य रचने पर भी नर्मदाशकर की प्रतिष्ठा एक गद्य-लेखक की दृष्टि से अधिक है और गुजराती साहित्य मे उनकी सेवाएँ गद्य-विकास के क्षेत्र में ही स्मरण की जायेगी। निबध, जीवन-चरित, आत्मचरित, साहित्यिक आलोचनाएं लिखने मे मार्ग दिखानेवाले नर्मदाशकर ही प्रथम सुष्ठु गद्य लेखक है। उनका गद्य सरल, स्पष्ट, सबल, प्राय. व्यंग्यात्मक तथा

प्रवाहपूर्ण है। वह ऐसा है, जिसे आज भी हम पढ़ना पसद करेंगे। 'मारी हकीकत' में उन्होंने अपना अधूरा परिचय दिया है। 'राज्यरंग' में संसार के सभी देशों का इतिहास उन्होंने लिखा है। 'धर्म विचार' में उनके वे निबंध हैं, जो उन्होंने विचार-परिवर्तन के बाद लिखे हैं। ३५ वर्षों तक उन्होंने गद्य-लेखन जारी रखा।

नर्मद अत्यन्त भावुक थे। अपने आरंभिक जीवन में सामाजिक सुधारों के प्रति उनमें असाधारण उत्साह था। स्वयं उन्होंने एक विधवा से विवाह किया और वे मद्यपान भी करते थे। जीवन के अंतिम काल में जब उनके विचारों में परिवर्तन हो गया, तब वे इतने बदल गये कि युवा मनीलाल नभूभाई को आर्य धर्म की रक्षा के लिए प्रेरित किया और उनका मार्गदर्शन किया। नर्मद का व्यक्तित्व बड़ा शक्तिशाली था, जिसने उनके मित्र नवलराम जैसे गंभीर साहित्यिक आलोचक को भी चकित कर दिया था। नवलराम ने नर्मद की जीवनी लिखी थी, जो अब भी जीवनी-साहित्य की एक सर्वोत्तम कृति मानी जाती है। नर्मद की कविता में प्रवाह नहीं है, शैली और छन्द निर्दोष नहीं हैं तथा प्रसाद गुण का अभाव है। इनकी कविता का अधिकांश अपरिपक्व है। इन सब के होते हुए भी निस्सन्देह वे उस युग के नेता थे, जिसे बहुत से लोग नर्मद-युग अथवा सुधारक-युग कहते हैं। लोगों में उन्होंने वस्तुतः अच्छी कविता के प्रति रुचि उत्पन्न की, यह बात दूसरी है कि स्वयं अच्छी कविता बहुत नहीं कर सके। उनके जो थोड़े-बहुत श्रेष्ठ काव्य के अंश हैं भी, वे साधारण कोटि के अंशों में मिले हुए हैं। श्री विश्वनाथ भट्ट ने अपनी पुस्तक 'नर्मद नुं मंदिर' में उनके गद्य-पद्य के कुछ विशिष्ट अंशों को संकलित किया है। नर्मद ने अपने परवर्ती कवियों या लेखकों का मार्ग स्पष्ट किया है। वे एक योद्धा, नवस्फूर्ति से युक्त, स्वाभिमानी, अहंकारी, आत्म-विश्वासी, अनिवक्ता, निर्भीक तथा इन सबके ऊपर सत्य प्रेमी भी थे। उनका गद्य निस्सन्देह उनके पूर्ववर्ती अथवा समकालीन विद्वानों, जैसे दुर्गाराम, दलपतराम अथवा रणछोड़भाई, से श्रेष्ठ है। गुजराती भाषा के प्रथम कोश 'नर्मद कोश' के लिए नितान्त अकेले वे १२ वर्षों तक कार्य करते रहे, और यद्यपि अपने अंतिम समय में वे बहुत निर्धन हो गये थे, तो भी अपने स्वाभि-

मानी एवं हठी स्वभाव के कारण उस कोश के प्रकाशन का सारा खर्च उन्होंने ही उठाया। 'नर्मद-गद्य' में उनके वे निबंध हैं, जो भाषण के ढंग के हैं। तत्त्व-चिंतन पर लिखे हुए उनके निबंध 'धर्म विचार' में संगृहीत हैं।

दलपतराम और नर्मदाशंकर में एक प्रकार की प्रतिद्वंद्विता थी। दलपतराम नर्मदाशंकर से केवल १३ वर्ष बड़े थे। दलपतराम की प्रवृत्ति भिन्न थी। वे मंदगति से, सतर्क होकर, गंभीरतापूर्वक और विवेक का पल्ला पकड़े हुए आगे बढ़नेवाले थे। वे दूसरों पर आक्रमण बहुत कम करते थे। उनका व्यंग भी मधुर होता था। सबसे बड़ा गुण उनका यह था कि वे व्यावहारिक थे। उत्तर गुजरात में उनकी बड़ी ख्याति थी और वे कवीश्वर कहे जाते थे। नर्मदाशंकर का स्वभाव इसके ठीक विपरीत था—सबल, आक्रमणात्मक, गरम, भावपूर्ण आदि। दोनों ने अपने-अपने ढंग से सुधारों के लिए उपदेश दिए हैं, दोनों ने सामाजिक दोषों की आलोचना की है और पद्यात्मक निबंध लिखे हैं। यह देखा जा चुका है कि नर्मद को वीर तथा शृंगार के वर्णन में आनंद आता था और दलपतराम को शांत एवं हास्यरस के वर्णन में। जहाँ तक शैली का संबंध है बाद के कवि नर्मदाशंकर की अपेक्षा दलपतराम से अधिक प्रभावित हुए, किन्तु विषयों की दृष्टि से दलपतराम की अपेक्षा नर्मदाशंकर में आधुनिकता तथा विविधता अधिक है। उन दोनों में प्रतिद्वन्द्विता होते हुए भी दोनों के संबंध में कटुता नहीं थी। १८५२ से १८८५ तक के युग का नामकरण करने में आलोचक एकमत नहीं हैं। कुछ उसे नर्मद-युग कहते हैं और कुछ दलपत-युग। किन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि उस काल में जो आधुनिक तत्त्व था, उसका अधिकांश नर्मदाशंकर द्वारा प्रदान किया हुआ है। इसी कारण से बहुत से विद्वान् नर्मदाशंकर को ही उस काल का 'युगंधर' मानते हैं।

नवलराम तथा अन्य साहित्यकार

जिस प्रकार आधुनिक काव्य का प्रारंभ नर्मद और दलपत से माना जाता है, उसी प्रकार नवलराम को सर्वप्रथम विशिष्ट, गंभीर एवं संतुलित साहित्यिक आलोचक समझा जाता है। नवलराम लक्ष्मीराम पंड्या का जन्म सूरत में सन् १८३६ में हुआ था। ये विसनगरा नागर ब्राह्मण थे। ये नर्मद से ३ वर्ष छोटे थे। मैट्रिक तक पहुँच कर इन्हें अपनी पढ़ाई बंद करनी पड़ी, क्योंकि आगे पढ़ने के लिए ये बंबई नहीं जा सके। एक सरकारी स्कूल में ये अध्यापक हो गये और धीरे-धीरे सूरत के ट्रेनिंग कालेज के प्रिंसिपल हुए। बाद में अहमदाबाद और राजकोट के ट्रेनिंग कालेजों की प्रिंसिपली की। सन् १८८८ में, नर्मद की मृत्यु के २ वर्ष बाद, इनकी मृत्यु हो गयी। नवलराम अपने काल के सर्वश्रेष्ठ गद्य-लेखक माने जाते हैं। ये गंभीर, विचारशील, स्वतंत्र और संतुलित मस्तिष्क के थे। अनेक विषयों पर इनकी लेखनी चली है। इनकी शैली मँजी हुई है और विषय का प्रतिपादन गाम्भीर्य एवं गौरवपूर्ण है। ये स्कूल में जो न सीख सके, उसे अध्यापक, लेखक और पत्रकार बनकर सीख लिया। ये बड़े परिश्रमी थे और विद्योपार्जन के लिए सदैव उत्सुक रहते थे। अपने परिश्रम तथा धैर्य के बल पर ये जीवन में बराबर उन्नति करते चले गये और इन्होंने ज्ञान-वृद्धि की। ये 'गुजरात शाला-पत्र' के संपादक हो गये थे, जो सरकार के शिक्षा विभाग का पत्र था। हिंदी पर भी इनका अच्छा अधिकार था। सूरत में नंदशंकर इनके घनिष्ठ मित्र थे और जब ये अहमदाबाद गये तो इनकी मित्रता अंबालाल साकरलाल तथा लालशंकर उमियाशंकर से हुई।

यद्यपि नवलराम का साहित्य मात्रा में नर्मद और दलपत के बराबर नहीं पहुँचता, किंतु जो कुछ है वह अधिक अनुभवपूर्ण और ठोस है। यद्यपि

नर्मद ने आलोचना का भी आरंभ कर दिया था, किन्तु नवलराम उनसे बहुत श्रेष्ठ है। ये जीवन भर अध्यापक रहे, अत. अंग्रेजी और संस्कृत का ज्ञान बढ़ाने का इन्हे पूर्ण अवसर मिला। इन्होने साहित्यिक विषयो, शिक्षा, सुधार, साहित्यिक आलोचना आदि पर अधिक लिखा है। इन्होने दो नाटक भी लिखे हैं, जिनमें एक है 'भटनुँ भोपालुँ', जो फ्रांसीसी नाटककार मोलिअर का बहुत ही सुन्दर गुजराती रूपान्तर है। इस नाटक मे इन्होने बडे अच्छे ढंग से हास्य रस का विकास किया है, और शैली ऐसी है, जिससे प्रतीत होता है कि नाटक मूलरूप से गुजराती मे लिखा गया है। आधुनिक काल का पहला गुजराती नाटक दलपतराम का 'मिथ्याभिमान' है, किन्तु नवलराम का 'भटनुँ भोपालुँ' निर्वाह तथा हास्य-वर्णन दोनो दृष्टियों से श्रेष्ठ है। इनका दूसरा नाटक है 'वीरमती'। इसकी कथावस्तु फार्वस की 'रासमाला' से ली गयी है। इसमें जगदेव परमार के जीवन की कुछ घटनाएँ वर्णित है। मुख्य-रूप से यह ऐतिहासिक नाटक है। पहले इन घटनाओ को नवलराम उपन्यास के रूप मे लिखना चाहते थे, किन्तु बाद मे इन्होने अपना विचार बदल दिया और इसे नाटक का रूप दे दिया। यह साधारण कोटि की कृति है।

नवलराम ने कुछ कविताएँ भी लिखी हैं, विशेषत: बच्चो के लिए कुछ गरबियां। 'बाल लग्न बत्रीशी' तथा 'बाल गरबावली' मे इनकी गरबियां संगृहीत है। काव्य-कला की दृष्टि से इनकी कई कविताएँ नर्मद और दलपत से भी उत्तम कोटि की है। नवलराम ने सुधारो के समर्थन मे बहुत हल्के व्यंग्य और हास्य का उपयोग किया है। उनके विषय मे यह मान्यता उचित है कि वे पहले एक कवि और विद्वान् है, इसीलिए साहित्यिक आलोचना करने मे ये सफल हुए है। नवलराम ने कालिदास के 'मेघदूत' का भी अनुवाद किया है, प्रेमानंद के 'कुवरबाईनुँ मामेरु' का सम्पादन किया है, भाषाशास्त्र पर 'व्युत्पत्ति पाठ' नामक पुस्तक लिखी है, ('इंग्रेज लोकनो इतिहास' अंग्रेज लोगो का इतिहास) लिखा, 'अकबर-बीरबर काव्य-तरंग' लिखा तथा 'कवि जीवन' लिखा, जो कवि नर्मदाशंकर की जीवनी है।

नवलराम श्रेष्ठ आलोचको में एक है। 'गुजराती शाला-पत्र' के जब वे संपादक थे, तब आनेवाली बहुत सी विभिन्न पुस्तको की आलोचना उन्हे करनी

पत्नी थी। उनकी आलोचनाएँ उच्चस्तरीय, अध्ययनपूर्ण और ठोस हैं। इनकी आलोचनाओं के सामने इनके पूर्ववर्ती विद्वानों की आलोचनाएँ या तो निम्नकोटि की प्रतीत होती हैं या उनमें अध्ययन का अभाव लगता है। इन्होंने साहित्यिक आलोचना के सिद्धान्तों पर भी विचार किया है और अनेक पुस्तकों की आलोचना की है। इनकी आलोचना-पद्धति शास्त्रीय होती थी। वे किसी विशेष पुस्तक को परखने के पहले मापदंड निर्धारित करते थे, फिर उसी मापदंड के अनुसार उसकी जाँच करते थे। वे नये लेखकों को उत्साहित करते थे और त्रुटिपूर्ण रचना के दोष बताने में हिचकते नहीं थे। उन्होंने भाषा के स्वरूप, वर्णविन्यास, भाषा-विज्ञान, छन्द, वाक्य-विन्यास, यथार्थवाद, वास्तववाद समस्त भारत के लिए एक वर्णमाला और एक भाषा की उपादेयता, नियमित और सुनिश्चित वर्ण-विन्यास आदि की अनेक समस्याओं पर भी इन्होंने विचार-विमर्श किया। इन्होंने साहित्य में अश्लीलता की काफी निंदा की है। इनकी शैली विश्लेषणात्मक, बहिर्मुखी, गाम्भीर्य और निष्पक्ष है। अपने समय के कई विद्वानों का मूल्यांकन इन्होंने बड़ी सफलतापूर्वक किया है जिसके लिए इनमें पूर्ण क्षमता थी।

जीवन के अन्तिम दो वर्षों में 'कवि जीवन' नाम से नवलराम ने नर्मदाशंकर का जीवन चरित्र लिखा, जिसमें इन्होंने नर्मद द्वारा लिखित अधूरे आत्मचरित्र की सामग्री का उपयोग किया है। यह कृति उनकी साहित्यिक आलोचना का सर्वश्रेष्ठ अंश माना जाता है। इसमें इन्होंने नर्मदाशंकर के साथ पूर्ण न्याय किया है, जो जीवन के आरम्भ में कट्टर सुधारवादी थे और बाद में प्राचीन विचारों के पोषक बन गये थे। नवलराम ने बड़ी कुशलता से नर्मद के विचारों का विश्लेषण किया था। आधुनिक गुजराती साहित्य में नवलराम का नाम एक प्रधान कुशल साहित्यिक आलोचक के रूप में लिया जाता है।

नंदशंकर

नंदशंकर तुलजाशंकर मेहता एक बड़नगरा नागर ब्राह्मण थे तथा सूरत में सन् १८३५ में उत्पन्न हुए थे। अपने समय के ये एक प्रमुख सुधारक थे। ये पहले सूरत की अंग्रेजी स्कूल में अध्यापक बने फिर क्रमशः जीवन में इन्होंने बड़ी

उन्नति की। श्री रसेल ने जो शिक्षा-विभाग मे नंदशंकर से ऊँचे पद पर थे, सर वाल्टर स्काट की शैली मे इन्हे गुजराती ने एक ऐतिहासिक उपन्यास लिखने के लिए उत्साहित किया। नंदशंकर ने गुजरात के अंतिम वघेला शासक करणघेला के जीवन की ऐतिहासिक घटनाओ को इसके लिए चुना। इस उपन्यास में उन्होंने गुजरात का वर्णन किया है, विशेषकर वघेलों के समय मे पाटन का। उन्होंने अपने समय के सूरत के वर्णन का भी अवसर प्राप्त कर लिया। इसी उपन्यास मे स्थान-स्थान पर सुधार सम्बन्धी उपदेश देने का लाभ भी उन्होने लिया। उपन्यास की कथावस्तु यो है कि वघेला शासक करणघेला अपने मत्री माधव की पत्नी रूपसुँदरी को उड़ा ले गया। क्रुद्ध माधव दिल्ली गया और सुलतान अलाउद्दीन खिलजी से उसने सहायता मागी तथा गुजरात पर आक्रमण करने के लिए उसे प्रेरित किया। करणघेला अपने राज्य की रक्षा करने मे असमर्थ रहा और अंत मे उसने वागलाण के किले मे शरण ली। यह गुजरात का प्रथम ऐतिहासिक उपन्यास है। इसका प्रकाशन १८६६ मे हुआ था। इसमे घटनाओ के कुछ वर्णन बहुत ही अच्छे है, यद्यपि चरित्रो का विकास बहुत अच्छा नही हुआ था जगह-जगह सुधार संबंधी उपदेशो के कारण पाठको की रुचि कम हो जाती है। उपन्यास बडी सबल शैली मे लिखा गया है। इसकी भाषा नर्मदाशंकर की अपेक्षा अधिक परिमार्जित है। लेखक अग्रेजी-साहित्य का अच्छा विद्यार्थी था तथा उसकी शैली सुसस्कृत एव विकसित है। नंदशकर का अनुकरण करके गुजराती मे अनेक ऐतिहासिक उपन्यास लिखे गये। महीपतराम नीलकंठ ने 'वनराज चावडो' और 'सधरा जेसंग' लिखा। मणिलाल छबाराम ने 'झासी कीर णी' आदि लिखा। किन्तु ये कृतियां उतनी सफल नही हुई, जितनी नंदशकर की कृति। 'करणघेला' का अनुवाद मराठी भाषा मे हुआ और अणेक वर्षो तक प्रसिद्ध रहा। कई दशको तक यह उपन्यास पाठ्य पुस्तक के रूप मे स्वीकृत रहा। उस समय के श्रेष्ठ ग्रंथो मे से यह एक है। जब कि उस काल के दूसरे ऐतिहासिक उपन्यास कुछ प्रमुख ऐतिहासिक व्यक्तियो के केवल जीवन-चरित बन कर रह गये, तब नन्दशकर का उपन्यास यथार्थत. एक ऐतिहासिक उपन्यास के लक्षणो से युक्त था, जिसमे पाठको की रुचि बराबर बनी रहती है।

भोलानाथ साराभाई

भोलानाथ साराभाई एक वडनगरा नागर ब्राह्मण थे, जो सन् १८२२ में अहमदाबाद में उत्पन्न हुए थे। ये न्यायाधीश रानडे से बहुत प्रभावित थे और सन् १८७१ में इन्होंने अहमदाबाद में प्रार्थना-समाज की स्थापना की। ये उसके सभापति थे। ये एकेश्वरवाद में विश्वास करते थे और इन्होंने कई भक्तिरस की रचनाएँ की हैं। इनकी कविता में बल और सच्चाई है और ये ठीक ही आधुनिक काल के प्रथम भक्त कवि माने गये हैं। इनकी भक्तिपूर्ण रचनाएँ 'ईश्वर प्रार्थनामाला' तथा 'अभंगमाला' में संगृहीत हैं, जिनमें आपने ईश्वर की महिमा का वर्णन अत्यन्त गौरव तथा भावनापूर्ण ढंग से किया है। यद्यपि भोलानाथ के भजनों में मध्यकालीन नरसिंह, मीरा, दयाराम—जैसे कवियों का सा बल नहीं है और न वर्तमान काल के कवियों के विचारों की गुरुता है, परन्तु ये भजन गेय हैं और मराठी अभंगों के प्रभावों से लिखे गये हैं। चूंकि ये एकेश्वरवाद में विश्वास रखते थे, इसलिए वे उपनिषद्-दर्शन तथा ईसाईमत से प्रभावित थे। इन भजनों की रचना प्रार्थना-समाज की रविवारीय सभाओं में बाजों के साथ गाने के उद्देश्य से हुई थी। उनकी बाद की रचनाएँ कुछ अधिक परिपक्व हैं। दलपत और नर्मद के युग में भोलानाथ ने धर्म और भक्ति सम्बन्धी कुछ अच्छी कविताएँ गुजराती साहित्य को प्रदान की, जिन्होंने परवर्ती कवि केशवराम, कान्त, नरसिंहराव, नानालाल, खबरदार आदि को प्रभावित किया।

महीपतराम

महीपतराम रूपराम नीलकण्ठ एक वडनगरा नागर गृहस्थ थे, जो सूरत में सन् १८२९ में पैदा हुए थे। ये अहमदाबाद में जाकर बस गये थे। इन्होंने अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त की और इंगलैण्ड की यात्रा भी की थी। विदेश की यात्रा करना सुधार का कदम था। इसी लिए पहले इनके जाति वालों ने इनका बहिष्कार कर दिया था। सरकार के शिक्षा विभाग में इन्हें उच्च पद प्राप्त था। ये अहमदाबाद में प्रेमचंद रायचंद ट्रेनिंग कालेज के प्रिंसिपल थे। जैसे नंदशंकर ने पहला उपन्यास करणघेलो लिखा था, उसी प्रकार महीपतराम

ने १८६६ मे प्रथम सामाजिक उपन्यास 'सासू वहूनी लड़ाई' लिखा। वे ६२ वर्ष तक जीवित रहे। उन्होने दो ऐतिहासिक उपन्यास भी लिखे, 'वनराज चावडो' और 'सधरा जेसग'। उन्होने करसनदास मूलजी और दुर्गाराम मेहताजी की जीवनियां भी लिखी है। उन्होने गुजरात की पुरानी 'भवा-इयो' का संग्रह किया था। उनके उपन्यास बहुत साधारण कोटि के है। उनमे या तो ऐतिहासिक घटनाओं का उल्लेख मात्र है या तत्कालीन सामाजिक जीवन का। चरित्र-चित्रण एव शैली भी अत्यन्त निम्नकोटि की है। उनकी श्रेष्ठ कृतियां है उनके जीवन-चरित। करसनदास मूलजी का जीवन चरित सर्वश्रेष्ठ है। करसनदास भी उन्ही की भांति सुधारवादी ही थे। दुर्गाराम की जीवनी स्वयं दुर्गाराम द्वारा संचालित बैठको की लिखित कार्य-वाही पर आधारित है। महीपतराम ने अपनी पत्नी की जीवनी "पार्वती आख्यान" के नाम से पद्य मे लिखी थी। उन्होने 'आगवोटनी मुसाफिरी' नाम की एक पुस्तक भी लिखी थी, जो गुजराती मे यात्रा की पहली पुस्तक है और जिसमे उन्होने अपनी इंग्लैण्ड - यात्रा तथा अग्रेजो के विषय मे लिखा है। कुछ समय तक उन्होने 'गुजरात शाला-पत्र' का सपादन भी किया था। अपने 'भवाई-संग्रह' मे उन्होने भवाइयों के २० वेशो का सग्रह किया था। विभिन्न विषयो पर उन्होने अनेक पाठ्य-पुस्तके भी लिखी थी। सन् १८९१ मे उनकी मृत्यु हो गयी। अपने समस्त जीवन भर वे एक घोर और प्रगतिशील सुधारक बने रहे।

करसनदास मूलजी

करसन दास मूल जी का जन्म बबई मे सन् १८३२ मे हुआ था। वे एक बड़े सुधारक और शिक्षा-शास्त्री थे। इंग्लैण्ड जाने वाले ये प्रथम गुजराती थे। ये 'सत्य प्रकाश' पत्र के सम्पादक थे तथा 'रास्तगोफ्तार' और 'स्त्री वोध' मे भी ये बराबर लिखा करते थे। इनके लगभग १५ ग्रथ है, जैसे 'इंग्लाड मां प्रवास', 'नीतिवचन', 'ससार सुख', 'निबंध माला' आदि। इनकी पुस्तक 'इग्लाड मां प्रवास' इनकी सर्वश्रेष्ठ कृति है। ये नर्मदाशकर के घनिष्ठ मित्र थे। नर्मदाशकर ने अपने पत्र 'सत्य-प्रकाश' में सूरत के पुष्टिमार्गीय वैष्णव

गोस्वामी जदुनाथ के साथ एक विवाद आरंभ किया। इस विवाद का अंत प्रसिद्ध महाराजा मानहानि के मुकदमे से हुआ, जो गोस्वामी जदुनाथ ने करसनदास मूल जी के विरुद्ध चलाया था। बम्बई हाईकोर्ट में जाकर करसनदास की जीत हो गई। करसनदास की ख्याति एक सुधारक की दृष्टि से अधिक थी और विशेष कर महाराजा की मानहानि के मुकदमे से इनकी प्रसिद्धि और भी बढ़ गयी।

व्रजलाल शास्त्री

व्रजलाल कालीदास शास्त्री साठोदरा नागर थे और माजीना के समीप मतालज में सन् १८२५ में पैदा हुए थे। वे अंग्रेजी शिक्षा तो प्राप्त नहीं कर सके, किन्तु अपने परिश्रम, प्रतिभा और शिक्षा प्रेम के कारण वे संस्कृत, प्राकृत तथा अपभ्रंश के अच्छे विद्वान् हो गये। उनके लगभग १० ग्रंथ हैं, जिनके विषय हैं—भाषा, भाषा-विज्ञान और तर्क शास्त्र आदि। भाषा विज्ञान के क्षेत्र में उनके दो ग्रंथ 'गुजराती भाषानो इतिहास' तथा 'उत्सर्गमाला' उनके महत्त्वपूर्ण प्रयत्न के परिचायक हैं। गुजराती भाषा के उद्‌गम और विकास की खोज करने में उन्होंने अपनी शास्त्रीय और सूक्ष्म बुद्धि का प्रदर्शन किया है। तर्कशास्त्र तथा काव्य विज्ञान की आरंभिक पुस्तकें उन्होंने लिखी हैं। 'उत्सर्ग माला' में उन्होंने शब्द विकास के सिद्धान्त बताये हैं और मुख्य रूप से ये हेमचन्द्राचार्य के प्रसिद्ध ग्रंथ पर आधारित हैं।

रणछोडभाई उदयराम

रणछोड भाई उदयराम मेडावाल ब्राह्मण थे। इनका जन्म महुधा में सन् १८३७ में और देहान्त १९२३ में हुआ। इनकी ख्याति पिंगल, छन्द-शास्त्र तथा नाटक की पुस्तकों के कारण विशेष है। ये लगभग ६५ वर्षों तक साहित्यिक कार्य करते रहे। इन्होंने अहमदाबाद में अपना जीवन आरंभ किया। वहां कुछ समय तक नौकरी और व्यवसाय के उपरान्त अन्त में बम्बई में स्थायी रूप से आकर बस गये। उनके पिंगल संबंधी ग्रंथ दलपतराम, नर्मदाशंकर तथा दूसरों की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ एवं विस्तारपूर्ण हैं। उनका ग्रंथ पिंगल शास्त्र का विश्वकोश तथा आकर ग्रंथ माना जाता है। रणछोडभाई

ने कुछ संस्कृत नाटको का अनुवाद भी किया है और काव्य तथा नाटक के विज्ञान पर लिखा है। किन्तु प्रमुख रूप से वे गुजराती नाटककार है। उनके लिखे हुए अनेक नाटको मे से १४ प्रकाशित हो चुके है, कुछ अभी भी अप्रकाशित है। उनके कुछ नाटक सामाजिक है, किन्तु शेष पौराणिक विषयो पर आधारित है। उन पर अंग्रेजी नाटक-शैली, संस्कृत नाटककारो तथा गुजरात की पुरानी भवाइयों का प्रभाव था। उनके नाटक रंगमंच पर खेले जाने के उद्देश्य से लिखे गये थे। उन दिनो उनका एक दु:खान्त नाटक 'ललिता दु:खदर्शक नाटक' बहुत प्रसिद्ध था। उनका दूसरा प्रसिद्ध नाटक है, "जया कुमारी विजय।" वे मनसुखराम त्रिपाठी के मित्र थे। उनके नाटको मे कोई न कोई नैतिक उपदेश या उच्च आदर्श अवश्य है। यद्यपि उनके नाटक लंबे है और संवाद कुछ अस्त-व्यस्त तथा यत्र-तत्र गीतो एवं काव्यांशों से बहुत बोझिल हैं, तथापि रणछोड़ भाई की दृष्टि के सामने रंगमंच बराबर रहता था और उन्होने कुछ ऐसे नये तत्त्वो का समावेश किया, जिनके कारण नाटक अभिनय के योग्य हो जाता था। उन्होने अच्छे नाटको के प्रति लोगो मे रुचि उत्पन्न की और अपने नाटको मे नैतिक उपदेशो को रखकर उन्होने समाज को शिक्षित किया। एक अग्रणी होने के नाते उन्होने गुजराती नाटको की अच्छी परम्परा स्थापित की।

गणपतराम राजाराम

गणपतराम राजाराम आमोद के रायकवाड़ ब्राह्मण थे, जिनका जन्म १८४८ मे हुआ। वे दलपतराम के सिद्धान्तों के अनुयायी थे। वे लगभग ८ ग्रन्थो के रचयिता है। इनकी सर्वश्रेष्ठ कृति है 'प्रताप नाटक', जो १८८६ मे प्रकाशित हुआ था। यह नाटक बहुत ही सफल हुआ, जिससे लेखक को यश और धन दोनो प्राप्त हुए। इसमे वीर और करुण दो रस है। इन्होने कविता मे 'भड़ोच जिले मे शिक्षा का इतिहास' भी लिखा है, जिसमे काव्यगुण तो कम है, किन्तु जानकारी बहुत अधिक है। दलपतराम की शैली मे इनकी दो रचनाएँ है—'लीलावती कथा' और 'पार्वती कुँवर चरित'। इन्होने ४ भागों में 'लघु भारत' लिखा है, जिसे ये अपना सर्वोत्तम ग्रंथ मानते थे।

विजयाशंकर

विजयाशंकर 'विजय-वाणी' के रचयिता हैं, जो उनकी कविताओं का संग्रह है और १८८६ में प्रकाशित हुआ था। काव्य शैली की दृष्टि से वे नर्मदाशंकर के अनुयायी थे। इस संग्रह में उनकी २२५ कविताएँ संगृहीत हैं। ये नर्मदाशंकर-युग के द्वितीय कोटि के कवि हैं। 'सृष्टि सत्त्व' नामक इन्होंने एक गद्य-ग्रंथ भी लिखा है, जिसमें इन्होंने हिंदुओं के धार्मिक तथा दार्शनिक विचारों को संगृहीत करने की चेष्टा की है।

मनसुखराम

मनसुखराम सूर्यराम त्रिपाठी नदियाद के वडनगरा नागर ब्राह्मण थे, जिनका जन्म १८४० में हुआ था। वे बंबई में आकर बस गये तथा अनेक देशी रियासतों के सलाहकार थे। अतः इनका बहुत बड़ा प्रभाव था। इन्होंने गोवर्धनराम तथा अन्य लेखकों को प्रोत्साहित किया। स्वयं इनके रचे हुए लगभग १८ ग्रंथ हैं। इनकी भाषा संस्कृतबहुल है। ये प्राचीनतावादी थे और धार्मिक एवं नैतिक पवित्रता पर बहुत जोर देते थे। इनके ग्रंथों में भी मुख्यतः नीति और वेदान्त की ही चर्चा है। इनकी सर्वश्रेष्ठ कृति है "अस्तोदय अने स्वाश्रय"। इनकी भाषा संस्कृत शब्दों के भार से दबी हुई है, किन्तु जहाँ गंभीर विषयों का प्रतिपादन इन्होंने किया है, वहाँ निस्सन्देह इनकी शैली ने इनके लेखों की प्रतिष्ठा बढ़ा दी है। इन्होंने गोकुल जी झाला और फार्बस का जीवन चरित लिखा है। 'अस्तोदय' में इन्होंने व्यक्ति तथा समाज के उत्थान-पतन का वर्णन किया है और इसकी व्याख्या करने के लिए महाकाव्यों के चरित्रों का लिया है। संस्कृत शब्दों से पूर्ण इनकी शैली की कड़ी आलोचना रमनभाई ने "भद्रंभद्र" में की है।

हरगोविंददास काँटावाला

हरगोविंददास द्वारकादास काँटावाला खडायता वणिक् थे, जिनका जन्म १८४९ और देहान्त १९३१ में हुआ था। शिक्षा-क्षेत्र में उन्होंने बहुत उन्नति की और बड़ौदा राज्य के विद्याधिकारी हो गये साथ ही लूनावाडा

के दीवान बने। जैसे मनमुखराम सूर्यराम संस्कृतबहुल शब्दों की शैली के पोषक थे, वैसे हरगोविंददास ने सरल तथा बोलचाल के शब्दो से युक्त शैली को प्रधानता दी। मनीलाल और नवलराम ने इनकी इस अति सरल शैली की आलोचना की है। हरगोविंददास ने 'प्राचीन काव्यमाला' और बड़ौदा की प्राचीन काव्यमाला का संपादन किया। बड़ौदा मे इन्होंने और भी बहुत-सा संपादन-कार्य किया। यहीं से तथा कथित प्रेमानंद के नाटक और वल्लभ के आख्यान प्रकाशित हुए थे, जिनकी प्रामाणिकता का बहुत बड़ा विवाद भी इसी माला में आरम्भ हुआ था। हरगोविंद दास ने 'पानीपत' नामक काव्य की रचना की थी, जो देश-प्रेम की भावना मे पूर्ण है। इन्होंने दो कहानियां भी लिखी थी। एक थी "बे बहेनो" और दूसरी थी "अँधेरी नगरीनो गर्धव-सेन—एक उटग वार्ता"। दूसरी काल्पनिक कहानी थी, जिसमे देशी रियासतो के शासन मे गड़बड़ी, पतन और अयोग्यता का वर्णन था। अपनी पुस्तको "केलवणीनुं शास्त्र अने तेनी कला", "संसार-सुधारो" और "देशी कारीगरीने उत्तेजन" मे इन्होंने सामाजिक तथा शिक्षा-संबंधी समस्याओ पर विचार किया है। पहली पुस्तक के दो भागो मे इन्होंने शिक्षा के विषय पर बहुत विस्तार से विचार किया है। 'प्राचीन काव्यमाला' के अन्तर्गत इन्होंने अनेक ग्रंथो का संपादन किया है, किन्तु साथ ही वहाँ से प्रेमानंद तथा उनके शिष्यों के नाम पर अप्रमाणित ग्रंथ छपने का उत्तरदायित्व नाथालाल शास्त्री और छोटालाल नरभेराम के साथ-साथ हरगोविंददास पर भी है।

इच्छाराम सूर्यराम

इच्छाराम सूर्यराम देसाई सूरत के बनिया थे। बंबई मे उन्होने "गुजराती" नाम का एक साप्ताहिक पत्र गुजराती भाषा मे आरंभ किया। यह पत्र बहुत सफल और प्रसिद्ध हुआ। ये प्राचीनता का प्रचार और सुधारों के दोषो की आलोचना करते थे। इन्होंने ८ खंडों मे 'बृहत् काव्य दोहन' प्रकाशित किया था, जिसमें मध्यकालीन गुजराती साहित्य के कवियो के काव्य-ग्रंथ संगृहीत हैं। इन्होंने अपने पत्र के ग्राहको को पुस्तक रूप मे एक

वार्षिक उपहार देना आरंभ किया। ये वार्षिक पुस्तकें प्राय उपन्यास हुआ करती थीं, विशेषकर ऐतिहासिक।

मलबारी

बहराम जी महेराम जी मलबारी एक पारसी थे जिनका जन्म १८५३ में हुआ था। ये 'नीति विनोद', 'विल्सन विरह', 'अनुभविका' और 'संसारिका' के लेखक हैं। इन चारों में उनकी कविताएँ संगृहीत हैं। 'संसारिका' संग्रह सर्वश्रेष्ठ है। यद्यपि ये पारसी थे, किन्तु गुजराती की ओर इनकी अधिक रुचि थी। इनकी शैली दलपतराम की शैली है।

अम्बालाल साकरलाल

अम्बालाल साकरलाल देसाई का जन्म १८४८ में हुआ था। जीवन में उन्होंने अच्छी प्रतिष्ठा प्राप्त की और इनके अध्ययन, प्रभाव, ख्याति तथा सर्वप्रिय लेखों के कारण साहित्य-जगत में उनका अच्छा मान था। ये गुजरात के प्रथम एम० ए० तथा बड़ौदा हाईकोर्ट के प्रधान न्यायाधीश थे। उन्होंने अर्थशास्त्र पर एक पुस्तक लिखी, कोश का संकलन किया और साहित्यिक विषयों पर अनेक अध्ययनपूर्ण भाषण दिये। बहुत दिनों तक 'गुजरात वर्नाक्युलर सोसाइटी' के ये सभापति थे। इनके आर्थिक, राजनीतिक, शैक्षणिक तथा अन्य विषयों के निबंधों का एक संग्रह प्रकाशित हो गया है। ये मातृभाषा के माध्यम से शिक्षा देने के पक्ष में थे।

हरिलाल ध्रुव

हरिलाल ध्रुव अहमदाबाद के एक नागर थे। ये नर्मद युग और बाद के विद्वानों का मिलाजुला संयोजक सूत्र माने जाते हैं। उन्होंने कुछ ऐसी कविताओं की रचना की है, जो शब्द-कला की दृष्टि से दलपत और नर्मद से भी उत्तम हैं। ये संस्कृत के अच्छे विद्वान् थे और एक मासिक पत्र 'चन्द्र' का प्रकाशन करते थे। ये भी यूरोप गये थे और अपनी यात्रा पर आधारित कुछ कविताएँ लिखी थीं। ये प्रेम, वीरता और प्रकृति के गायक थे। देश प्रेम सम्बन्धी इनके गीत बहुत अच्छे हैं। इन्होंने संस्कृत के 'अमरु शतक', तथा

'शृंगार तिलक' का अनुवाद भी किया है। 'कुंज विहार', 'प्रवास', 'पुष्पावती' इनकी अन्य पुस्तकें हैं।

बालाशंकर

बालाशंकर उल्लासराम कथारिया नदियाद में उत्पन्न हुए थे। ये मनीलाल नभूभाई के सहपाठी और मित्र थे। ये 'बाल' उपनाम से कविताएँ लिखते थे। गुजराती मे गजल लिखनेवाले ये प्रथम कवि थे। गजलों में ये फारसी के सूफी कवियो का अनुकरण करते थे, विशेषकर हाफिज का। इनकी कुछ गजले बहुत अच्छी हैं। इन्होने गुजरात को सूफीमत की एक झलक दिखायी। १०१ शिखरिणी छन्दो मे लिखा हुआ "क्लान्त-कवि" काव्य इनकी सर्वश्रेष्ठ रचना है। इन्होने अपना सारा जीवन एक मस्त कवि के रूप मे बिताया। "क्लान्त-कवि" अत्यन्त कलापूर्ण रचना है।

गुजराती-साहित्य के निर्माण मे अनेक पारसियो ने भी योग दिया। सन् १८२२ मे फारदून जी मर्जबान ने 'मुंबई-समाचार' आरंभ किया। १८३२ मे 'जामे जमशेद' की स्थापना हुई। 'रास्त गोफ्तार' मे दादा भाई नौरोजी प्राय. लिखा करते थे। सोराबजी शापुरजी बगाली एक सुधारवादी थे और प्रगतिशील विचारो के प्रचार मे पूरा भाग लेते थे। उन्होंने जीवन-चरित लिखे और जरथुस्त धर्म, पारसी-समाज तथा ईरानी सभ्यता पर अपने विचार प्रकट किये। इनके निबध और लेख एक पुस्तक मे संगृहीत है। केखुशरो नौरोजी काबराजी ने नाटक तथा उपन्यास लिखे और पारसी-समाज पर अच्छा प्रभाव जमाया। इन्होने पत्रकारिता द्वारा भी गुजराती को योग प्रदान किया। ये सामाजिक सुधार के पक्षपाती थे। नानाभाई रुस्तम जी रानिना नर्मद के मित्र थे और इन्होने एक कोश का संकलन किया था।

नारायण, हीराचद कान्जी, शिवलाल धनेश्वर, वल्लभदास पोपट तथा और भी कई लेखको ने इस युग मे अपना-अपना सहयोग दिया।

अध्याय १३

गोवर्धनराम और मणिलाल

गोवर्धनराम

नर्मदाशंकर अपने समय के वास्तविक प्रतिनिधि—समय-मूर्ति—माने जाते हैं। यह वह काल था जब कि पश्चिम के साथ पहले-पहल सम्पर्क स्थापित हुआ था। इसे सुधारक-युग कहते हैं। १८८६ में नर्मदाशंकर की मृत्यु हुई। तब तक गुजराती साहित्य ने एक मोड ले लिया था। बम्बई विश्वविद्यालय स्थापित हो चुका था। वहाँ से पढकर निकलनेवाले कुछ व्यक्ति श्रेष्ठ लेखक हुए। कुछ नवीन प्रभाव भी अपना काम कर रहे थे। १८८५ में 'इडियन नेशनल काग्रेस' बन चुकी थी। 'लोकल सेल्फ गवर्नमेंट' (स्थानीय स्वशासन) के लिए आदोलन आरभ हो गये थे। रामकृष्ण, विवेकानन्द, थियोसाफिकल सोसाइटी, ब्रह्मसमाज, प्रार्थना समाज, आर्य-समाज—सभी आर्य सस्कृति और उसके सुधार का प्रचार कर रहे थे। दादाभाई नौरोजी, तिलक, फीरोजशाह-जैसे राजनीतिक नेताओं ने देश में जागृति उत्पन्न कर दी थी। विश्वविद्यालयो में सस्कृत के अध्ययन पर अधिक बल दिया जाने लगा था। विश्वविद्यालयो से निकले हुए नये विद्वान नर्मद-युग के विद्वानो की अपेक्षा अधिक प्रतिभाशाली और अध्ययनशील थे। १८८८ में नवलराम की मृत्यु हो गयी थी।

पिछले अध्याय मे यह बताया जा चुका है कि नर्मदाशंकर ने, जो अपने जीवन के आरम्भ में बहुत बडे सुधारक थे, जीवन के अंतिम दिनो मे अपने विचार बदल दिये और वे प्राचीन विश्वासो के प्रबल समर्थक बन गये। १८८५ में उन्होंने युवक विद्वान् मणिलाल नभूभाई को बधाई देकर प्रोत्साहित किया कि हिन्दू सस्कृति की रक्षा के मार्ग पर इसी प्रकार चलते रहो। लगभग उसी समय (१८८५) गोवर्धनराम ने अपने प्रसिद्ध उपन्यास 'सरस्वतीचन्द्र'

का प्रथम भाग लिखकर समाप्त किया था, जो १८८७ मे प्रकाशित हुआ था। उसी वर्ष (१८८७) नरसिंहराव भोलानाथ दिवेटिया ने 'कुसुममाला' नाम से अपनी कविताओ का प्रथम सग्रह प्रकाशित किया, जिसने काव्य को एक नया मोड दिया। इस प्रकार नर्मदाशकर की मृत्यु तक तीन नये विद्वान्—गोवर्धनराम, मनीलाल और नरसिंहराव—आगे आ चुके थे और इन तीनो मे से प्रत्येक अपने ढंग के बहुत ही योग्य विद्वान् थे। इनका सस्कृत तथा अँग्रेजी का अध्ययन बहुत गभीर था; इन्हे विश्वविद्यालय की शिक्षा मिली थी, ये परिश्रमी, सक्षम तथा योग्य थे; ये बहुपठित थे और अपने विषय को प्रभावशाली एव गौरवपूर्ण शैली मे व्यक्त करने की शक्ति रखते थे। इनकी भाषा अधिक शुद्ध, कलात्मक और सुसस्कृत थी। इन्हे प्रकृति-प्रदत्त प्रतिभा भी अधिक प्राप्त थी। इनके समय मे भाषा-रचना की अधिक शैलिया विकसित हो गयी थी और रचित साहित्य भी विविध एवं मूल्यवान् था, जिसकी कुछ कृतियो को विश्व-साहित्य तक मे सम्मान प्राप्त हुआ। इस काल को "पडित-युग" भी कहते है।

आयु तथा श्रेष्ठता, दोनो दृष्टियो से गोवर्धनराम माधवराम त्रिपाठी इस युग के सर्वोत्तम नेता है। ये नदियाद के वडनगरा नागर ब्राह्मण थे। इनका जन्म बबई मे विजयादशमी के दिन १८५५ मे हुआ था। इनकी शिक्षा बबई के "बुद्धिवर्धक स्कूल' और एल्फिस्टन 'कालेज' मे हुई। अपने सनातन-धर्मी चाचा मनसुखराम त्रिपाठी से ये बहुत अधिक प्रभावित थे। १८७५ मे इन्होने बी० ए० पास किया, किन्तु उसी वर्ष इनके पिता का शराफी-व्यवहार बद हो गया। १८७९ से १८८३ तक गोवर्धनराम भावनगर, के दीवान शामलदास के प्राइवेट सेक्रेटरी रहे। इस पद पर रहने से आपको सौराष्ट्र की देशी रियासतो तथा उनकी कार्य-प्रणाली को देखने का अवसर मिला। १८८३ मे ये बबई लौट आये और हाईकोर्ट मे वकालत करने लगे। १५ वर्ष तक इन्होने वकालत की और ४३ वर्ष की आयु मे, जब कि ये प्रतिष्ठा प्राप्त कर चुके थे और इनकी वकालत शिखर पर थी, सब छोड़-छाड़कर अपने पूर्व सकल्प के अनुसार ये नदियाद चले गये और वही शेष जीवन साहित्य तथा दर्शन के अध्ययन-सर्जन मे बिताया। इनके प्रसिद्ध उपन्यास 'सरस्वती चन्द्र'

का प्रथम भाग १८८७ मे, द्वितीय भाग १८९२ में तथा तृतीय भाग १८९८ में प्रकाशित हुआ। ये तीनो भाग तब प्रकाशित हुए, जब ये बबई मे थे। इनका चतुर्थ भाग, जिसमें इनके विचारो का सार है, १९०१ में प्रकाशित हुआ था, जब कि ये नदियाद मे थे। वहाँ ये साहित्य, दर्शन तथा योग के अध्ययन में समय बिताते थे। ये योग का भी कुछ अभ्यास करते थे। कहते है कि इसी कारण से १९०६ मे इनका स्वास्थ्य बिगड गया और १९०७ में उनकी मृत्यु हो गयी।

उनकी रचनाएँ है—"सरस्वती चन्द्र" (४ भागो में) यह उनकी ख्याति का अत्यन्त गौरवपूर्ण स्मारक है, काव्य-सग्रह "स्नेह मुद्रा", "नवलरानो जीवन कथा", अँग्रेजी मे "क्लासिकल पोएट्स आफ गुजरात" (गुजरात के प्रतिष्ठित कवि), "लीलावती जीवन कला", इसमें उनकी पुत्री का कुछ जीवन-वृत्त है, "दयारामतो अक्षरदेह", "साक्षर जीवन", सस्कृत में "हृदय रुदित शतकम्" आदि। १९०५ मे प्रथम 'गुजराती साहित्य परिषद्' के ये सभापति चुने गये। उसमे इन्होंने सभापति पद से अत्यन्त पाण्डित्यपूर्ण भाषण दिया। इन्होंने धर्म, दर्शन, अर्थशास्त्र तथा साहित्यिक विषयो पर भी अनेक निबंध एव लेख लिखे हैं, और कई-कई पद्यो की रचना की है इनकी रचनाएँ गुजराती, अँग्रेजी तथा कुछ सस्कृत म भी है। "अध्यात्म जीवन" इनकी अपूर्ण कृति है, जिसका प्रकाशन १९५५ में इनकी शताब्दि-उत्सव के अवसर पर हुआ।

गोवधनराम का ग्रथ "सरस्वती चन्द्र" कई दृष्टियो से इस युग का सर्वोत्तम ग्रथ है। पडित-युग का यह अत्यत सफल ग्रथ है, जो समस्त गुजराती साहित्य में बहुत ऊँचा स्थान प्राप्त करने की क्षमता रखता है। चार भागोवाले इस ग्रथ में रचयिता ने पूर्व और पश्चिम की सस्कृतियो का सतर्क वर्णन किया है साथ ही इसमें भारत का गत गौरव भी है। समाधान के रूप में विद्वान प्रणेता ने अपना सामजस्य उपस्थित किया है, जिसे वह इस युग के लिए उपयुक्त समझता है। इसमें पूर्ण जीवन-दर्शन की व्याख्या है, धर्म, सस्कृति, नीति, अध्यात्म तथा समाज-विधान का वर्णन है, तत्कालीन देशी रियासतो की विद्वता एव प्रतिभा के दर्शन होते है, तथा जब से यह प्रकाशित हुआ तब से

बहुत दिनों के लिए इसने गुजरात के लोगों का मन जीत लिया है। इसमें प्राय वे सभी विषय है, जिन पर लेखक कुछ विशेष रूप से कहना चाहता था। अतः इसका स्वरूप कुछ-कुछ विश्वकोष-सा हो गया है। एक प्रख्यात आलोचक ने इसे पुराण की संज्ञा दी है। गुजराती साहित्य मे इसका एक स्थायी स्थान बना लेना उचित ही है। यह कलापूर्ण ग्रंथ है। लेखक ज्ञान प्रदान करना चाहता था, किन्तु उस कार्य को आदेशात्मक ढंग से न करके उसने कलात्मक ढंग से 'नावेल' अथवा महानवल के रूप में किया है।

'सरस्वती चन्द्र' उपन्यास का नायक युवक, सुन्दर, अति शिक्षित और सभ्य है, किन्तु अत्यन्त भावुक भी है। वह एक धनी पिता का पुत्र है, और उसकी सगाई कुमुद से हुई, जो युवती, कोमलाङ्गी, सुन्दरी और सुशीला थी। अपनी सौतेली मा के व्यवहारो से तंग आकर नायक अपना घर और कुमुद को छोड़कर विस्तृत ससार में अनुभव प्राप्त करने के लिए निकल पड़ता है। कुमुद के माता-पिता उसका विवाह प्रमादधन नाम के एक क्षुद्र व्यक्ति से कर देते हैं। कुमुद अपने नये घर में बहुत दुखी रहती है। नायक सरस्वती चन्द्र वेष बदलकर प्रमादधन के पिता बुद्धिधन के पास आता है, जो एक देशी रियासत का मंत्री था। यही सरस्वतीचन्द्र और कुमुद की भेंट होती है। किन्तु एक विवाहित स्त्री होने के नाते कुमुद अपनी प्रतिष्ठा को सुरक्षित रखती है, यद्यपि उसके मन मे नायक के प्रति प्रगाढ़ प्रेम था। कुमद की व्यथा दूर करने के उद्देश्य से सरस्वतीचन्द्र वहा से चला जाता है। अन्त मे वे दोनों सुन्दरगिरि पर मिलते हैं, जहाँ महन्त विष्णुदास ने एक आश्रम स्थापित किया था। तब तक प्रमादधन की मृत्यु हो चुकी थी। यदि चाहते तो सरस्वतीचन्द्र और कुमुद परस्पर विवाह कर सकते थे, किन्तु लेखक ने कुमुद के प्रेम को बहुत ऊँचा उठाया है, जिसमे वासना की गंध नही थी। कुमुद के कहने से सरस्वती चन्द्र ने उसकी छोटी बहन कुसुम से—जो युवती, सुन्दरी, उच्च शिक्षिता और उत्साही थी—विवाह कर लिया।

इस विशाल ग्रंथ के प्रथम भाग मे नायक-नायिका का प्रेम वर्णित है। दूसरे भाग में आदर्श सम्मिलित परिवार का तथा इसकी प्रमुख स्त्री सदस्या कर्ता की पत्नी के कार्यों का वर्णन है। तीसरे भाग मे लेखक ने बड़ी सूक्ष्मता

ने देश की उस राजनीतिक स्थिति का अवलोकन किया है, जो पश्चिम के सम्पर्क से उपस्थित हुई थी और साथ ही देश के समूचे जीवन तथा संस्कृति पर पश्चिम के पड़े हुए प्रभाव पर विचार किया है। लेखक ने लक्ष्यालक्ष्य दर्शन पर संस्कृत में एक अध्याय लिखा है। चौथे भाग में लेखक महन्त विष्णुदास के आश्रम का वर्णन करता है। वहीं उसने कल्याण ग्राम की योजना दी और इस विशाल भाग में लेखक कुछ गंभीर विषयों पर चर्चा करता है, देश का भविष्य बताता है और अपने अनुभवों का सार प्रकट करता है। इन चार भागों में उसने प्रसिद्ध चारों पुरुषार्थों का विवेचन किया है। वह अपने समय का प्रधान चिंतक था—केवल गुजरात का ही नहीं वरन् पूरे भारत का। आदि से अन्त तक उसकी सूक्ष्म दृष्टि और विद्वत्ता का परिचय मिलता है। एक कलापूर्ण उपन्यास के सभी लक्षण इस ग्रंथ में हैं। इसमें अनेक पात्र हैं। लेखक का उद्देश्य बहुत ऊँचा था। उपन्यास तो उसके विचार-प्रदर्शन का एक माध्यम था। इसीलिए कथावस्तु कुछ मंद और ढीली पड़ गयी है, उसके सभी पात्रों का विकास भी पूर्णता से नहीं हुआ। तीसरे और चौथे भाग में दार्शनिक विवेचन के पृष्ठ के पृष्ठ भरे हैं और अन्यत्र बहुत महत्त्वपूर्ण होते हुए भी निस्सन्देह उपन्यास को अरुचिपूर्ण बना देते हैं। विभिन्न विषयों के वर्णन की शैली का सामञ्जस्य ठीक नहीं है। विशेषकर चौथे भाग में। किन्तु इन दोषों के होते हुए भी यह एक महान् ग्रंथ है और महान् रहेगा। गुजरात की जनता पर इसका बहुत बड़ा प्रभाव है तथा तत्कालीन एवं कुछ वर्ष बाद के लेखकों पर भी इसका अच्छा प्रभाव पड़ा, विशेषकर प्रथम भाग प्रकाशित होने के बाद सन् १८८७ से लेकर लगभग १९१५ तक।

लेखक ने ११० कड़ियों में 'स्नेह मुद्रा' नाम का एक काव्य लिखा है, जिसका मुख्य रस करुण है। इसकी कथावस्तु बहुत उलझी हुई है और रचयिता ने प्रौढ़ शैली की रचना का प्रयास किया है। कई स्थलों पर काव्य बड़ा दुरूह हो गया है। यह शीघ्रता से रचा गया प्रतीत होता है और काव्य की दृष्टि से यह साधारण कोटि का है। किसी भी प्रेम के प्रति लेखक की कितनी उच्च धारणा है, इससे प्रकट होता है और इसमें कुछ अंश अत्यन्त भावपूर्ण तथा बहुत गंभीर हैं।

'साक्षर-जीवन' लेखक का एक अपूर्ण ग्रंथ है, जिसमें उसने मनुष्य के उच्च आदर्शों का वर्णन किया है और मानव को पशुवृत्ति को नियंत्रित करने की बात कही है। इसी प्रकार 'अध्यात्म-जीवन' भी एक अपूर्ण ग्रंथ है, जिसमें लेखक के दार्शनिक विचार और मूल चिंतन है। लेखक ने अंग्रेजी में भी एक पुस्तक लिखी है "द क्लासिकल पोएट्स आफ गुजरात"—(गुजरात के महान् कवि)। इसमें उसने मध्यकालीन गुजराती साहित्यके लेखकों एवं कवियों का मूल्यांकन किया है और उनके विषय में अपने विचार प्रकट किये हैं। नवलराम का जीवन चरित भी लेखक ने बड़ी सहानुभूति के साथ लिखा है। ('लीलावती जीवन कला' लेखक ने अपनी पुत्री लीलावती की असामयिक मृत्यु के पश्चात् लिखी थी।) इसमें उसने अपनी पुत्री का जीवन और उसकी कुछ गंभीर समस्याओं का वर्णन किया है। 'दयाराममनो अक्षर देह' में उसने दयाराम के सिद्धान्तों को समझाने की चेष्टा की है, जो पुष्टिमार्गीय वल्लभ सम्प्रदाय के अनुयायी थे। गोवर्धनराम वेदान्ती के शांकरमत के विशिष्ट विद्वान् थे। उनके समय में वल्लभ संप्रदाय के मत तथा दर्शन का अध्ययन भली-भांति नहीं होता था। इसीलिए गोवर्धनराम ने दयाराम के कुछ पदों का अर्थ कुछ का कुछ किया है। स्वयं दयाराम ने भी कई स्थलों पर सिद्धान्तों का शुद्ध प्रतिपादन नहीं किया। इस पर भी यह ग्रंथ गोवर्धनराम की दार्शनिक अंतर्दृष्टि का परिचय देता है और दयाराम के काव्य एवं दर्शन की कुछ अच्छी बातों पर प्रकाश डालता है।

गोवर्धनराम की रचना पढ़ते ही उनकी विद्वत्ता, गहन अध्ययन और पुष्टता का प्रभाव मन पर पड़ता है। उनकी शैली एक विद्वान् की है, जिसमें संस्कृत शब्दों की अधिकता है, किन्तु उसमें एक प्रवाह और ताजगी है।

गोवर्धनराम अपने युग के ऋषि माने गये हैं, जो 'संगम युग' या 'पंडित युग' कहलाता है। इस युग में पूर्व और पश्चिम की संस्कृतियों का संघर्ष उपस्थित हुआ था, जिसके सामञ्जस्य की कल्पना गोवर्धनराम ने की थी। १८८७ से १९१५ तक पूरा काल 'गोवर्धनयुग' के नाम से कहा जाता है, क्योंकि इस काल के यही प्रमुख साहित्यकार थे।

मणिलाल

मणिलाल नभूभाई द्विवेदी—एक साठोदरा नागर,—नदियाद रहनेवाले थे। इनका जन्म २६ सितंबर, १८५८ को हुआ था। ये संस्कृत के महापंडित थे। इनकी ख्याति यूरोप और अमेरिका तक फैल गयी थी। कुछ दिनों तक ये बंबई में शिक्षा-निरीक्षक थे, बाद में भावनगर कालेज में संस्कृत के प्राध्यापक हुए और जीवन के अंतिम दिनों में इन्होंने बड़ौदा सरकार के लिए साहित्यिक शोध-कार्य किया। ४१ वर्ष की अल्पायु में इनका देहान्त हो गया। इस थोड़े से जीवनकाल में भी गुजराती काव्य में इनका विशेष सहयोग-दान है—गद्य की, विशेषकर निबन्ध-लेखन की, स्थिति सुदृढ़ की। इनका गद्य सशक्त, उच्चकोटि का, संतुलित, विचार-प्रधान, पाण्डित्यपूर्ण है, साथ ही स्पष्ट, शास्त्रीय तथा प्रवाहपूर्ण है। 'प्रियंवदा' तथा 'सुदर्शन' मासिक पत्रों का संपादन भी इन्होंने किया। इनमें दूसरे का प्रकाशन पहले के बाद हुआ। सुधार-क्षेत्र, हिन्दुत्व, केवलाद्वैत दर्शन तथा सामाजिक समस्याओं के मामले में उन्होंने अधिकांश लोगों का मार्ग-दर्शन किया है। उन्होंने संरक्षक वृत्ति धारण की थी और सर रमणभाई महीपतराम नीलकंठ से—जो सुधारवादी और प्रार्थना समाज के अनुयायी थे तथा जिन्होंने 'ज्ञान सुधा' लिखा था—बहुत समय तक विवाद चलाया था। जिस समय मणिलाल ने जन मत को सुधारने का कार्य आरंभ किया, उसी समय थियासोफी ने अपना कार्य शुरू किया था। इसके प्रभाव में आकर मणिलाल ने धर्म-ग्रंथों, दर्शन-ग्रंथों तथा संस्थाओं का सूक्ष्म परीक्षण किया और सुधार के प्रश्न पर धर्म तथा दर्शन की दृष्टि से विचार किया। नर्मदाशंकर ने अपने अंतिम दिनों में सुधार की ओर से मन हटा लिया था और वे प्राचीनतावादी हो गये थे। अपने अंतिम समय में उनकी आशा मणिलाल पर टिकी थी, जो अभी युवक ही थे। किन्तु मणिलाल की विद्वत्ता एवं सामग्री नर्मदाशंकर से कहीं उच्च कोटि की थी। मणिलाल ने सुधार पर हिंदू धर्म के मूल तत्त्वों की दृष्टि से विचार किया था, किन्तु सुधार मात्र से उन्हें घृणा नहीं थी। वे सुधारों के विरोधी नहीं थे, वे तो उन दोषों और कुरीतियों को दूर करने के इच्छुक थे, जो उस समय के सुधारवादियों में आ गयी थीं। अपने मत को वे 'सत्य सुधार' कहते

मे प्रकट करते थे तथा सबमे बड़ी विशेषता यह थी कि सभी का मूल्यांकन ये अद्वैत भावना के आधार पर करते थे। किन्तु श्री रमणभाई की साहित्यिक आलोचनाओं मे पाश्चात्य आलोचना-शैली एव परपरा की जो झलक मिलती है, वह मणिलाल मे नही पायी जाती।

जीवन के अतिम काल मे इन्होने शोध-कार्य किया, विशेषकर बड़ौदा सरकार के लिए इन्होने प्राचीन हस्तलिपियों की सूची तैयार की। इन्होंने कुछ सस्कृत ग्रथो का सपादन अथवा अनुवाद भी किया। भवभूति के नाटकों के अनुवाद बडे ललित है। 'महावीर चरित' का इनका अनुवाद अभी भी अप्रकाशित है। लार्ड लिटन के उपन्यास 'जेनानी' के अनुकरण पर मणिलाल ने 'गुलाबसिंह' नाम का उपन्यास गुजराती मे लिखा। यह अनुवाद नही है। यद्यपि मणिलाल अच्छी तरह जानते थे अनुकरण के लिए इन्होने जिस उपन्यास को चुना है, वह प्रथम कोटि का नही है, फिर भी उन्होने उसे चुना क्योकि वह उनकी प्रकृति और उनकी विचार-पद्धति के अनुरूप था। मणिलाल के समय मे ही उनका उपन्यास 'गुलाबसिंह' और गोवर्धनराम का 'सरस्वती चन्द्र' दोनो विचार-प्रेरक ग्रथो मे सर्वोत्तम माने जाते थे।

काव्य-क्षेत्र में मणिलाल ने कई गीतो की रचना की है, जो लोकगीत और भजन है तथा संस्कृत छन्दो मे बद्ध कुछ काव्य भी है। इन्होने पृथ्वी छद का भी उपयोग किया है, जिसे बाद मे बलवंतराय ठाकोर ने अधिक प्रसिद्ध किया। बालाशकर के संपर्क के कारण मणिलाल मे फारसी कविता का शौक भी था। इन्होने लगभग १२ गजलें लिखी है, जिनमे सूफियो का प्रेम निहित है। उनके कुछ आलोचकों ने यह सकेत किया है कि सूफीमत के माध्यम से वेदान्त दर्शन के सिद्धान्तों को प्रतिपादित करने का उनका प्रयास कृत्रिम था। श्री के० एम० जवेरी ने उनकी गजलों मे दोष भी निकाले है। किन्तु मणिलाल के गीत और भजन पठनीय है, जिनमे काव्य-कल्पना एवं भावना है। कुछ गीतो से मणिलाल की प्रेम एव अद्वैत की भावना का ठीक-ठीक परिचय मिलता है।

मणिलाल का महत्त्व एक गद्य-लेखक तथा गंभीर, दार्शनिक एवं चिंतनपूर्ण साहित्य के आलोचक की दृष्टि से बहुत अधिक है। उनका 'सिद्धान्तसार' इस भूमि के दार्शनिक चिन्तन का स्पष्ट वर्णन करता है। इन्होने योग, अद्वैत,

माण्डूक्योपनिषद् तर्क कौमुदी, स्याद्वाद आदि पर अंग्रेजी में लिखा है, तथा इनके लेख बड़ी रुचि के साथ यूरोप-अमेरिका में पढ़े जाते थे। सर एडविन आर्नाल्ड ने इनकी बड़ी प्रशंसा की है और लिखा है कि मणिलाल से सुभाषण करना उनका सौभाग्य था। मणिलाल को भारत के परम्परागत ज्ञान पर बड़ा गर्व था और शास्त्रीय अध्ययन के कारण वे अपने मत का बहुत अच्छी तरह पुष्ट करते थे। उनके विचार उदार थे और उनके सभी लेखों में एकता का उद्देश्य रहता था। ऐसा कहा जाता है कि उनका उद्देश्य एक उपदेशक का था, न कि एक विद्वान् का। वे अपने को अभेदमार्ग प्रवासी कहते थे। इसी विश्वास पर उनका सारा जीवन और कार्य व्यापार यहाँ तक कि साहित्यिक गतिविधि भी आधारित थी। ४१ वर्ष की अल्पायु में उनकी मृत्यु हो गयी, किन्तु इस छोटे जीवन में भी इन्होंने अपने साहित्यिक कार्यों से विशेषतः धार्मिक एवं दार्शनिक क्षेत्र में अपना महत्वपूर्ण स्थान बना लिया है।

अध्याय १४

नरसिंहराव और रमणभाई

नरसिंहराव

नरसिंहराव भोलानाथ दिवेटिया का जन्म १८५९ ई० मे हुआ था। इनके पिता भोलानाथ अहमदाबाद के प्रार्थना-समाज के संस्थापक थे। परिवार अत्यन्त सस्कारी और शिक्षित था। नरसिंहराव ने प्रथम श्रेणी में बी० ए० पास किया और संस्कृत मे प्रथम आने के कारण भाऊदाजी पुरस्कार प्राप्त किया। एम० ए० पास करने के पहले ही बबई सरकार के कर-विभाग मे उन्होने नौकरी कर ली। कर-अधिकारी होने के कारण इन्हे अनेक स्थानो का भ्रमण करना पड़ा, जिससे प्रकृति के विविध रूपो के दर्शन तथा विभिन्न भाषा-भाषियो के संपर्क मे आने का अवसर इन्हे मिला। प्रकृति के इस सूक्ष्म निरीक्षण का उपयोग इन्होने एक कवि तथा भाषा-शास्त्री के नाते किया। सन् १९१२ मे इन्होने सरकारी नौकरी से अवकाश ग्रहण किया। सन् १९२१ मे बंबई के एल्फिन्स्टन कालेज में आप गुजराती के अवैतनिक प्राध्यापक हो गए। वहा रहकर आपने युवक विद्वानो को पढाया, प्रेरणा दी और प्रोत्साहित किया।

नरसिंहराव एक प्रमुख साहित्यकार थे। वे कवि, आलोचक, दार्शनिक और गुजराती भाषा के अग्रगण्य भाषाशास्त्री थे। वे एक दृढ सुधारवादी भी थे, साथ ही साथ भगवान् पर उनका अटूट प्रेम और विश्वास था। उनका अध्ययन गहन था, उनकी स्मरणशक्ति तीव्र थी और सभी मामलो मे वे विधि का पूर्ण-रूपेण पालन करना चाहते थे। एक प्राध्यापक की हैसियत से भी किसी उलझन या भाषा सबधी प्रश्न के लिए कई घटे बिता देने को तैयार थे और जबतक कोई समाधान न मिल जाता, तब तक उन्हे संतोष न होता था। प्राय. किसी कठिन वाक्य-विन्यास के सबध मे वे अपना अंतिम निर्णय तब तक स्थगित रखते थे, जबतक काशी मे रहने वाले आनंदशंकर ध्रुव से पत्र द्वारा सम्मति न प्राप्त कर

रहे थे। नरसिंहराव पर रामकृष्ण गोपाल भंडारकर के विद्यार्थी थे, जो 'संस्कृत स्टडीज इन वेस्टर्न इंडिया' के सबसे पुराने और प्रमुख सदस्य थे। उन्हीं से इन्हें संस्कृत भाषा के प्रति प्रेम तथा भाषा-विज्ञान के प्रति उत्कट रुचि प्राप्त हुई।

अपने पिता भोलानाथ तथा गुरु भंडारकर की भाँति नरसिंहराव भी प्रार्थना-समाज तथा सुधारवादी विचारों पर विश्वास रखते थे। जिस प्रकार गोवर्धन-राम और मणिलाल भारतीयता के कुछ अच्छे अंगों की ओर—विशेषकर धर्म और दर्शन की बातों में—जनता का मन आकर्षित करने की चेष्टा कर रहे थे, उसी प्रकार नरसिंहराव और रमणभाई अपने-अपने ढंग से हिन्दू धर्म तथा समाज की कुछ रीतियों की आलोचना कर रहे थे तथा सुधारवाद का प्रचार कर रहे थे। इस प्रकार नर्मदाशंकर ने अपने आरंभिक जीवन में जिस काम को आरंभ किया था तथा अन्य लोगों ने भी जिसे अपनाया था, उसे नरसिंहराव ने आगे बढ़ाया।

नरसिंहराव कई काव्य-संग्रह के रचयिता हैं, वे हैं 'कुसुममाळा', 'हृदयवीणा', 'नूपुर झंकार', 'स्मरण संहिता', तथा 'बुद्धचरित'। उनकी गद्य-रचनाएँ हैं—'मनोमुकुर' (४ भागों में), 'स्मरण मुकुर', 'विवर्तलीला', 'अभिनय कला' और 'नरसिंहराव की रोजनीशी'। बंबई विश्व विद्यालय में इन्होंने 'विल्सन फाइलो-लाजिकल लेक्चर्स' नाम से भाषा विज्ञान पर अंग्रेजी में कई भाषण दिए, जिनका संग्रह 'गुजराती लैंग्वेज ऐंड लिटरेचर' (गुजराती भाषा और साहित्य) नाम से हुआ है। वहीं इन्होंने 'ठक्कर वसनजी लेक्चर्स' के अंतर्गत भी कई भाषण दिये।

नरसिंहराव का प्रथम काव्य-संग्रह 'कुसुममाळा' सन् १८८७ ई० में प्रकाशित हुआ था। इसका प्रभाव कुछ विचित्र पड़ा। एक ओर रमणभाई जैसे आलोचकों ने इसे मरुभूमि का हरा-भरा स्थान बताकर प्रेमानंद तथा अंग्रेज कवि बायरन से भी अधिक श्रेष्ठ समझा। किन्तु दूसरी ओर कुछ आलोचकों ने इसे 'गोल्डन ट्रेजरी' के चतुर्थ भाग का—विशेषकर वर्ड्सवर्थ की कविताओं का—अनुकरण-मात्र माना। फिर भी अविवादी ने, जिनमें निष्पक्ष आलोचक आनंदशंकर जैसे भी हैं, इस संग्रह की सराहना की है। पश्चिम से प्रभावित आधुनिक कविता यद्यपि नर्मदाशंकर के समय में ही आरंभ हो गयी थी, किन्तु इसका कलात्मक रूप प्रथम बार नरसिंहराव की रचनाओं में ही पाया गया। एक आलोचक ने

इन्हे आधुनिक कविता की गगोत्री माना है, दूसरे ने शकुंतला रूपी आधुनिक कविता का कण्व इन्हे कहा है। इनकी रचनाओ के अंतर्मुखी तत्त्व-भाव ने रमण-भाई को इतना प्रभावित किया कि उन्होंने लिखा, "उत्तम काव्य 'गीत-काव्य' है; इसमे अतर्मुखी तत्त्व तथा भावो की प्रमुखता होनी ही चाहिए।"

नरसिंहराव ने बडी सुन्दरता से काव्य मे अंतर्मुखी तत्त्व प्रविष्ट किया है। महान् एवं गौरवपूर्ण विषयो मे, प्राकृतिक सौंदर्य की अभिव्यक्ति मे, काव्यात्मक चितन मे तथा अन्तर्द्वन्द्वो के चित्रण मे इनका मन विशेष रूप से लगता था। 'स्मरण संहिता' मे—जो उनके पुत्र की मृत्यु पर लिखा शोकगीत है—करुणा, विश्वास, आत्मसयम, मानव-गौरव, प्रभु-समर्पण आदि तत्त्व बडी सुन्दरता के साथ सन्निविष्ट किये गये है और वस्तुत समस्त भारतीय साहित्य मे इस रचना का एक विशिष्ट स्थान है। इनमे से कई तत्त्व गुजराती साहित्य मे पहली बार सन् १८८७ ई० मे वे लाये।

इन्होने आन्तरिक सघर्ष के साथ-साथ काव्य मे कल्पना तथा विचार का प्रवेश कराया; इनका प्रस्तुतीकरण कलात्मक है; भावो के उपयुक्त शब्दो का उपयोग हुआ है और छन्द भी काव्य-विषय के उपयुक्त चुना गया है। ये ऐसी विशेषताएँ है जो इनके पूर्ववर्ती कवियो मे कुछ अशो तक नही पायी जाती थी। पहली बार इन विशेषताओ को प्रकट करने के कारण ही इन्हे आधुनिक काल के सच्चे मार्ग-दर्शक होने का गौरव प्राप्त हुआ।

'कुसुम माला' का प्रधान विषय है प्रकृति और प्रेम। इसके गीत उस समय के है, जब कवि तरुण था। इसीलिए ये गीत कवि के तरुण उत्साह एव जीवन के आनद का आभास देते है। शीघ्र ही इन गीतो ने शिक्षित व्यक्तियो को आकर्षित किया। दूसरा काव्य-संग्रह था 'हृदय-वीणा'। जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, कवि का मन प्रकृति से हटकर हृदय की गहन भावनाओ की ओर मुड़ गया। इसी सग्रह मे कुछ खड काव्य भी है। इसमे आये हुए विषयो का क्षेत्र भी अधिक विस्तृत है। कई गीतों मे चिन्तन का तत्त्व प्रमुख है, साथ ही विषाद की भी ध्वनि है। कवि ने कुछ बहिर्मुखी कविताओ की भी रचना की है। तृतीय काव्य-सग्रह 'नूपुर-झंकार' मे कुछ अच्छे खडकाव्य है, जैसे 'चित्र विलोपन' और 'तद्गुण'। यह ग्रथ कवि की परिपक्व अवस्था का लिखा हुआ है। इसमें

भी चिन्तन तत्त्व की प्रधानता है। कवि ने बुद्ध चरित की कुछ घटनाओं का वर्णन बड़े अनूठे ढंग से किया है। 'बुद्धचरित' शीर्षक से इन कविताओं का संग्रह हुआ है। 'स्मरण संहिता' कवि के ज्येष्ठ पुत्र की मृत्यु पर लिखा गया शोकगीत है, जिसमें दार्शनिक विचारों एवं भगवान् की भक्तिपूर्ण समर्पण की सहायता से असह्यवेदना का दमन करना बताया गया है। टेनीसन के 'इन मेमोरियम' के ढंग पर यह एक करुणप्रशस्ति है। जीवन-मरण के गंभीर प्रश्न पर वास्तविक ढंग से इस पर विचार किया गया है। यह कवि की सर्वोत्तम कृति है और आधुनिक भारतीय साहित्य के उत्तम ग्रंथों में से एक है।

यद्यपि नर्रसिंहराव के खंड काव्यों की अपेक्षा कान्त के खंड काव्य अधिक श्रेष्ठ हैं, किन्तु लघुगीतों में वे सबसे आगे बढ़ गये हैं। उनका प्रकृति प्रेम उन्हें वर्ड्सवर्थ की कविताओं से प्राप्त हुआ है। उनका लक्ष्य था अंग्रेजी-काव्य के कुछ श्रेष्ठ तत्त्वों का गुजराती साहित्य में समावेश करना। इस उद्देश्य में वे विशिष्ट प्रकार से सफल हुए हैं, किन्तु अपनी कुछ सीमाओं के साथ। उनकी सीमाएँ हैं—भाषा-शुद्धता एवं विशिष्ट शैली के प्रति रुचि, विषय एवं भावों की पुनरावृत्ति, विस्तार और परवर्ती कवियों की अपेक्षा भावों का कुछ सीमित प्रवाह।

गुजराती साहित्य में एक आलोचक के रूप में नर्रसिंहराव का स्थान बहुत ऊँचा है। उनका कहना था कि एक अच्छे आलोचक को कवि और विद्वान् होना ही चाहिए। कवि तथा आलोचक दोनों के पास प्रतिभा एवं कल्पना का होना आवश्यक है। कवि समन्वय करता है, और आलोचक विश्लेषण। उनकी साहित्यिक आलोचनाएँ 'मनोमुकुर' के ४ भागों में संगृहीत हैं। उनकी आलोचना-पद्धति इस प्रकार है—पहले वे पुस्तक के सब दोष सामने रखते हैं, फिर संक्षेप में पुस्तक की सामग्री देते हैं, अंत में वे पुस्तक के कुछ गुणों और लेखक की विशेषताओं का विश्लेषण करते हैं। वे सहानुभूतिपूर्वक एक कलाकार की दृष्टि रखते हुए ग्रंथ की अच्छाइयों पर प्रकाश डालते हैं। उनका विश्लेषण अत्यन्त सूक्ष्म और मर्मपूर्ण होता है, उनका मत संतुलित और पाश्चात्य-साहित्यिक-आलोचना तथा संस्कृत-अलंकार-शास्त्र के सिद्धान्तों के अनुकूल तर्कों पर आधारित होता है। उनके तर्क विद्वत्तापूर्ण

तथा जानकारी देनेवाले है। कभी-कभी आलोचित पुस्तक के कुछ अंशो की वे विस्तृत व्याख्या आरभ कर देते है। निस्सन्देह ऐसा करने मे उनका उद्देश्य रहता है कि किसी विशेष अंश का रस पूर्णतया प्रकट हो जाय। किन्तु यह शैली उन्हे भाष्यकार का रूप प्रदान कर देती है। कई बार उन्होंने अपनी रचनाओ की तुलना दूसरो की रचनाओ से करके उदारतापूर्वक उनकी प्रशसा की है। जब वे दोष निकालते है तो यह काम भी पूरी तरह से करते है। वर्ण-विन्यास, व्याकरण, शब्द-प्रयोग तथा भाषा-शुद्धता के विषय में ये बहुत कट्टर है। कभी-कभी लबे और सूक्ष्म विचारो मे ये अनुपात खो बैठते है, जिनमे सस्कृत के प्रसिद्ध भाष्यकारों का स्मरण हो जाता है। ऐसी दशा मे इनकी शैली रुक्ष, उद्धरणबहुला, विषम और विस्तारपूर्ण हो जाती है। तब एक निबध के गुण उसमे नही रह जाते। ये विवादो के बड़े प्रेमी है और बड़े उत्साह तथा निश्चित मत से उनमे भाग लेते है। इसके लिए वे बड़ी विद्वत्तापूर्ण तैयारी करते है। उत्तर रामचरित, विलासिका, जमाजयन्त, गुजरात नाथ पर उनके आलोचनात्मक निबंध, असत्य भावारोपण, असभव, संगीतकाव्य, मुक्त छद आदि पर उनके विचार तथा नवलराम, नारायण हेमचन्द्र एवं अन्य लोगो के विषय मे उनके जीवन चरित्र सबधी लेख उनके ऐसे साहित्यिक कार्य है, जिनमे उनकी प्रतिभा के दर्शन होते है। वे जब किसी पर आक्रमण करते है तो अत्यन्त निर्भीक होकर। इन्होंने प्रमाणसहित सिद्ध कर दिया कि प्रेमानंद के लिखे हुए कहे जानेवाले नाटक वस्तुत. प्रेमानद द्वारा लिखित न होकर इधर हाल के लिखे हुए है। ज्ञान बाल उपनाम से इन्होंने 'चर्चापत्र' लिखा था।

'स्मरणमुकुर' में उन्होंने कुछ उन विशिष्ट व्यक्तियों के स्मृति-चित्र दिये है, जिनके सपर्क में वे जीवन काल मे आये थे। ये लेख अतर्मुखी दृष्टि से लिखे गये है और उन व्यक्तियों से सम्बन्धित पूर्ण सामग्री मिलने की आशा इन लेखो मे नही की जा सकती। इस कृति से उनके समय के समाज पर प्रकाश पड़ता है और कुछ रुचिकर विस्तृत बाते है। ये लेख कुछ हलकी और वर्णनात्मक शैली से लिखे गये है। सब मिलाकर कह सकते है कि लेखक ने शब्द-चित्र के लिए चुने हुए व्यक्तियो मे से प्रत्येक के साथ न्याय किया है। इनकी 'विवर्तलीला' नये ढंग पर लिखी हुई है। यह निबध की शैली मे न होकर असम्बद्ध डायरी के रूप

में है, जिसमें दार्शनिक तथा कल्पनाप्रधान विचार हैं। आदि से लेकर अन्त तक लेखक का ईश्वर के प्रति विश्वास इसमें स्पष्ट है। उचित उदाहरणों के साथ सभी विषयों पर लेखक ने मुक्त एवं तीखी शैली से विचार किया है। इनके 'अभिनय कला' में गुजराती रंगमंच की वर्तमान और भावी स्थिति पर शास्त्रीय ढंग से विचार किया गया है। बम्बई विश्वविद्यालय में इन्होंने ठक्कर वसनजी भाषणमाला के अंतर्गत कुछ भाषण दिये, जिनमें कुछ मध्यकालीन कवि, जैसे नरसिंह और अखो आदि के विषय में विस्तारपूर्वक कहा।

नरसिंहराव की प्रमुख ख्याति अपने समय के एक विशिष्ट भाषाशास्त्री के रूप में अधिक है। अपने पूर्ववर्ती विद्वानों की अपेक्षा ये कहीं अधिक श्रेष्ठ और सक्षम हैं। इनके पहले जलाल कालीदास शास्त्री ने सन् १८६६ में 'गुजराती भाषा नो इतिहास' तथा १८७० में 'उत्सर्गमाला' लिखा था और नवलराम ने १८८७ में 'व्युत्पत्ति पाठ' लिखा किन्तु ये ग्रंथ उच्च शास्त्रीय परीक्षा में खरे नहीं उतरे। ये ग्रंथ तो बस आरम्भ के मार्गदर्शन प्रयत्न के रूप में हैं। नर्मदाशंकर ने 'नर्म व्याकरण' और 'नर्मकोश' की रचना की। नरसिंहराव ने संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश और पुरानी तथा आधुनिक गुजराती का गहन अध्ययन किया था, साथ ही उन्होंने पश्चिम की ऐतिहासिक, आलोचनात्मक तथा तुलनात्मक शैली का भी ज्ञान प्राप्त किया। ये डा० आर० जी० भंडारकर के शिष्य थे, जिनसे इन्हें संस्कृत और भाषा शास्त्र का प्रेम मिला। इन विषयों से इन्हें इतना प्रेम था कि इन्होंने लगभग सारा जीवन उनमें बिता दिया। भाषा शास्त्र संबंधी उनके सिद्धान्त नियमित एवं तर्कपूर्ण थे। सन १९०५ में इन्होंने वर्ण विन्यास के संबंध में १०० से अधिक पृष्ठों का एक विस्तृत निबंध लिखा था। जीवन भर ये अपने प्रिय विषय के संबंध में अथक परिश्रम तथा लगन से काम करते रहे। इन्होंने 'विल्सन भाषा शास्त्रीय व्याख्यान माला' के अंतर्गत गुजराती भाषा और साहित्य पर कुछ भाषण दिये, जो दो भागों में प्रकाशित हुए। इस कार्य ने इन्हें भारत के एक प्रमुख भाषाशास्त्री का पद दे दिया। इन्होंने प्रतिसंप्रसारण के नियमों पर, अनुस्वार के उच्चारण पर, निवृत्त-अघ विवृत तथा ए० ओ के संवृत्त पर, व्यस्त और समस्त शब्दों पर बड़ी योग्यतापूर्वक विचार किया। भाषा को शुद्ध रखने की दिशा में इनका बहुत बड़ा योग है। इनकी आयु दीर्घ

थी, अतः एक भाषा-शास्त्री की दृष्टि से भाषा के स्वरूप-निर्माण का अवलोकन तथा एक आलोचक की दृष्टि से महारथी की भांति अन्य साहित्यिक ग्रंथों का आगमन देखते रहे।

रमणभाई

सर रमणभाई महीपतराम नीलकंठ का जन्म सन् १८६८ में हुआ था। कालेज में ये एक अच्छे विद्यार्थी थे और इनकी शैक्षणिक स्थिति बड़ी आशापूर्ण थी। ये बंबई के एलफिन्स्टन कालेज में पढ़ते थे। इनके पिता महीपतराम प्रार्थना समाजी तथा सुधारवादी थे। बी० ए० पास होते ही रमणभाई को 'ज्ञानसुधा' के संपादक की जगह मिली। 'ज्ञानसुधा' प्रार्थनासमाज का पाक्षिक पत्र था, जो अहमदाबाद से गुजराती में प्रकाशित होता था। कालेज के दिनों में इन्होंने 'कविता नी उत्पत्तिअनेस्वरूप' शीर्षक से एक विद्वत्तापूर्ण लिखित भाषण पढ़ा था। ये न्यायालय में सरिश्तेदार फिर उपन्यायाधीश हुए तथा अंत में एक वैधानिक वकील बनकर जीवन बिताने लगे। इनकी प्रथम पत्नी का देहान्त हो गया और तब इन्होंने लेडी विद्यागौरी के साथ विवाह किया, जो गुजरात की सर्वप्रथम बी० ए० पास महिला थी। इनका दूसरा विवाह बड़ा सुखप्रद रहा। विद्यागौरी भी अपने ढंग की समाज तथा साहित्य क्षेत्र की एक प्रमुख महिला थी। अपने पिता की भाँति रमणभाई भी सुधारवादी थे और समाजसेवा की ओर उनका झुकाव था। उन्होंने नगरपालिका के मामलों में भाग लेना आरंभ किया और उसके मंत्री बन गये, बाद में सभापति हुए। कई वर्षों तक ये सामाजिक सेवा करते रहे।

ये शिक्षा-शास्त्री, समाज-सुधारक, संपादक, साहित्यिक व्यक्ति, जननेता तथा धार्मिक विश्वास के मनुष्य थे। चूँकि प्रायः सभी प्रधान क्षेत्रों में इन्होंने कार्य किया और लगभग आधी शताब्दी तक विभिन्न प्रकार की सेवाएँ इन्होंने की, अतः आनन्दशंकर ध्रुव ने जो इन्हें गुजरात का 'सकल पुरुष' कहा है, यह उचित ही है।

इनकी साहित्यिक आलोचनाओं के निबंधों का संग्रह 'कविता अने साहित्य' नाम से ४ भागों में प्रकाशित हुआ है। धर्म तथा समाज विषय पर लिखे गये

निबन्धों का संग्रह 'धर्म अने समाज' शीर्षक से २ भागों में हुआ है। ये 'भद्रंभद्र' तथा 'हास्य-मंदिर' उपन्यासों के प्रणेता भी हैं, जो हास्यरस से पूर्ण हैं। इन्होंने एक नाटक लिखा है 'राईनो पर्वत' तथा कुछ कविताएँ भी लिखी हैं। प्रार्थना-समाजी तथा सुधारवादी पत्र 'ज्ञानसुधा' के संपादक की हैसियत से ये आर्यधर्म-प्रचारक 'सुदर्शन' के संपादक मणिलाल के साथ अनेक विषयों पर विवाद करते रहे। विवाह संबंधी समनिवय के प्रश्न पर बड़ा कटु विवाद चला था। एक वकील होने के कारण रमणभाई अपनी पूर्ण योग्यता और विद्वत्ता के साथ अपने सबल तर्कों को बराबर उपस्थित करते थे। अपने 'भद्रंभद्र' हास्यरसपूर्ण एवं व्यंग्यात्मक उपन्यास में भी रमणभाई ने समाज के प्राचीनतावादी अंग पर बड़े तीखे कटाक्ष किये हैं। पहले यह उपन्यास 'ज्ञानसुधा' में धारावाही रूप से निकला था, बाद में पुस्तकाकार प्रकाशित हुआ। हास्यरस से जनता का मनोरंजन करने के कारण यह उपन्यास बहुत अधिक जनप्रिय और प्रख्यात हुआ। इसे लिखने में लेखक ने डान क्विक्झोट के ग्रंथ तथा डिकेन्स के 'पिकविक पेपर्स' से प्रेरणा प्राप्त की थी। इस समस्त पुस्तक का मूल स्रोत वैयक्तिक मतभेद है और कुछ विशिष्ट व्यक्तियों पर आक्रमण करने के उद्देश्य से यह लिखी गयी है। भद्रंभद्र पात्र वेदजड़ता का प्रतिनिधित्व करता है, जो अत्यन्त प्राचीनतावादी और कट्टर है तथा जो उचित अथवा अनुचित सभी अवसरों पर बड़ी कठिन एवं असंतुलित संस्कृत-गर्भित भाषा बोलता है। वह अनोखे तर्कों से कुछ प्राचीन रीतियों को पुष्ट करता है। यहाँ लेखक कुछ तो मणिलाल द्वारा आर्यधर्म के समर्थन का उपहास करता है और कुछ नवमुखराम की संस्कृतगर्भित भाषा पर कटाक्ष करता है। मणिलाल की मृत्यु के बाद उनके काम को आनंदशंकर ध्रुव ने गंभीरतापूर्वक जारी रखा और वे 'सुदर्शन' के संपादक हो गये। उन्होंने 'भद्रंभद्र' की बड़ी कड़ी आलोचना की है। उन्होंने लिखा है कि रमणभाई ने केवल मणिलाल तथा दूसरों पर कटाक्ष करने के लिए हिन्दू धर्म के कुछ गंभीर और मर्यादित विषयों का उपहास किया है, जिन पर बड़ी गंभीरता और मर्यादा के साथ उच्चस्तर पर विचार होना चाहिए था। उन्होंने यह भी कहा है कि किसी का किसी से निर्गुण या सगुणमत पर व्यक्तिगत मतभेद हो सकता है, किन्तु किसी को द्वैत या अद्वैत मत का इस प्रकार उपहास करने का अधिकार

की आलोचना इन्होने बडी मार्मिकता से की है, लेखको का मूल्यांकन किया है, साहित्य की प्रवृत्ति का विवरण उपस्थित किया है और आलोचना-शास्त्र के सिद्धान्तो पर विचार प्रस्तुत किये है। काव्य-निर्माण के पूर्व कवि के हृदय मे अन्त क्षोभ का होना इनके मत से आवश्यक है। सर्वानुभवरसिक की अपेक्षा ये स्वानुभवरसिक काव्य को श्रेष्ठ मानते है। अलंकारशास्त्र के वर्णन मे इन्होने लिखा है कि रस काव्य की आत्मा है तथा इन्होने सस्कृत-काव्यशास्त्र के सिद्धान्तो का पोषण किया है। पाश्चात्य आलोचनाशास्त्र का इन्होने गहन अध्ययन किया था और विस्तार से उन पर विचार किया। हास्य रस पर इनका आलोचनात्मक निबंध पाश्चात्य साहित्य मे पाये जानेवाले हास्यरस के प्रकारो पर प्रकाश डालता है, क्योकि वही इसका अधिक प्रचार है। इन्होने ऐसे काव्य की आलोचना की है, जिसमे केवल शब्द चमत्कृति रहती है और भाव अथवा ऊर्मि-जैसे काव्य-गुणो का अभाव रहता है। इसीलिए इन्होने नर्रासहराव को श्रेष्ठ कवि माना है और उनकी 'कुसुममाला' की बडी प्रशसा की है किन्तु अन्तर्मुखी कविता का महत्त्व उन्होने आवश्यकता से अधिक बताया है और जैसा कि आनदशकर ने कहा है उन्होने काव्य के दूसरे लक्षणों का महत्त्व पूरी तरह से समझा नही। इसमे सन्देह नही कि 'कुसुममाला', 'पृथ्वीराजरासो' तथा भोलानाथ के काव्यो का महत्त्व उन्होने साहित्य-प्रेमी जनता के सामने प्रकट किया, किन्तु कही-कही उन्होने बिना अनुपात के कृतियों की प्रशसा की है। इनकी आलोचनाएँ लबी है और नर्रासहराव या आनद शकर के समान संस्कृत-काव्यशास्त्र का ज्ञान भी इनका नही है। इनके कुछ विचार एवं विवेचन निरर्थक है। शैली की दृष्टि से भी इनकी आलोचना की जाती है। इतना होते हुए भी जिस काम को इन्होने हाथ मे लिया, उसके पक्ष मे अच्छा काम किया। इनकी शैली सादी, स्पष्ट, तर्कपूर्ण और एक वकील के उपयुक्त है।

मणिलाल के साथ इनके लबे-लबे विवाद चलते रहे और इन विवादो ने गुजराती भाषा को निखार दिया। आलोचक के रूप मे कई दृष्टियो से ये नवलराम की अपेक्षा एक श्रेष्ठ आलोचक थे। 'भद्रंभद्र' और 'राई नो पर्वत' के लिए भी बहुत दिनो तक इनकी स्मृति बनी रहेगी।

अध्याय १५

केशवलाल और आनंदशंकर

केशवलाल

केशवलाल हर्षदराय ध्रुव का जन्म १८५९ में हुआ था। बचपन से ही संस्कृत पढ़ने की रुचि उनमें थी और इस विषय में उन्हें अपने बड़े भाई हरी हर्षद ध्रुव से प्रेरणा मिली। केशवलाल पहले एक स्कूल के हेडमास्टर थे, फिर गुजरात कालेज अहमदाबाद में गुजराती के प्रोफेसर हो गये। नरसिंहराव भोलानाथ दिवेटिया बंबई के एल्फिन्स्टन कालेज में गुजराती के प्रोफेसर थे, केशवलाल ने इसी के समकक्ष अहमदाबाद में पद प्राप्त किया। प्राचीन गुजराती काव्य के क्षेत्र में इन्होंने बहुत अधिक मात्रा में शोध-कार्य किया तथा ऐसे कुछ काव्य ग्रंथों का सम्पादन बड़ी कुशलता से किया। ये भाषाविज्ञान और पिंगल-शास्त्र के भी अच्छे ज्ञाता थे। प्रकृति की ओर से इन्हें काव्य-संबंधी प्रतिभा मिली थी, किन्तु अधिकतर इस प्रतिभा का उपयोग इन्होंने प्रसिद्ध संस्कृत ग्रंथों का गुजराती में कुशल अनुवाद करने में किया तथा प्राचीन एवं मध्यकालीन गुजराती साहित्य के ग्रंथों का शोध अथवा सम्पादन करने में भी अपनी प्रतिभा का उपयोग किया।

भालण की 'कादंबरी' का सम्पादन इन्होंने दो भागों में किया। इन्होंने 'पंदरमा शतकना प्राचीन गुर्जर काव्यो', रतनदास के 'हरिश्चंद्राख्यान' तथा अखो के 'अनुभव बिंदु' का भी सम्पादन किया। इन सभी संपादित ग्रंथों में इन्होंने पाठ-भेद का सूक्ष्म निरीक्षण किया, पर्याप्त टिप्पणियाँ दीं और विद्वत्तापूर्ण प्रस्तावनाएँ लिखीं। इन्होंने कालिदास, विशाखदत्त, भास और हर्ष के संस्कृत ग्रंथों का गुजराती में अनुवाद किया। 'मुद्राराक्षस' का अनुवाद 'मेली मुद्रिका' नाम से तथा 'विक्रमोर्वशीय' का 'पराक्रमनी प्रसादी' नाम से किया। 'प्रधाननी प्रतिज्ञा', 'सानु स्वप्न', 'मध्यम', 'प्रतिमा' तथा 'विष्यन्दनी यथका भास

विद्यालय की शिक्षा समाप्त हुई, इनको गुजरात कालेज, अहमदाबाद में संस्कृत का प्रोफेसर नियुक्त कर लिया गया। पहले इनका विचार वकील बनने का था, किन्तु संस्कृत के प्रोफेसर का पद स्वीकार करने पर इन्हे राजी कर लिया गया। कुछ समय बाद इन्हे दर्शनशास्त्र पढाने के लिए भी कहा गया। इस बात से इन्हे पूर्व और पश्चिम के दर्शन का आलोचनात्मक, ऐतिहासिक तथा तुलनात्मक अध्ययन करना पड़ा। संस्कृत के प्रकाड पडित तथा अद्वैत वेदान्ती होने के कारण आनन्दशंकर मणिलाल के निकट सम्पर्क मे आये। आनन्दशंकर लिखते हैं कि बी ए पास करने के बाद इन्होने मणिलाल का 'सिद्धान्तसार' पढ़ा और उसका इतना प्रभाव इनके ऊपर पड़ा कि ये एक बैठकी मे ही सारा ग्रंथ समाप्त कर गये। ये मणिलाल की ओर आकर्षित हुए तथा उन्हे 'प्रियंवदा' एव 'सुदर्शन' के पुराने अक वी० पी० से भेजने के लिए लिखा। मणिलाल ने इनकी गभीरता तथा उत्साह को देखकर उन अको को उपहार स्वरूप भेजा। मणिलाल के साथ इनकी यह घनिष्ठता सात वर्षो तक चली। इसके बाद मणिलाल की मृत्यु हो गयी। इसके बाद 'सुदर्शन' का सम्पादन-भार आनन्दशंकर को वहन करने के लिए कहा गया। अभी तक इसका सम्पादन मणिलाल कर रहे थे। इन्होने उसे स्वीकार किया और दो वर्षो के बाद इन्होने एक अपना पत्र 'वसन्त' नाम से प्रकाशित किया, जिसका सम्पादन ये कई सालो तक करते रहे।

सन् १९१९ मे आनंदशंकर की नियुक्ति हिन्दू विश्वविद्यालय काशी मे प्रो-वाइसचासलर के पद पर हुई। अत ये अहमदाबाद से बनारस चले गये। इस उच्च पद पर रहकर वर्षो तक इन्होने शिक्षा संबधी बहुत बड़ी सेवाएँ की और वहाँ से अवकाश ग्रहण करने पर ये अहमदाबाद मे जाकर बस गये। कुछ समय के लिए 'वसन्त' का सम्पादन इन्होने रमणभाई नीलकठ को सौंप दिया था, किन्तु कुछ वर्षो के बाद ये फिर 'वसन्त' का सम्पादन करने लगे। सन् १९४२ मे अहमदाबाद मे इनकी मृत्यु हो गयी।

आनन्दशंकर पडित-युग के एक विशिष्ट और प्रतिभाशाली प्रतिनिधि थे। संस्कृत और दर्शनशास्त्र के वे एक प्रकाड पडित और योग्यतम प्राध्यापक थे। 'सुदर्शन' तथा बाद मे 'वसन्त' के सम्पादक के रूप मे उनकी सेवाएँ अनुपम है। वे मणिलाल के उत्तराधिकारी थे। शिक्षा-केन्द्र वाराणसी मे रहकर उन्हे

एक उत्तम अखिल भारतीय प्राचीन विद्या विशारद के रूप में ख्याति मिली। दर्शनशास्त्र, धर्म, नीति, साहित्य, इतिहास तथा सामाजिक एवं राजनीति की प्रमुख समस्याओं के विषय में इनका अध्ययन अत्यन्त गहन और अद्भुत था। अपने निबंधों, टिप्पणियों और सम्पादकीय लेखों में इन्होंने इन विषयों पर अनेक दृष्टियों से विचार किया है। इनकी भाषा गंभीर, चिंतनपूर्ण और शिष्ट है और इनके विस्तृत अध्ययन तथा विद्वत्ता का परिचय देती है। इनकी शैली मिताक्षरी है, जो अर्थपूर्ण तथा विषयानुकूल है। यद्यपि इन्होंने संस्कृत शब्दों का अधिक प्रयोग किया है, किन्तु शैली तनिक भी आक्रमणात्मक नहीं है और पाठक के मन में यह भाव उत्पन्न नहीं करती कि लेखक अपनी विद्वत्ता का प्रदर्शन करना चाहता है। संस्कृत और अंग्रेजी साहित्य का इनका अध्ययन बड़ा गहन, विस्तृत और बहुमुखी था। यद्यपि ये शंकरमत के केवलाद्वैत सिद्धान्त के लिए मणिलाल को पसंद करते थे, किन्तु इन्हें अन्य दर्शनों में भी गुण दिखाई पड़ते थे और किसी भी सिद्धान्त को हीन दृष्टि से नहीं देखते थे। इनका कहना है कि सभी दर्शनों का अपना-अपना एक उचित स्थान है। इन दर्शनों के परस्पर विरोध की व्याख्या ये दो प्रकार से संभव मानते थे। ये कहते थे कि एक तो इनका विरोध प्राचीन दृष्टिकोण से अधिकार-भेद द्वारा समझा जा सकता है और दूसरे नवीन दृष्टिकोण से ऐतिहासिक ढंग द्वारा अर्थात् किसी आचार्य ने तत्कालीन देश-काल की परिस्थिति के कारण ही किसी विशेष सिद्धान्त पर जोर दिया है, और ऐसा करना आवश्यक था। अब इन विवादों की शक्ति और आवश्यकता क्षीण हो चुकी है, क्योंकि परिस्थिति में बहुत बड़ा परिवर्तन हो गया है। विभिन्न दर्शनों एवं सम्प्रदायों के अनुयायियों को अत्यन्त सूक्ष्म अन्तरों पर ध्यान न देना चाहिए, किन्तु किसी दर्शन के आधारभूत तत्त्व पर विचार करना चाहिए।

धर्म, दर्शन और साहित्यिक आलोचना के क्षेत्र में आनन्दशंकर का बड़ा महत्त्वपूर्ण योगदान है। 'वसन्त' में प्रकाशित उनके लेखों का संग्रह इन चार ग्रंथों में हुआ है—'काव्य तत्त्व विचार', 'साहित्य विचार', 'दिग्दर्शन' तथा 'विचार माधुरी'। इन चार पुस्तकों में विभिन्न विषयों पर उनके चिंतनपूर्ण लेख हैं। उन्होंने 'नीति शिक्षण', 'धर्म-वर्णन', 'हिंदू धर्म' एवं 'हिंदू धर्मनी बाल-पोथी' भी लिखी है। इन पुस्तकों में इन्होंने हिंदूधर्म के स्वरूप का वर्णन किया

मत के सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया। अपने भक्त-जीवन में जो दैवी अनुभव उन्हे हुए थे, उन्होंने उनको भी व्यक्त किया। आनन्दशंकर को यद्यपि अद्वैत दर्शन का उतना ही ज्ञान था पर वे उसके प्रचारक न थे। इनका विश्वास था कि दूसरे दर्शन भी उसी आर्यभावना के एक या दूसरे अग को प्रकट करते हैं। इन्होंने एक शिक्षा-शास्त्री की दृष्टि से प्रश्नो पर विचार किया। इनकी धारणा थी कि सभी बातो पर इस ढग से विचार करना चाहिए कि समग्र अर्थ मे धर्म मध्यबिन्दु पर रहे। किन्तु मणिलाल की तरह पहले छेड़छाड़ करनेवाले नही थे। ये ऐतिहासिक और तुलनात्मक शैली का प्रयोग भी करते है और इनकी अभिव्यक्ति एक वकील की हैसियत से कम वरन् एक न्यायाधीश की हैसियत से अधिक है। शाकरवेदान्त के संबंध मे कई शकाओ का इन्होने निराकरण किया है और सिद्ध किया है कि यह न तो नीति-विरुद्ध है न भक्ति-विरुद्ध इन्होंने हिन्दू धर्म और दर्शन के कुछ प्रमुख भावो की व्याख्या इस ढग से की है, जो इस आधुनिक युग के लोगो को भी सरलता से मान्य हो सकती है। विशेषता यह है कि ऐसा करने मे इन्होंने मूल भावो के तात्पर्य को न छोडा है न कम किया है। इन्होंने बलपूर्वक कहा है कि वैदिक धारणा को समझने के लिए भक्ति, कर्म और ज्ञान तीनो का होना आवश्यक है। मणिलाल की भाँति इनका भी यही कहना है कि प्रेमलक्षणा भक्ति और अपरोक्ष ज्ञान समान अनुभूतियाँ हैं। इनका कथन है कि धर्म आत्मा की कोई विशेष वृत्ति नही है, वरन् आत्मा के सम्पूर्ण व्यापारो मे रमा हुआ है, अत सभी कर्म धर्मोन्मुख होने चाहिए। इन्होंने अस्पृश्यता के विरुद्ध अपने विचार दो कारणो से प्रकट किये है—एक तो यह कि प्राचीन काल मे जिन जाति के लोगो को छूना निषेध था, उनकी वर्तमान काल मे सत्ता ही नही है और दूसरे दर्शन-क्षेत्र को किसी एक वर्ग मे आबद्ध करने का न तो किसी को अधिकार है और न करना चाहिए, साथ ही जीवन पर पूर्णता की दृष्टि से विचार करना चाहिए और हमारे सभी कार्य उस धर्मोन्मुखता के द्वारा सचालित होने चाहिए, जो अध्यात्मवाद के दृष्टिकोण से युक्त है। उन्होंने यह भी कहा कि धर्म-कार्य के रूप मे पुराणो का अपना महत्त्व है। इन्होंने समझाया है कि जैनधर्म, बुद्धधर्म और वैदिक धर्म तीनो एक ही मान्यता की तीन शाखाएँ है। इन्होंने बताया कि कपिलमुनि का मूल्य सांख्य शास्त्र सेश्वर था; बुद्ध ब्रह्मवाद के विरोधी

नही थे, शकराचाय योगाभ्यास द्वारा नाना प्रकार की सिद्धियो को प्राप्त करना अच्छा नही समझते थे, शकर के दर्शन का सार या तत्त्व वण-भ्रम नही है। इनका कहना था कि विभिन्न दशनो और सम्प्रदायो में नीति-सिद्धान्त, जीवन की पवित्रता तथा साधनाओ के विषय में पायी जानेवाली समानता का महत्व उनके सूक्ष्म अन्तरो की अपेक्षा बहुत अधिक है। इन्होने अपना कोई नया दशन नही दिया, किन्तु शाकरवेदान्त की व्याख्या इस प्रकार से की है जिससे उसे एक नया रूप प्राप्त हो गया है। इनकी शैली की मुख्य विशेषताएँ है—स्पष्टता, सूक्ष्मता, साहित्यिकता और सतुलन। वे मानते थे कि सत्य अपना समथन अपनेआप प्राप्त कर लेगा। 'वसन्त' के अतिम पृष्ठो पर दिये गये उद्धरणो से पाश्चात्य विचारो के सम्बन्ध में इनके गाम्भीर्य और गहन अध्ययन का परिचय मिलता है। मणिलाल के कार्य को इन्होने पूरा किया और आगे बढाया। इन्होने वाद विवाद का उच्च स्तर स्थापित किया।

अध्याय १६

'कान्त' और 'कलापी'

मणिशंकर रत्नजी भट 'कान्त'

'कान्त' नाम से विख्यात श्री मणिशंकर रत्नजी भट्ट का जन्म १० नवंबर १८६८ को सौराष्ट्रान्तर्गत चावंड मे हुआ था। ये प्रश्नोरा नागर ब्राह्मण थे। इनके पितामह की रुचि काव्य की ओर बहुत अधिक थी और मणिशंकर को बचपन से ही यह रुचि विरासत में मिली। आरम्भिक काल मे ये दलपतराम की शैली पर कविता करते थे, किन्तु उनकी प्रकाशित रचनाओं मे से कोई भी ऐसी नही है। बबई के एल्फिन्स्टन कालेज मे इन्होंने शिक्षा पायी और रमणभाई के साथ मित्रता स्थापित की, जिन्होंने बाद मे मणिशंकर का 'वसन्त विजय' खडकाव्य अपनी टीका के साथ प्रकाशित किया। बाद में भी बहुत समय तक दोनो मे साहित्यिक, सामाजिक तथा धार्मिक मामलो मे लिखा-पढ़ी चलती रही। इनके दूसरे घनिष्ठ मित्र थे प्रोफेसर बलवन्तराय कल्याणराय ठाकोर, जिन्होंने इनकी कुछ कृतियो के विषय में सुझाव दिये, उन्हें सुधारा, उनकी प्रशंसा की और इस प्रकार मणिशंकर को प्रोत्साहित किया। मणिशंकर ने भी अपनी कुछ रचनाएँ इन्ही को सबोधित करते हुए की है। समस्त 'पूर्वालाप', जो मणिशंकर की कविताओ का सग्रह है, अहमदाबाद मे ठीक १६ जून १९२३ को प्रकाशित हुआ, जिस दिन रावलपिंडी से लाहौर आते समय ट्रेन में मणिशंकर की अचानक मृत्यु हुई थी। यह 'पूर्वालाप' उपहार शीर्षक की एक कविता द्वारा प्रो० ठाकोर को समर्पित किया गया था।

मणिशंकर ने दर्शनशास्त्र लेकर बी० ए० पास किया। कालेज छोड़ने पर ये अध्यापक बने और बाद मे सूरत, बडौदा तथा भावनगर मे शिक्षा-अधिकारी के रूप में रहे। अध्यापक की हैसियत से इन्हे अच्छी ख्याति मिली। जब ये बडौदा मे थे, तब ईसाईधर्म तथा उसके रहस्यवादी साहित्य का इन्होंने बड़ा गहन

अध्ययन किया, विशेषकर स्वीडेनबर्ग की कृतियों का। उस साहित्य से ये इतने प्रभावित हुए कि ३३ वर्ष की अवस्था में ही इन्होंने ईसाई धर्म स्वीकार कर लिया। इसके परिणामस्वरूप इन्हें अपने मित्रों और संबंधियों की सहानुभूति तथा सम्पर्क से हाथ धोना पड़ा। स्वभाव से ये बहुत ही भावुक थे, अतः अपने सामाजिक संबंधों को फिर प्राप्त करने के लिए ये फिर हिन्दू हो गये, किन्तु ईसाईधर्म के प्रति उनकी आंतरिक आस्था मृत्यु पर्यंत बनी रही।

ये कवि नानालाल और मणिलाल के सम्पर्क में भी रहे। 'कलापी' की मृत्यु के बाद इन्होंने 'कलापीनो केकारव' और 'हमीर काव्य' का सम्पादन भी किया।

ये अति संवेदनशील, चिंतक, सत्य-प्रिय और मानसिक मंथन के व्यक्ति थे। इनकी सर्वश्रेष्ठ कृति 'पूर्वालाप' है। इस संग्रह में अन्तर्मुखी और बहिर्मुखी दोनों प्रकार की कविताएँ हैं। इनमें से कई कविताएँ उनके जीवन से ही संबंधित हैं तथा जीवन की कुछ घटनाओं ने उन्हें वे कविताएँ लिखने को बाध्य किया। उनका पहला विवाह नर्मदा के साथ कुछ छोटी अवस्था में ही हुआ था, जो बड़ा आनन्दमय था। किन्तु १८९१ में नर्मदा की मृत्यु से मणिशंकर को बड़ा दुख हुआ। विवाहित जीवन का आनंद तथा विरह-व्यथा की छाया उनकी कुछ कविताओं में स्पष्ट है। उनकी दूसरी पत्नी का नाम भी संयोग से नर्मदा ही था।

मणिशंकर (कान्त) ने सर्वोत्तम खण्डकाव्य दिये हैं। उनका जीवन संघर्ष एवं संघर्षपूर्ण था और इसका पर्याप्त वर्णन उन्होंने अपनी कलापूर्ण रचनाओं में किया है। शीघ्र ही गुजरात के लोगों का ध्यान उनकी कविताओं की ओर आकर्षित हुआ। 'वसन्त विजय', 'चक्रवाक मिथुन' और 'देवयानी' आदि इनके कुछ उत्तम खंडकाव्य हैं। इन खंडकाव्यों में तथा 'सागर अने शशी' जैसी दूसरी रचनाओं में भी शब्द, अर्थ, वृत्त और अलंकार का बहुत उत्तम प्रयोग हुआ है, साथ ही इनमें कला, सौंदर्य तथा काव्यत्व भी बहुत अधिक मात्रा में है। यद्यपि संख्या में इनकी रचनाएँ अधिक नहीं हैं, फिर भी प्रो० बलवंतराय ठाकोर जैसे आलोचक ने लिखा है कि मणिशंकर विगत सौ वर्षों में अंतर्मुखी कवियों में सर्वश्रेष्ठ हैं। इनके खंडकाव्यों का रूप बाद के कवियों ने भी

स्वीकार किया। किसी कविता मे मोड आते ही या भाव-परिवर्तन होते ही वृत्त बदल देने की प्रथा इन्होने चलायी।

मणिशंकर की रचनाओं में ढीलेपन या कलाहीन अभिव्यक्ति का अभाव है। ये अपने ढंग पर पूर्ण विश्वास के साथ लिखते हैं। किसी का अनुकरण करने की प्रवृत्ति इनमे नही है। इनकी कविताओ का सर्जन कला एव सौंदर्यपूर्ण है। इन्हे विश्वविद्यालय की शिक्षा मिली थी और अध्ययन बहुत विस्तृत था। नवीन विचारो और भावो को भी बड़ी सफलतापूर्वक इन्होंने आकर्षक शैली मे व्यक्त किया है। इनकी कविताओं के सग्रह का 'पूर्वालाप' के नाम से ही भास होता है कि उसका अधिकांश ईसाईधर्म स्वीकार करने के पहले लिखा गया था। समूचा ग्रथ सब अगो मे सतुलित है। मराठी का अजनीवृत्त उन्होने गुजराती मे प्रतिष्ठित किया। प्रत्येक पक्ति के अत मे विरामचिह्न देने की प्रथा का उन्होने परित्याग किया और भाव व्यक्त करने के आवश्यकतानुसार दूसरी या तीसरी पक्ति मे भी बीच मे विराम लगाते थे। प्रत्येक चरण के अन्त मे यति लगाना भी इन्होने छोड़ा। किन्तु यति-भग-दोष तक ये नही बढे और न वृत्त-संबंधी स्वतत्रता का उपयोग किया। यद्यपि इनकी भाषा संस्कृत बहुला थी, किन्तु इनके शब्दो का चयन बहुत उपयुक्त और अवसर के अनुकूल होता था।

ये खडकाव्य मे निष्णात थे। किसी कहानी या घटना का विकास ये लघुकथा की भांति करते थे; आदि और अत कलापूर्ण तथा आकर्षक होते थे; इनमे नाटक तत्त्व भी अधिक होता था और भाव-परिवर्तन के साथ ही ये छन्द बदल देते थे। मणिशकर मे प्राचीन एव नवीन दोनो प्रकार के कवियो के गुण थे। हम उनकी रचनाओ मे एक ओर अनुप्रास, शब्द चमत्कृति, अर्थ चमत्कृति, अलकार, छन्द-प्रतिभा पाते है और दूसरी ओर नवीन कविता के सभी अच्छे अग भी देखते है। मानसिक सघर्षो को प्रस्तुत करते हुए सत्य की खोज करने मे उनकी रुचि अधिक थी। उन्होने किसी कहानी पर आधारित लबी कविताओ की रचना की है, छोटे गीत लिखे है और विशिष्ट घटनाओ या अवसरो पर कविता की है। वे छोटे-छोटे पदो में मनोदशा या वातावरण का वर्णन बड़ी सफलता से कर देते थे। उन्होने कुछ ऐसे भावो का भी चित्रण किया है, जो गुजराती साहित्य मे तबतक नही आये थे। उन्होने प्रकृति-चित्रण भी किया है, किन्तु किसी पात्र

के मानसिक भावो की पृष्ठभूमि के रूप में। ससार में पाये जाने वाले अन्याय की शिकायत उन्होने स्थान-स्थान पर की है। दुःख तथा करुणभाव-वर्णन मे वे सब में श्रेष्ठ थे। 'वसन्त विजय', 'रमा', 'अतिज्ञान', 'चक्रवाक मिथुन', 'देवयानी' तथा 'मृगतृष्णा' आदि उनके कुछ उत्तम खडकाव्य हैं। बहुत थोडे शब्दो मे ये वस्तुस्थिति का चित्रण कर देते थे। इनकी भाषा कही बहुत सादी है और कही सस्कृत शब्दो से पूर्ण है, किन्तु प्रत्येक दशा में भाषा अवसर के उपयुक्त है। ये अनेक अलकारो का प्रयोग नही करते थे, किन्तु जितना भी प्रयोग किया है, उनका चुनाव बहुत ठीक किया है। इन खडकाव्यो में इन्होने करुणरस का वर्णन किया है। जगत की रहस्यमय विषमता तथा दुर्भाग्य का सकेत इन्होने बराबर किया है। ईसाई होने के बाद इनकी रचनाओ की सख्या बहुत घट गयी। उनके छोटे-छोटे गीतो में ईसाई धर्म की बाते रहती थी और वे गीत भगवान् के प्रति होते थे। अपने वैयक्तिक जीवन की घटनाओ पर भी कई गीत उन्होने लिखे। अपनी पत्नी के साथ का सुखमय जीवन तथा उसकी मृत्यु के बाद मिलनेवाली व्यथा दोनो उनके गीतो के माध्यम से प्रकट हुए हैं। अपनी गहरी मित्रता का चित्रण करते हुए अपने कुछ मित्रो को सबोधित करके उन्होने कुछ गीत भी लिखे हैं। उन्होने देश प्रेम पर भी दो गीत लिखे हैं, जो राष्ट्रीय गान के रूप मे अक्सर गाये जाते रहे हैं। यद्यपि इनके गीत भी उच्चकोटि के हैं, किन्तु मणिशकर का नाम खडकाव्यो के लिए बहुत समय तक बना रहेगा। बाद के कई कवियो ने खडकाव्य के उस रूप को प्रस्तुत करने का भरसक प्रयत्न किया, किन्तु मणिशकर का 'वसन्त विजय' आज भी अद्वितीय है। इसमें एक ऋषि द्वारा महाराज पाडु को पत्नी-समग न करने का शाप, उन्मत्त बना देनेवाले वसत ऋतु के कारण उनका अपने मन पर नियत्रण न रख सकना तथा अमिट नियति का शिकार बनना बडी मार्मिकता से वर्णित है। उनकी कुछ कविताएँ ऐसी असाधारण हैं, जिनमें सूक्ष्मभावो की अभिव्यक्ति बडी कुशलता मे हुई है तथा काव्य का रूप भी साङ्गोपाङ्ग है। उनके विषय में ऐसा कहा गया है कि यद्यपि उन्होने कोई महाकाव्य नही लिखा, किन्तु एक महाकवि की प्रतिभा उनमें अवश्य थी।

मणिशकर की कुछ गद्य-कृतियाँ भी हैं। उनका एक ग्रथ है 'शिक्षणनो इतिहास', जिसमें शिक्षा विषय पर उन्होने अपना गभीर चिंतन दिया है। एक

योग्य शिक्षा-अधिकारी होने के कारण वे ऐसा ग्रंथ लिखने के अधिकारी थे। मणिलाल के 'सिद्धान्तसार' की उन्होंने आलोचना भी लिखी और रमण भाई के साथ पत्र-व्यवहार आरभ किया, जिसमे मणिलाल और वेदान्त के सम्बन्ध में कुछ हलके विचार व्यक्त किये, किन्तु मणिलाल के ग्रथो को तथा वेदान्त को और अधिक पढने पर उन्होंने विषय के महत्त्व को स्वीकार किया और अपने पूर्व विचारो मे सुधार किया। 'कान्तमाला' नाम से उनके पत्र प्रकाशित हो चुके है। उन्होंने दो नाटक भी लिखे है, 'गुरु गोविंदसिंह' और 'रोमन साम्राज्य'। कुछ अग्रेजी सामग्री का अनुवाद भी उन्होंने गुजराती मे किया है। इनका गद्य सबल और स्पष्ट है। इन गद्य-रचनाओ के होते हुए भी ये अधिकांश मे अपनी कविताओ के लिए ही प्रसिद्ध है। नर्मदाशकर की भाति मणिशंकर भी बड़े भावुक थे और दोनो ने अपने अतिम दिनों मे विचार बदल डाले, किन्तु अपने-अपने ढंग से। यद्यपि गुजराती काव्य को मणिशकर का योगदान बहुत बडे परिमाण मे नही है, किन्तु जो कुछ भी है, उसीके बल पर उनका स्थान बहुत ऊँचा है।

कलापी

सूरसिहजी तख्तसिहजी गोहिल का उपनाम 'कलापी' था। ये सौराष्ट्र के एक देशी रियासत लाठी के शासक थे। इनका जन्म १८७४ मे हुआ था और २६ वर्ष की छोटी आयु मे ही सन् १९०० मे इनका देहान्त हो गया। १५ वर्ष की अवस्था मे ही इनका विवाह कच्छ की राजकुमारी राजबा के साथ हुआ और कोटडा सांगाणी की राजकुमारी आनदीबा के साथ भी इनका विवाह हुआ। 'कलापी' राजकोट के राजकुमार कालेज मे पढते थे, किन्तु आंखो की ज्योति कम हो जाने के कारण ९वी कक्षा से ही पढाई छोड़नी पडी। फिर भी घर मे अध्यापक रखकर इन्होंने अग्रेजी साहित्य तथा अन्य विषय पढ़े और अग्रेजी तथा अन्य यूरोपीय कवियो के विषय मे अच्छी जानकारी प्राप्त की। केवल कवि ही नही, श्रेष्ठ आलोचकों और दार्शनिको के विषय मे भी पढ़ा, साथ ही गुजराती तथा सस्कृत के भी प्रसिद्ध ग्रथो का अध्ययन किया। १८ वर्ष की अवस्था मे ये काश्मीर गये और सन् १८९२ मे 'काश्मीर' तो प्रवासन नाम की है, जो गद्य लिखी। इसी कृति के साथ इन्होने गुजराती मे लिखना आरभ किया

'कलापी' की दूसरी पत्नी के साथ शोभना नाम की एक दासी आयी थी। इनका मन उसकी ओर झुका और ये उसे पढ़ाने में रुचि लेने लगे। धीरे-धीरे उनके स्वामीपन का भाव प्रेम में बदल गया। किसी तरह की समस्या न उठ खड़ी हो, इससे बचने के लिए रानी ने शोभना का विवाह एक साधारण (मवाम) नौकर के साथ कर दिया। यह विवाह शोभना और 'कलापी' दोनों के लिए दुखदायी सिद्ध हुआ, क्योंकि कलापी उसके बिना जीवित नहीं रह सकते थे। अपने पति की दशा पर रानी को दया आयी और उसने मवाम से शोभना के लिए त्यागपत्र प्राप्त कर लिया। बाद में कलापी ने शोभना के साथ शादी कर ली। इसके बाद कलापी काव्य जगत् को कुछ अधिक नहीं दे सके और दो वर्ष बाद १९०० में उनका देहान्त हो गया।

कलापी की काव्य-कृतियाँ हैं—'कलापीनो केकारव' और 'हमीर जी गोहेल'। 'माला अने मुद्रिका' तथा 'नारी हृदय' दो उपन्यासों के रूपान्तर हैं। इनके पत्र 'कलापीनो पत्रधारा' शीर्षक से प्रकाशित हुए हैं।

अठारह वर्ष की अवस्था में 'कलापी' ने कविता लिखना आरम्भ किया और छब्बीस वर्ष की आयु में उनका देहान्त हो गया। किन्तु केवल आठ वर्षों में ही उनका रचना परिमाण की दृष्टि से 'कान्त' से चौगुना है। 'कान्त' की रचना निस्सन्देह इनकी अपेक्षा अधिक परिष्कृत है।

'कलापी' की रचना में मुख्यतः खंडकाव्य, गजलें और छोटी कविताएँ हैं। प्रकृति से ये बड़े भावुक थे और इनकी अधिकांश रचनाएँ इनके जीवन से सम्बन्धित हैं, जो शोभना के साथ विवाह होने से पूर्व लिखी गयी थीं। ये अन्तर्मुखी कवि थे। प्रायः इनके विषय प्रेम और करुण हास थे तथा प्रकृति सम्बन्धी चिन्तन भी इनमें अधिक था। करुण भावना से ये पूर्ण थे और आत्म वंचना इन्हें प्रिय था। इनकी रचनाओं के इस गुण ने तरुण पाठकों को अधिक प्रभावित किया।

इनकी अधिकांश रचनाएँ अंग्रेजी के कवियों की कविताओं से अनूदित अथवा रूपान्तरित हैं या उनसे प्रभावित हैं। इन पर वर्ड्सवर्थ का विशेष प्रभाव था। इन्होंने मणिलाल से भी विचार विमर्श किया था और इन्हें अपना गुरु मानते थे। ये मणिलाल व वेदान्त-दर्शन से बहुत प्रभावित थे। किन्तु

इनकी अधिकांश कविताएँ आत्मदर्शी है, जिनमे इन्होने व्यक्तिगत-अनुभवों का चित्रण किया है। उनकी कश्मीर-यात्रा ने प्रकृति की महत्ता की एक अमिट छाप उन पर लगा दी तथा उनकी व्यक्तिगत समस्याओं और शोभना के लिए उनकी तड़पन ने उन्हे प्रेम का विषय दिया जो सभी रूपों से युक्त है। इन्होंने प्रकृति-वर्णन स्वतंत्र रूप से नही किया, वरन् जहां कही भी प्रकृति चित्रण है वह मानव-भावनाओ को उभारने के लिए पृष्ठभूमि के रूप मे है।

'कलापी' ने कुछ गजले भी लिखी है, जिनमे भोलानकर का अनुकरण स्पष्ट दीखता है। न तो इन्हें फारसी भाषा का अधिक ज्ञान था और न सूफी सिद्धान्तों की ही अच्छी जानकारी थी। गजल-रचना के नियमों की भी इन्होंने उपेक्षा की है और प्राय फारसी के शब्दो का प्रयोग गलत अर्थ मे किया है। इन दोषो के होते हुए भी सादे, अत्यन्त भावनात्मक और आकर्षक ढग से इन्होने अच्छे विचारो, प्रेम, त्याग, सौन्दर्य आदि को गजल के रूप मे व्यक्त किया है। इसीलिए इनकी कुछ गजलो को प्रथम कोटि की कविताओं मे स्थान प्राप्त है।

इनकी कविताओ मे सहज प्रवाह है और इनका लघु जीवन देखते हुए इनकी रचनाओ का परिमाण भी अपेक्षाकृत अधिक है। यह ठीक है कि इनका कृतित्व अधिक कलात्मक नही है, किन्तु विचारो और भावो को ये बड़ी सूक्ष्मता तथा गौरव के साथ व्यक्त करते थे। इनकी कुछ अन्तर्मुखी कविताएँ प्रथम कोटि के गीत है। इनके एक प्रसिद्ध प्रेम-काव्य 'हृदय त्रिपुटी' मे रमा, शोभना तथा स्वयं इनका चित्रण है। शोभना के साथ विवाह होने के पूर्व ही यह काव्य पूरा हो चुका था। यद्यपि आरभ मे अपने जीवन की घटनाओं का वर्णन करते समय कवि मे वहिर्मुखी सजगता दीखती है, किन्तु कथा के अन्तिम भाग मे वह धारा को बदल देता है। काव्य की नायिका दयालु हो जाती है, फिर भी नायक-नायिका के विवाह के पहले ही दोनो का मर जाना बताया गया है। मृत्यु की यह भविष्यवाणी 'कलापी' के जीवन मे बड़े दुर्भाग्य के साथ सत्य का रूप धारण करती है। यथार्थत वह शोभना के साथ विवाह करता है, किन्तु शीघ्र ही उसकी मृत्यु हो जाती है। अपने प्रेम-गीतो मे कवि केवल प्रेम के पीछे तड़पता ही नही है, वरन् वह विचार भी करता है और दार्शनिक ढग से सोचता है।

'कलापी' ने अनेक खड-काव्य लिखे है, जैसे 'हमीरजी गोहेल', 'ग्राम्य माता',

'बिल्वमंगल', 'कयासने नौच', 'महात्मा मूलदास' आदि। काव्य के इस रूप की प्रेरणा इन्हें 'कान्त' से मिली थी, किन्तु 'कान्त' की सी कला या सुन्दरता ये नहीं ला सके। इन्होंने ललित सूक्ष्मता के साथ भावों का चित्रण किया है। किन्तु इनमें से अधिकांश चित्रण बहुत लम्बे हैं। 'हमीरजी गोहेल' का 'कलापी' महाकाव्य का रूप देना चाहते थे, किन्तु इसे पूरा न कर सके। अत इसकी गणना खण्ड-काव्य में ही होती है। यद्यपि इसमें महाकाव्य की सी गहराई तो नहीं है, किन्तु इस दिशा की ओर यह एक प्रयत्न अवश्य है।

'कलापी' शृंगाररस के कवि हैं और प्रेम का साक्षात् अनुभव इन्हें था। अपने सूक्ष्म मानसिक संघर्षों की अभिव्यक्ति इन्होंने बड़ी सफलतापूर्वक की है। पाठकों को इनकी कविताओं में आँसू बहुत अधिक दिखाई देते हैं। कुछ आलोचकों ने तो आँसुओं की इसी अधिकता की कड़ी आलोचना की है। फिर भी ये अपनी भावनाओं को स्वाभाविक, सादे और सहज रूप में व्यक्त करते हैं। यह स्वाभाविक ही है कि इनकी रचनाओं ने युवकों को अधिक आकर्षित किया। इनकी कुछ रचनाओं तथा गज़लों को गुजराती कविता में उच्च स्थान प्राप्त है।

अध्याय १७

न्हानालाल

कवि न्हानालाल दलपतराम आधुनिक गुजराती साहित्य के सर्वश्रेष्ठ तथा अद्वितीय कवि हैं। ये कवि दलपतराम डायाभाई के चौथे पुत्र थे, जो आधुनिक गुजराती काव्य के निर्माताओं तथा मवर्द्धको मे मे एक थे। न्हानालाल श्री माली जाति के ब्राह्मण थे। इनका जन्म सन् १८७७ मे चैत्रशुक्ल प्रतिपदा (गुडी पाडवा) को अहमदाबाद में हुआ था और मृत्यु १९४६ मे हुई। बचपन मे ये बड़े चंचल और ऊधमी थे, अत कवि दलपतराम ने इन्हें सौराष्ट्र के मोरवी नामक स्थान मे प्रोफेसर काशीराम दवे के संग मे रख दिया। इससे न्हानालाल के जीवन मे एक परिवर्तन हुआ और काशीरामजी का उन पर इतना प्रभाव पड़ा कि बाद मे उन्होंने अपने कई ग्रथ अत्यन्त सम्मानपूर्वक उनको समर्पित किये। सन् १९०१ मे इन्होंने अपनी विश्वविद्यालय की शिक्षा पूर्ण की और पहले सादरा मे एक स्कूल के हेडमास्टर फिर राजकोट मे राजकुमार कालेज के प्रोफेसर नियुक्त हुए। कुछ समय तक ये वहीं प्रधान न्यायाधीश और दीवान भी रहे। राजकुमार कालेज के ये वाइस प्रिंसिपल हो गये और फिर शिक्षा-अधिकारी बने। सन् १९२१ मे देश व्यापी असहयोग आंदोलन की पुकार पर आपने नौकरी छोड़ दी। गुजरात विद्यापीठ में आप की नियुक्ति प्रिंसिपल के रूप मे होनेवाली थी, किन्तु किसी कारण से ऐसा न हो सका, जिससे इनके जीवन मे एक निराशा और कटुता उत्पन्न हुई। उसके बाद से आपने किसी भी नौकरी को स्वीकार नहीं किया। अहमदाबाद मे आप बस गये और पूरा जीवन साहित्य की सेवा मे बिता दिया। दलपतराम और उनके पुत्र न्हानालाल, जो उनसे भी अधिक परिश्रमी थे, के बीच का समय सौ वर्षों से भी अधिक है, जिसमे पिता-पुत्र बराबर साहित्य-सेवा करते रहे। नौकरी छोड़ने के बाद यद्यपि न्हानालाल की जीविका एकमात्र साहित्य-निर्माण पर ही चल रही थी, किन्तु

देशी रियासतों के शासक उनके प्रशंसक थे, अतः वे या तो बहुत अधिक संख्या में उनके ग्रंथ खरीद लेते थे अथवा किसी और तरह से उनकी सहायता किया करते थे। फिर भी प्रिंसिपल के पद में उनकी नियुक्ति न होने के कारण कुछ नेताओं के प्रति सदा उनकी शिकायत बनी रही। इस घटना के पूर्व उन्होंने गांधीजी पर एक बहुत सुन्दर काव्य 'गुजरात नो तपस्वी' लिखा था। किन्तु इसके बाद वे गांधीजी के आंदोलन से बिलकुल अलग हो गये। यह ठीक है कि अपने उत्तर-काल में वे यह विरोध मजबूत न रख सके और कस्तूरबा गांधी की मृत्यु पर उन्होंने श्रेष्ठ रचना की। यह गुजराती साहित्य का दुर्भाग्य है कि न्हानालाल की इस उपरामता के कारण देश वर्तमान घटनाओं से संबंधित एक श्रेष्ठ महाकाव्य से वंचित रह गया।

कवि की रचनाएँ विविध प्रकार की हैं, यथा—नाटक, लघुकथा, खंडकाव्य, ऊर्मिकाव्य, भजन, रास आदि। सामाजिक तथा सांस्कृतिक समस्याओं पर और धार्मिक तथा दार्शनिक विषयों पर आपने विचार किया है। इतिहास के अच्छे विद्यार्थी होने के नाते आपने देश की घटनाओं के महत्त्व एवं विकास पर अपने ढंग से प्रकाश डाला है। इन्होंने विद्वानों की जीवनियाँ (साक्षर चरित्र) तथा साहित्यिक आलोचनाएँ लिखी हैं। कई ग्रंथों का आपने गुजराती में अनुवाद किया है और माध्यमिक शालाओं की कई पाठ्य-पुस्तकें भी लिखी हैं। इनके सब ग्रंथ पचास से भी अधिक हैं, जिनमें गद्य, पद्य और रागबद्ध गद्य, जिसे ये 'अपद्यागद्य' कहते थे, सम्मिलित हैं।

उनके कुछ ग्रंथों के नाम ये हैं—'कुरुक्षेत्र', इसे वे महाकाव्य कहते थे, 'केटलाक काव्यो', भाग १ से ३, 'नाना नानारास', भाग १ से ३, 'गज-सूरोनी काव्यत्रिपुटी', 'प्रेमभक्ति भजनावली', 'दाम्पत्य स्तोत्रो', 'ओज अने अगर', 'वसन्तोत्सव', 'महेरामणना मोती', 'गीतमंजरी', 'बाल-काव्यो', 'पानेतर', 'वर्णवीती', 'सोहागण' और 'कोलिगराज'।

इनके नाटक ये हैं—'इन्दुकुमार' भाग १ से ३, 'जयाजयन्त', 'विश्व-गीता', 'राजर्षि भरत', 'संघमित्रा', 'प्रेमकुंज', 'गोपिका', 'पुण्यकथा', 'वेणुविहार', 'हरिदर्शन', 'जगत्प्रेम', 'द्वारिकाप्रलय', 'प्रनाच-तुना—प्रनानिदु', 'जहाँगीर-नूरजहाँ' और 'शहंशाह अकबरशाह'।

न्हानालाल ने बहुत-से भाषण भी दिये है। इन्होंने 'साहित्य मंथन' नामक ग्रंथ लिखा और अपने पिता दलपतराम का जीवन चरित्र लिखा है—'दलपतराम' भाग १ से ३। इनका 'आपणां साक्षर रत्नो' २ भागो मे है।

'उषा', 'सारथी' तथा 'पाखडिओ' आदि इनकी लघुकथाएँ है।

इन्होंने कालिदास के 'शकुन्तला' तथा 'मेघदूत' का, 'श्रीमद्‌भगवद्‌गीता' का, वल्लभ संप्रदाय के षोडश ग्रंथो का, पांच उपनिषदो का तथा स्वामी नारायण के 'शिक्षापत्री' का गुजराती पद्य मे अनुवाद किया है।

इनकी मृत्यु के बाद 'हरि संहिता' कई भागो मे प्रकाशित हुई है।

न्हानालाल ने सन् १९०५ मे अपना 'वसन्तोत्सव' प्रकाशित कराया, जिनका स्वागत कान्त (मणिशकर रत्न जी भट्ट) ने इन शब्दो मे किया—"ऊग्यो प्रफुल्ल अमीवर्षण चन्द्रराज; ये स्वयं न्हानालाल के भी शब्द है। ये 'प्रेमभक्ति' उपनाम से लिखा करते थे। गुजराती साहित्य मे न्हानालाल के आगमन को वसन्त-आगमन के समान कहा गया है। १९०५ में दो महत्वपूर्ण घटनाओ के घटित होने का संयोग हुआ—एक तो न्हानालाल के 'वसन्तोत्सव' का प्रकाशन, दूसरे 'गुजराती साहित्य परिषद' के प्रथम अधिवेशन का होना। न्हानालाल के अपद्यागद्य अथवा रागवद्ध गद्य ने गुजरात की कल्पना को सजीव करके लोगो का मन मोहित कर लिया, इसका जादू कई वर्षो तक नही उतरा। इस शैली के प्रति लोगो के मन मे कुतूहल उत्पन्न हुआ और कुछ ने प्रशसा की तथा कुछ ने आलोचना किन्तु कोई भी सफलतापूर्वक इस शैली का अनुकरण नही कर सका। न्हानालाल इसे 'डोलन शैली' भी कहते थे। उन्होंने गुजरात के सम्पूर्ण वातावरण को परिवर्तित कर दिया। गुजराती साहित्य में कवि की हैसियत से इन्हे सर्वश्रेष्ठ स्थान प्राप्त हुआ तथा ससार के काव्य क्षेत्र मे भी इन्हे सम्मान का पद प्राप्त है। इनके शब्द तेज से गढे हुए लगते है—(शब्दो तेजे घड्या)। इनके काव्य की कुछ विशेषताएँ है—भावना मे अपूर्वता, अर्थ गौरव, पद लालित्य, अलकार प्रभुत्व, अलंकार बाहुल्य; वाक्छटा और प्राचीन आर्य दर्शन के प्रति सम्मान की भावना। इनकी रचना का परिमाण बहुत अधिक है। इन्होंने मुख्यतः भावना और आदर्शो के गीत गाये है और अपनी डोलन शैली द्वारा गद्य-पद्य दोनो को समृद्ध किया। इन्होंने दाम्पत्य प्रेम का चित्रण

बड़े आकर्षक और सुंदर ढंग से किया है, जो भावनामय भी है और तेजोमय भी। इनकी श्रेष्ठ रचनाएँ हैं इनके रास और ऊर्मिगीत। ये असाधारण और अद्वितीय साथ ही अत्यन्त काव्यात्मक हैं, जिनकी गणना ससार की उत्तम कविताओं में है।

न्हानालाल की रचनाओं में गुजराती काव्य का सम्पूर्ण नया रूप प्रकट होता है। कवि ने केवल डोलन शैली में ही नहीं, वरन् नियमित छन्दोबद्ध शैली में भी रचना की है। यह ठीक है कि कवि ने डोलन शैली में जितना लिखा है, वह सबका सब समान रूप से श्रेष्ठ नहीं है और कभी-कभी कवि की उत्तमता शब्द बाहुल्य और अलकार बाहुल्य में है, किन्तु इनकी कुछ छन्दोबद्ध और अपद्यागद्य की भी रचनाएँ ऐसी हैं, जिनमें उत्तम काव्य के गुण हैं। इनकी विशिष्ट डोलन शैली ने तो गुजराती साहित्य को रचनात्मक तथा काव्यात्मक साहित्य बहुत अधिक मात्रा में प्रदान किया है।

कवि ने अपने नाटक भी डोलन शैली में लिखे हैं। इनके प्रसिद्ध नाटक हैं—'इन्दुकुमार' ३ भागों में, 'जयाजयन्त', 'गोपिका' ऐतिहासिक घटनाओं पर आधारित 'शहन्शाह अकबरशाह' और 'जहाँगीर नूरजहाँ', प्राचीन भारतीय इतिहास से सबधित 'राजर्षि भरत' तथा 'सघमित्रा' आदि।

'इन्दुकुमार' में कवि ने विवाह की समस्याओं और जीवन पर उसके प्रभाव का विचार किया है। सम्पूर्ण समस्या पर सूक्ष्मता, मनोरजकता, आदर्शवादिता और मधुरता के साथ प्रकाश डाला गया है। नाटक ३ भागों में है। दीर्घता तथा नाटकीय तत्त्वों के अभाव के होते हुए भी इसका अच्छा स्वागत हुआ। यह भावना प्रधान नाटक अथवा गीतात्मक नाटक माना जाता है, जैसे 'मेघदूत', 'गीतगोविन्द' और 'भागवत' 'भावप्रधान' काव्य माने जाते हैं। वस्तुओं की भव्यता चित्रित करने में कवि की रुचि अधिक है तथा वास्तविक चित्रण की ओर कम। इस नाटक में कथा अश बहुत अधिक नहीं है, कार्य-व्यापार की गति भी बहुत मद है। हाँ, कवि के दूसरे नाटक 'जया जयन्त' में कार्यव्यापार कुछ अधिक है, क्योंकि इसे रगमच पर अभिनय करने की दृष्टि से कवि ने लिखा है। इसी प्रकार ऐतिहासिक नाटकों में भी कुछ कार्य व्यापार है। 'जया-जयन्त' के नायक-नायिका जयन्त और जया कामविजय से युक्त आत्मलग्न की सिद्धि प्राप्त

करने के प्रयत्न मे दिखाये गये है, जो असभव तो नही, पर अत्यन्त दुष्कर कार्य है। इनके नाटकों का वातावरण काव्य-कल्पना तथा प्रेम से पूर्ण होता है। ऐतिहासिक नाटकों मे कवि दैवी तत्त्वों का समावेश भी स्वतत्रतापूर्वक करता है, जैसे महात्माओं का आकाश में उड़ना, आकाशवाणी, अप्सराओं का प्रत्यक्ष होना तथा इसी प्रकार के और भी बहुत से कार्य। कवि की भाषा-शैली विशिष्ट प्रकार की है, जो अलकारों से पूर्ण और अपने ही ढंग की वाक्छटा से युक्त है। कवि ने पुरानी गुजराती तथा सौराष्ट्री के कुछ शब्दो का भी उपयोग किया है, जो गौरवपूर्ण, सुन्दर, मधुर, भव्य, तथा साथ-ही-साथ सबल है। भावों के अनुसार भाषा में भी आरोह-अवरोह है तथा एक लय है। हां, जहां कहीं काव्य-तत्त्व कुछ क्षीण है, वहाँ भाषा आडम्बरमयी और अधिक शब्दो वाली हो गयी है। सवादो के बीच में कहीं-कही कवि ने बड़े उत्तम गीत रख दिये है, जो गाये जा सकते है और जिनमे काव्यत्व बहुत ऊँचा है। 'विश्वगीता' मे कवि ने जीवन की कुछ सनातन समस्याओ पर और मानसिक संघर्षो पर विचार किया है तथा कुछ सनातन मूल्यो की ओर सकेत किया है। इसकी कुछ घटनाएँ धार्मिक ग्रंथो मे से ली गयी है, महाकाव्यों मे तथा कुछ 'शंकर दिग्विजय' से प्राप्त हैं और कुछ काल्पनिक भी हैं। प्रेम-काव्य के पुनरुत्थान की दृष्टि से यह ग्रंथ सर्वश्रेष्ठ माना जाता है।

कवि ने स्नेह-लग्न और लग्न-स्नेह के संबंध में बहुत कुछ लिखा है। जैसे गोवर्धनराम ने अपने 'सरस्वतीचन्द्र' में स्नेहलग्न के विषय मे बहुत कुछ कहा है, उसी प्रकार न्हानालाल ने अपनी कविताओ और नाटकों मे लिखा है।

अपने अतिम दिनो मे कवि ने 'हरि संहिता' की भी रचना की, जो उसकी मृत्यु के पश्चात् ३ भागो मे प्रकाशित हुई। यह 'भागवत' की शैली में लिखी गयी है और कुछ चुने हुए प्रसंगों का वर्णन इसमे है। इन्ही प्रसंगो मे उसने कुछ गद्य-खड भी रख दिये है। जिन्हे वह उपनिषद् कहता है। यह ग्रंथ भक्ति-रस से पूर्ण है तथा कवि के अन्य ग्रथो के समान इसमे भी काव्य के गुण भरे है। यह ध्यान देने की बात है कि इनके पिता दलपतराम ने भी अंत मे 'हरिलीलामृत' लिखकर अपने दीर्घ साहित्यिक जीवन को समाप्त किया था।

कवि ने डोलन शैली में महाभारत की कथा अपने 'कुरुक्षेत्र' ग्रंथ मे लिखी

है। कवि इसे महाकाव्य कहता है। यद्यपि कथानक में मनुष्य नहीं है, किन्तु घटनाओं को भव्यता प्रदान करने में कवि को सफलता मिली है। इसमें कुछ बहुत उत्तम ऊर्मि गीत भी हैं।

प्राय कवि प्राचीन ऋषियों की भाषा का प्रयोग करता है और एक सिद्ध की भाँति मंत्र-वाणी बोलता है। किन्तु इसमें स्पष्टत वह कुछ सीमाओं में बद्ध है। प्रधान रूप से वह कवि है, एक प्रेम-काव्य का कवि, और बड़ी कुशलता से उसने ऊर्मि-तत्त्व का चित्रण किया है। यद्यपि उसकी भाषा में काव्य-कल्पना का समावेश है, किन्तु फिर भी जगद्गुरुओं की गहनता तथा उनके अनुभवों का अभाव है।

ऊर्मिकाव्य न्हानालाल की सर्वोत्तम रचनाएँ हैं। ये उनके नाटकों तथा अन्य ग्रंथों में बिखरी हुई हैं तथा "केटलाक काव्यो भाग १ से ३ में," 'नाना-नानाराम' भाग १ से ३, 'गीतमंजरी', 'प्रेमभक्ति भजनावलि', 'दाम्पत्यस्तोत्र' 'महेरामणना मोती', 'पानेतर' तथा 'प्रवासकुसुम प्रज्ञाबिन्दु' में अलग से भी प्रकाशित हैं। जब नानालाल गेय पद लिखते हैं, तब उनकी श्रेष्ठता प्रकट होती है और इस रूप में उन्हें असाधारण सफलता मिली है। ऐसे गीतों की भाषा बड़ी मधुर और बोलचाल की है और शब्दों में भाव भरपूर रहता है। इन पदों में ध्वनि का बाहुल्य होता है, जो काव्य की आत्मा कही जाती है। इनकी कविताओं में रसतत्त्व बहुत रहता है। अपने 'प्रेमभक्ति' उपनाम को उन्होंने पूर्णरूप से चरितार्थ किया है, क्योंकि प्रेम और भक्ति उनके काव्य का मुख्य विषय है। इन्होंने राष्ट्रभक्ति, लौकिक और प्रकृति प्रेम आदि विषयों पर भी रचनाएँ की हैं। गुजरात के विषय में उनकी प्रसिद्ध कविता 'धन्य हो धन्य ज पुण्य प्रदेश' में उनकी गुजरात भक्ति स्पष्ट है। इन्होंने सूक्ष्म गरबों की भी रचना की है, जिनमें रस, माधुर्य, व्यञ्जना और अर्थगाम्भीर्य पूर्णरूप से है। गरबी और रास के क्षेत्र में इन्होंने दयाराम तक को पीछे छोड़ दिया है। इस रूप में न्हानालाल ने नारी-गीतों का अच्छा विकास किया है। इनके प्रसिद्ध रास ये हैं—'तोरा नरनार जागे रे', 'भीने भीनी पुलकी'—'फूलडा चढावी गूथो न्हार जगमाळनी स्नेह, पधरीय अमृत माळव्या रे मोल'—'हरखे हाये ते नाथ महेल पधारना'—'गोविंद गी गाथा भरी'। उनके कुछ अन्य प्रसिद्ध गीत ये हैं—'नर

ज्वाला जले तुज नेनन मा रस ज्योत निहाली नमूँ हु नमूँ'—'स्नेहीना सोणला आवे साहेलडी उरना एकान्त म्हारा भडके वले'—'रुपला रातल डीमा उघडे उरना वारणा हो व्हेन झूले रस पारणा हो व्हेन'—'सूना मन्दिर सूना मालिया ने म्हारा सूना हैयाना महेलरे स्नेहधाम सूनां सूना'—

'विराटनो हिंडोलो झाकमझोल ।
के आमने मोभे वाध्या एना दोर ।। विराटनो० ।।
पुण्य पाप दोर ने त्रिलोकनो हिडोलो,
फरती फूमतडानी फोर,
फूमतडे फूमतडे विधिना निर्माण मन्त्र,
ठमके तारलियाना मोर ।। विराटनो० ।।'
'नीलो कमल रंग वीझणो हो नन्दलाल,
रढियालो रत्नजडाव मोरा नदलाल ।।'—
'निरखो आ रास लोकलोकना, रमे सृष्टि ना सृजनार,
अगुलिमा अगुलि परोविने, खेले तेजने अन्धार,
रसना उछले रगहेलियाँ ।।'—
'त्हारे नेणले ठमके मोर, त्हारी कीकी मा चमके चकोर ।।'—
'म्हारा नयणानी आलस रे न नीरख्या हरि ने जरी ।।'

श्रीरमणभाई ने कहा है कि काव्य अन्त: क्षोभ से प्रकट होता है। इस कथन का सुधार न्हानालाल ने इस प्रकार किया कि काव्य का अमृत चित्तक्षोभ से नही, वरन् आत्मा की प्रसन्नता से उत्पन्न होता है। प्रासादिक कविता का मूल चित्त-क्षोभ मे नही, किन्तु चित्त की प्रसन्नता मे है।

न्हानालाल ने कुछ गद्य-ग्रथ भी लिखे है—'साहित्यमथन', 'उद्‌बोधन', 'अर्धशताब्दीना अनुभव बोल', 'आपणा साक्षर रत्नो', 'जगत्कादवरी मां सरस्वती चन्द्र नु स्थान' आदि। 'उषा' मे कवि ने अत्यत आलकारिक शैली मे एक प्रेम-कथा कही है। 'सारथि' मे कवि देश की कुछ राजनीतिक समस्याओ पर विचार करता है। 'पाखड़ियो' मे कवि की छोटी कहानियाँ सगृहीत है। कविने अपने पिता दलपतराम की जीवनी ३ भागो मे लिखी है। उसमे दलपतराम से सबधित कई आन्तरिक बाते कवि ने बतायी है और तत्कालीन वातावरण की अच्छी

झाकी दी है। अपनी साहित्यिक आलोचनाओ में कवि निस्सन्देह बहुत विस्तार में चला गया है, किन्तु उत्तमोत्तम विशेषणो द्वारा वस्तु की प्रशसा करने की ओर कवि की रुचि अधिक है। कभी-कभी तो प्रशसा करने में कवि काफी बहक गया है।

निस्सन्देह न्हानालाल आधुनिक गुजराती साहित्य के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। इन्होने एक ऐसी भाषा को विकसित किया है, जो नवीन, कोमल और मधुर शब्दो से पूर्ण है तथा जिसमे व्यजना और लालित्य है। इन्होने अपद्यागद्य अथवा डोलन नामक एक विशिष्ट शैली का प्रारम्भ किया है, जिसमे अपने ढग की एक विचित्र वाक्छटा है। ऐसी शैली के लिए आवश्यक भावना एव प्रतिभा की गहराई के अभाव के कारण न तो उनके समकालीन कवि और न परवर्ती कवि उस शैली का सफलतापूर्वक अनुकरण कर सके। नीति और पुण्य पर इन्होने बहुत जोर दिया है और उच्च भावो को अधिक चित्रित किया है, विशेषकर दाम्पत्य प्रेम और उसकी पवित्रता को। गुजराती साहित्य में सर्वोच्च स्थान दिलानेवाली कवि की कुछ विशेषताएँ ये हैं—इनकी काव्य-कल्पना, उच्च आदर्शवाद, नवीन तथा मधुर छन्दोबद्ध रचनाएँ, इनके अननुकरणीय रासो मे सूक्ष्म नारी-भावनाओ का चित्रण, प्राचीन भारतीय सस्कृति तथा इसके आदान के प्रति कवि की गौरवयुक्त भावना और कुछ मुगल सम्राटो की महत्ता का प्रशसक होना।

अध्याय १८

बलवन्तराय तथा अन्य

श्री वलवन्तराय कल्याणराय ठाकोर का जन्म २३ अक्टूवर, सन् १८६९ मे हुआ था। ये जाति के ब्रह्म-क्षत्रिय थे और भड़ोच के रहनेवाले थे। इनका कुलनाम सेहेनी था और कुछ समय तक ये इसी उपनाम से लिखते रहे। रमणभाई, मणिशंकर, सर मनुभाई मेहता, कृष्णलाल मोहनलाल झवेरी, मानशंकर पीताम्वरदास और वलवन्तराय एक ही कालेज मे पढते थे। कराची, अजमेर और डेकन कालेज पूना मे ये इतिहास और अर्थशास्त्र के प्राध्यापक के रूप मे काम करते रहे फिर वडौदा कालेज मे कुछ दिनो तक अंग्रेजी और तर्कशास्त्र के प्राध्यापक रहे। सौराष्ट्र के शिक्षा-अधिकारी के पद पर भी इन्होने काम किया। सन् १९२४ मे इन्होने अवकाश ग्रहण किया और तव 'इडिया एजुकेशन सर्विस' (I E. S.) के समकक्ष इनका पद हो गया।

इनके प्रिय विषय थे इतिहास और साहित्यिक कार्य। ये 'हिस्टारिकल रेकर्ड्स कमीशन' के सदस्य तव से थे, जव से उसका जन्म हुआ था। उसमे रहकर आपने वड़ा महत्त्वपूर्ण कार्य किया। सन् १९०९ मे गुजराती साहित्य परिषद का जो तीसरा अधिवेशन राजकोट मे हुआ था, उसकी सफलता का सारा श्रेय आपको ही था। वही आपने परिषद् के लिए वहुत धन एकत्र किया और १९२६ तक परिषद के मंत्री रहकर आपने उसका सुचारु रूप से प्रवध किया। गुजरात के कई स्थानो पर आपने 'परिषद व्याख्यानमाला' के अंतर्गत अनेक भाषण दिये। सन् १९२० मे आप साहित्य परिषद् की इतिहास शाखा के अध्यक्ष चुने गये।

उनके काव्य-ग्रन्थ है—'भणकार', 'मारा सोनेटो', और 'गोपीहृदय'। उनकी साहित्यिक आलोचनाएँ है—'लिरिक', 'नवीन कविता विषे व्याखानो', 'कविता शिक्षण', 'विविध व्याखानो, 'परिषद् प्रवृत्ति' तथा '१९३५ के ठाकोर

व्याख्यानो' (बंबई विश्वविद्यालय)। इन्होंने गुजराती में कई ग्रंथों का अनुवाद किया है, जैसे कालिदास की 'शकुन्तला' तथा 'मालविकाग्निमित्र', 'मोविएट नवजवानी', 'रजनी' और 'प्लूटार्क का जीवन चरित्र।' इनकी लघु कथाएं, 'दश नियु' में संगृहीत हैं। 'आपणी कविता समृद्धि' शीर्षक ग्रंथ में इन्होंने कुछ चुनी हुई गुजराती कविताओं का संपादन किया है, साथ ही टिप्पणी और परिचयात्मक प्रस्तावना भी दी है। इन्होंने 'कान्तमाला' का भी सम्पादन किया है। इन्होंने अम्बालाल भाई पर एक पुस्तक लिखी है और इतिहास पर 'इतिहास दर्शन' लिखा है।

काव्य में रमणभाई ने ऊर्मितत्त्व को और न्हानालाल ने भावना तत्त्व को, किंतु बलवंतराय ने विचारतत्त्व को प्रमुख माना है। ठाकोर का कहना है कि केवल विचार प्रधान कविता ही सर्वोच्च कोटि की कविता है, जिसे वे द्विजोत्तम जाति की कविता कहते थे। काव्य में आँसुओं तथा कोमल भावों को वे निर्बल पोचटता कहकर उनकी बड़ी आलोचना करते थे और कहते थे काव्य में ऐसे भावों को प्रोत्साहन नहीं देना चाहिए। उनके मन में कविता के मुख्य गुण थे अर्थघनता और वस्तु परामर्श। वे यह भी कहते थे कि वस्तुतः कविता के लिए चार बातें आवश्यक हैं—ऊर्मि, कल्पना, बुद्धि और प्रतिमा। वे मानते थे कि काव्य में विषय महत्ता की अपेक्षा दृष्टिकोण की महत्ता अधिक महत्त्वपूर्ण है।

[बलवंतराय ने नवीन छन्दों पर भी प्रयोग किया है। इन्होंने यह स्थापित किया है कि अच्छी कविता के लिए गेयता का गुण अनिवार्य नहीं है। कोई कविता गायी जाने योग्य न होकर पढ़ी जाने योग्य होते हुए भी अच्छी हो सकती है।] पृथ्वी छंद में इन्होंने बड़ी सफलतापूर्वक रचना की है और काव्यक्षेत्र में 'सानेट' (चतुर्दशपदी) को प्रसिद्ध किया। इन्होंने कहा है कि किसी भी वृत्त में यह आवश्यक नहीं है कि एक ही चरण में वाक्य पूरा हो जाय, वह दूसरे चरण तक बढ़ाया जा सकता है। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि वे प्रवाही छन्द के पक्ष में थे। उनके मन में कवियों को यह स्वतंत्रता भी होनी चाहिए कि किसी वृत्त में जहाँ एक गुरुमात्रा वाले अक्षर का विधान है, वहाँ वे दो लघुमात्रा वाले अक्षरों का उपयोग कर सकें। कविता में इन्होंने कई चरणों में पूरे होनेवाले लंबे वाक्यों का तथा उपवाक्यों का भी प्रवेश कराया। इनकी कविता द्राक्षपाक नहीं,

वरन् नारिकेल पाक के रूप में मानी गयी है। निर्बल और कोमल काव्यों की आलोचना करने के कारण ये काव्य में ओजस्विता के महाभट माने जाते है। इनका अध्ययन बड़ा गहन और विश्लेषणात्मक था और जिस विषय पर भी लिखा, अपनी विद्वत्ता का प्रमाण दे दिया। ये पडितयुग के एक असाधारण विद्वान् थे। इन्होने अनेक नवीन कवियो को प्रोत्साहित किया और उन्हे मार्ग दिखाया तथा अनेक उदीयमान कवियो के काव्य-सग्रहो मे विद्वत्तापूर्ण लबी प्रस्तावनाएँ लिखी। अधिकाश वर्तमान कवियों पर बलवन्त राय ठाकोर का बहुत गहरा प्रभाव है और ये उन्हे अपना कुलगुरु मानते है।

'भणकार' मे बलवन्तराय ने जानबूझकर छन्द और यति सम्बन्धी स्वतत्रता का उपयोग किया है, क्योकि इनकी दृष्टि मे सच्चे काव्य मे स्वयम्भू प्रवाह के लिए छन्द-लय-यति का बन्धन एक प्रकार का अन्तराय (बाधा) है। उनका विश्वास था कि विचारघन काव्य के लिए प्रवाही और अगेय पृथ्वीछन्द—जिसमे यति का कोई बधन नही है—उत्तम है। ठाकोर के पश्चात् इनके प्रसिद्ध किये हुए सानेट छन्द मे बहुत-से कवियो ने रचना की। ठाकोर ने विषय सम्बन्धी क्रान्ति भी उत्पन्न की। इनका कहना था कि विषय का उदात्त होना बहुत आवश्यक नही है, वरन् दृष्टिकोण और चित्रण आवश्यक है, क्योकि इन्ही के कारण कोई रचना कविता कही जा सकती है। इनके मत का प्रतिपादन इनके बाद के कवियो ने बहुत अधिक किया। बहुत ही साधारण विषयो पर भी कविताएँ लिखी गयी। किन्तु ठाकोर की बतायी विचारघनता से पूर्ण कविता का आनद केवल कुछ चुने हुए लोग ही ले पाते थे, जिससे काव्य जन-साधारण से दूर हटता गया। ठाकोर ने इस बात पर भी जोर दिया कि शब्दो का वर्ण-विन्यास (हिज्जे) उनके उच्चारण के अनुसार ही होना चाहिए। स्पष्टता के पक्षपाती तथा अपने मन के दृढ होने के कारण कुछ शब्दो का प्रयोग ऐसी विचित्रता से इन्होने किया है कि इनकी भाषा रूक्ष, कठोर और दुरूह हो गयी है, जिसे अधिक प्रयत्न करने पर ही समझा जा सकता है। हाँ, यह बात अवश्य है कि इनकी भाषा मे अभिव्यक्ति का बल है, जिसे उन्होने बलकट कहा है।

ठाकोर बहुमुखी प्रतिभा के विद्वान् थे। एक आलोचक के रूप मे वे स्वतंत्र और गभीर थे तथा बड़ी निर्भीकता एव कठोरता से अपने विचार व्यक्त करते

थे। गीत के विषय पर इनका विवाद नरसिंहराव से हो गया। दोनों बड़े विद्वान् और सूक्ष्म तत्व के प्रकांड पंडित थे, अतः बहुत लंबे समय तक दोनों का विवाद चला। ठाकोर के तत्सम्बन्धी विचार उनकी पुस्तक 'लिरिक' में प्रकाशित हैं और नरसिंहराव ने अपने विचार एक छोटी पुस्तिका में प्रकट किये हैं। ठाकोर लिरिक को ऊर्मिगीत और नरसिंहराव संगीत काव्य कहते थे। ठाकोर ने 'सरस्वतीचन्द्र' की बहुत विद्वत्तापूर्ण आलोचना की है। कुछ चुनी हुई कविताओं का संपादन ठाकोर ने 'आपणी कविता समृद्धि' शीर्षक में किया है और कविताओं के गुण-दोष पर प्रकाश डाला है।

'आरोहण' इनका एक चिन्तनात्मक खंडकाव्य है। ठाकोर द्वारा प्रतिपादित विचारघन कविता लिखने के लिए यह ग्रंथ परवर्ती कवियों के समक्ष एक आदर्श के रूप में है। भणकार, वधामणी, जूनुं पियरघर आदि ठाकोर की सर्वोत्तम कविताएँ हैं, जिनकी भाषा गौरवपूर्ण है, जिनमें गहन विचार हैं और जिनमें आत्मसंयम की भावना से युक्त उत्तम भावनाएँ हैं। इनकी 'प्रेम नो दिवस' और 'विरह' कविताओं में कुछ अपूर्व सानेट हैं। इनकी रचनाएँ सोद्देश्य होती थीं। इन्होंने कुछ कविताएँ अपने मित्रों तथा विद्यार्थियों पर लिखी हैं।

पद्य की भाँति इनका गद्य भी ऐसा है, जो असंतुलित और क्लिष्ट है तथा जो प्रयत्न करने पर ही समझा जा सकता है। किन्तु एक बार इनकी विशेषताएँ समझ लेने पर पाठक इनके लेख का आनंद भी ले सकता है। जानबूझकर ये बोलचाल के कड़े शब्दों का प्रयोग करते थे और कोमल तथा निर्बल शब्दावली को पास नहीं फटकने देते थे। ये तर्क प्रधान थे और सीधे आक्रमण करते थे।

गुजराती कविता को इन्होंने एक नयी दिशा दिखायी, नयी पीढ़ी के कवियों को प्रोत्साहित किया, विचार तत्व, मार्मिकता, दृष्टिकोण के स्वातंत्र्य और सरल शैली पर जोर दिया तथा छंद, भाषा, विषय, रचना, शैली आदि में अनेक नये प्रयोग किये।

खबरदार

कवि अरदेशर फरामजी पारसी थे, जिनका जन्म ६ नवम्बर, १८८१ को दमन (डामन) में हुआ था, जो पुर्तगाली उपनिवेश का एक भाग था।

बहरामजी मलबारी के बाद ये दूसरे पारसी कवि थे, जो सुव्यवस्थित गुजराती मे कविता लिखने के कारण प्रसिद्ध हुए। बचपन मे ही कविता करने की ओर इनका झुकाव था। इनका प्रथम काव्य-संग्रह 'काव्य रसिका' था, जो १९०१ में प्रकाशित हुआ था। पहले इन्होने दलपतराम की शैली पर रचना आरभ की थी, किन्तु कालान्तर मे इन्होने नरसिंहराव, 'कान्त', 'कलापी' तथा दूसरों का अनुकरण किया। अंग्रेजी काव्य से कुछ अच्छी बाते इन्होने ली और विनोद प्रधान प्रति काव्य (पैरोडी) को विकसित किया। खबरदार सदा समय के साथ चले और हर नयी प्रवृत्ति को स्वीकार करके उसके अनुसार रचना करते रहे। इनकी भाषा सादी, किन्तु संस्कृतमय और आडम्बरहीन है। छन्दो पर इनका विशेष अधिकार था। इन्होंने नये छन्दो का भी प्रयोग किया, जिन्हें वे 'मुक्तधारा अमीरी महाछन्द' कहते थे। अग्रेजी के ब्लैकवर्स (मुक्त काव्य) का गुजराती मे अनुकरण करने की दृष्टि से उन्होने इन छन्दों को आरंभ किया था। इन्हे एक महाकाव्य के लिए उचित माध्यम भी वे समझते थे। न्हानालाल की अपद्यागद्य शैली की इन्होने आलोचना की और महात्मा गाधी की प्रशंसा मे न्हानालाल ने 'गुजरात नो तपस्वी' की जो रचना की थी, उसका प्रतिकाव्य खबरदार ने लिखा 'प्रभातनो तपस्वी' (मुर्गा)। इस प्रतिकाव्य की भी वही अपद्यागद्य शैली थी और यह एक अत्यत सफल तथा मनोरजक प्रतिकाव्य है। नरसिंहराव ने इनके काव्य-सग्रह 'विलासिका' की बड़ी अच्छी समालोचना की। बाद मे कवि की रचनाओ के अन्य सग्रह प्रकाशिका, भारत नो टंकार, सदेशिका, कलिका, भजनिका, रासचन्द्रिका भाग १; २, कल्पाणिका, कीर्तितिका, गांधी युग नो पवाड़ो, प्रभातगमन, राष्ट्रिका, केटलांक प्रतिकाव्यो, लखे गीतो, गांधी बापु, श्री जी ईरानशाह नो पवाड़ो, नदनिका, श्री अशो जर थुस्त्रनी गाथा, दर्शनिका, युगराज महाकाव्य, प्रभात नो तपस्वी, कुक्कुट दीक्षा प्रकाशित हुए। इन्होने 'मनुराज' और 'अमरदेवी' नाम के दो नाटक भी लिखे है। इनके गद्य-ग्रथ है— 'गुजराती कविता अने अपद्यागद्य', 'गुजराती कवितानी रचनाकला' और गद्य सग्रह'। इन्होने दो अग्रेजी कविताएँ भी लिखी है जिन्हे 'सिल्केन टैसल लीफ ऐंड फ्लावर' तथा 'रेस्ट हाउस आफ स्पिरिट' के नाम से प्रकाशित कराया।

सन् १९०८ से खबरदार व्यापार के सिलसिले में मद्रास जाकर बस गये।

अपने अन्तिम दिनों में इनका स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता था। किन्तु साहित्यिक कार्यों में भाग लेना एवं पद्य रचना बराबर जारी रहा। 'काव्य रसिका' में इन्होंने दलपतराम की शैली पर कविताएँ लिखीं, 'विलासिका' में नरसिंहराव जैसे ऊर्मिगीत लिखे, 'प्रकाशिका' में वीर रस की कविताएँ तथा खण्डकाव्य हैं, 'भारत ना टंकार' और 'संदेशिका' देशभक्ति की कविताएँ हैं, 'रामचन्द्रिका' में विभिन्न प्रकार के रास हैं, 'दर्शनिका' में विचार प्रधान तथा दार्शनिक ढंग के ८ पंक्ति वाले मुक्तक हैं जो झूलणाछन्द में हैं, 'कल्लिका' में दूसरे मुक्तक, 'नन्दनिका' में सानेट और अनेक प्रतिकाव्य लिखे हैं। बम्बई विश्वविद्यालय में आपने 'गुजराती कविनी रचनाकला' नाम से ठक्कर वसनजी भाषण दिये।

इनकी भाषा सादी, स्पष्ट और वर्ण माधुर्य से पूर्ण है। भाषा पर इनका पूर्ण अधिकार था। 'दर्शनिका' में इन्होंने तत्त्वज्ञान, नीति, धर्म और विज्ञान संबंधी अपना जीवन-दर्शन देने की चेष्टा की है तथा प्रवाही, रोचक एवं गौरव-युक्त शैली में अनेक गंभीर विषयों पर विचार प्रस्तुत किये हैं। १९४१ में बम्बई के उपनगर अँधेरी में होने वाले गुजराती साहित्य परिषद् के १४ वें अधिवेशन के आप अध्यक्ष निर्वाचित हुए थे। यद्यपि ये जन्म से पारसी थे, किन्तु इनकी गुजराती में पारसी पुट लेशमात्र भी नहीं था और शुद्ध एवं व्यवस्थित गुजराती भाषा का ज्ञान इन्होंने अर्जित किया। काव्य में ये गेयता की प्रधानता मानते थे और वह गुण इनकी कविता में है। ये गुजराती तथा अंग्रेजी के कुछ श्रेष्ठ कवियों से बहुत प्रभावित थे और गुजराती साहित्य में इनके योगदान की मात्रा प्रचुर तथा कोटि में विविधता है। यद्यपि प्रतिभा की दृष्टि से इनकी गणना प्रथम कोटि के कवियों में नहीं होती, किन्तु इन्होंने काव्य के १८ संग्रह दिये हैं तथा 'दर्शनिका' में कुछ बहुत श्रेष्ठ राष्ट्रगीत, भजन, रास और दार्शनिक मुक्तक हैं।

बोटादकर

दामोदर खुशालदास बोटादकर २७ नवम्बर, १८७० को सौराष्ट्र के बोटाद ग्राम में उत्पन्न हुए थे। ये जाति के मोढवणिक थे। जब ये छोटे थे तभी इनके पिता का देहान्त हो गया था। इसीलिए ये आगे नहीं पढ़ सके। ये बम्बई जाने

और पुष्टि संप्रदाय की एक पत्रिका का संपादन करने लगे। इससे इन्हें संस्कृत और गुजराती के अध्ययन का अच्छा अवसर मिला। इस अध्ययन को इन्होंने बराबर जारी रखा। विकट परिस्थितियों से विवश होकर इन्होंने भावनगर राज्य के शिक्षा-विभाग में एक नौकरी कर ली।

इनके अनेक काव्य-संग्रह हैं, यथा—'कल्लोलिनी', 'स्रोतस्विनी', 'निर्झरिणी', 'राम तरंगिणी' और 'शैवलिनी'। इनका 'रामतरंगिणी' संग्रह बहुत प्रसिद्ध हुआ। नरसिंहराव ने इनके 'शैवलिनी' संग्रह में बड़ी विद्वत्तापूर्ण एवं प्रशंसात्मक भूमिका लिखी थी। 'लालसिंह सावित्री' नाम का एक नाटक भी बोटादकर ने लिखा है।

इन्होंने संस्कृत का भी अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया था और 'सुभाषित रत्न-भाण्डार' से बहुत-से अच्छे श्लोक कण्ठस्थ कर लिये थे। आधुनिक शिक्षा उन्हें अधिक प्राप्त नहीं हो सकी थी। यद्यपि इनकी भाषा में संस्कृत के शब्दों की अधिकता है, फिर भी वह सरलता से समझ में आ जाती है। यह ठीक है कि इनकी गणना प्रथम कोटि के प्रतिभासम्पन्न कवियों में नहीं है, किन्तु इनकी महत्ता इस बात में है कि निर्धनता, शिक्षा का अभाव तथा इसी प्रकार की अन्य कमजोरियों के होते हुए भी इन्होंने कविताओं के कई संग्रह दिये और कुटुम्ब जीवन के कुछ चित्र बड़ी ही कुशलता के साथ चित्रित किये हैं।

अपनी आरंभिक रचनाओं में बोटादकर ने दलपतराम की शैली का अनुकरण किया, किन्तु बाद के संग्रहों में उन्होंने नवीन धारा और प्रवृत्ति को ग्रहण किया। गृहजीवन और ग्रामजीवन के विविध रूपों में उनके चित्रणों से गुजरात के लोग उनकी ओर आकर्षित हुए। यद्यपि अंग्रेजी कविता से उनका सीधा सम्पर्क नहीं था, किन्तु तत्कालीन गुजराती कवियों की रचनाओं का ये विधिवत् अध्ययन करते थे तथा विषय, छन्द, शैली और रूप के मामले में उनका अनुसरण करते थे। मूलरूप से वर्ड्सवर्थ की रचनाओं को पढ़े बिना एक प्रकार से वे वर्ड्सवर्थ का अनुकरण कर सकते थे। सीधा सम्पर्क न होने से उन्हें अंग्रेजी की सर्वोत्तम रचनाओं का स्पष्ट ज्ञान नहीं हो सका, साथ ही उनकी प्रतिभा भी सीमित थी।

यद्यपि उनकी भाषा संस्कृत के तत्सम शब्दों से भरी हुई है, किन्तु कर्णकटु

नही है और समझने मे कठिन भी नही है। इनकी भाषा में पदलालित्य और माधुर्य है। ये रोचक अनुप्रासो को वडी कुशलता से प्रस्तुत कर सकते थे। अर्थ की दृष्टि से इनकी रचनाएँ स्पष्ट है।

'रासतरगिणी' में कवि ने लोकगीतो की सरल शैली का अनुसरण किया है। ये रास बहुत प्रसिद्ध हुए है। कवि ने गुजराती नारी के हृदय को खूब अच्छी तरह समझा है और उसके सभी सूक्ष्म भावो को, विशेषकर गृहजीवन सबधी, सुन्दरता से चित्रित किया है। इनमे से कुछ तो अत्यन्त श्रेष्ठ गीत है। इनकी कविताओ की पृष्ठभूमि में हमें करुणा के दर्शन होते है और यह भी स्पष्ट हो जाता है कि कवि को अपने जीवन में कठिन परिस्थितियो का सामना करने के लिए कठिन सघर्ष करना पडा था। इनकी कुछ उत्तम कविताएँ है—मानगुजन, भाईबीज, जननी, उर्मिला, रामलवारा, बुद्ध नगृहगमन आदि।

ललित

जमशकर महाशकर बुच का उपनाम ललित था। इनका जन्म जूनागढ में ३० जून, १८७७ को हुआ था। ये जाति के वडनगरा नागर थे। कुछ समय तक एक अग्रेजी दैनिक पत्र 'काठियावाड टाइम्स' के ये सम्पादक थे, फिर कई वर्षो तक न्यायालय में अनुवादक का काम करते रहे। कुछ समय तक इन्होने वडौदा के पुस्तकालय विभाग में काम किया और फिर राष्ट्रीय महाविद्यालय मे गुजराती के प्रोफेसर हो गये।

प्रकृति से ये बडे कोमल और प्रेमी थे और पारिवारिक जीवन के अनेक भावो का चित्रण बडी कामलता, रोचकता और गेयता के साथ किया है। इनकी रचनाओ का विशाल सग्रह 'ललित नो लल्कार' शीर्षक से प्रकाशित हुआ है। इनकी कुछ कविताएँ लालित्य से पूर्ण है और उनकी धुन का चुनाव (काव्यनो उपाड) वस्तुत बहुत ही सुन्दर है। इनका शब्दचयन बडा कोमल और सूक्ष्म है तथा गीत-लय को बनाये रखने और में ये बडे सतर्क है। गृहजीवन को चित्रित करने में इन्होने कुछ उदात्त भावो की अभिव्यक्ति की है फिर भी इनकी प्रतिभा सीमित है। प्रथम कोटि की सुचारु रचनाएँ देने में इन्हें सफलता नही मिली। न्हानालाल ने ठीक ही कहा है कि ये ललित और सुन्दर तो है, पर 'ल्होर' (लघु)

को यह अधिकार नहीं है कि वह कानून को अपने हाथ मे ले। ऐसे कई अवसर आये, जब उन्हें अपनी आत्मा की ध्वनि सुनायी पड़ी। उन्होंने स्वयं कहा है—"जब कभी मुझे आत्मा की सम्मति की आवश्यकता प्रतीत हुई, तभी मेरी छठी ज्ञानेन्द्रिय जागृत हो जाती थी और काम हो जाने पर फिर विश्राम करने चली जाती थी।" उनका ईश्वर-विश्वास अपार था और वे सत्य को ईश्वर का रूप मानते थे, जो सत्-चित्-आनंद मय कहा जाता है। उन्होंने अपने जीवन का आधार गीता को बना लिया था, जिसको उन्होंने अनूदित किया और उसकी नवीन व्याख्या की। गीता को वे अनासक्तियोग मानते थे और कहते थे, कौरवों और पाडवो के युद्ध को अच्छाई-बुराई के युद्ध का रूपक मानना चाहिए। वे प्रार्थना और उपवास की शक्ति पर बहुत विश्वास रखते थे। सत्य के बाद अहिंसा, प्रेम, सहिष्णुता और नम्रता आदि गुणों का उनमें उदय हुआ। अहिंसा का अर्थ ही प्रेम है। उन्होंने निर्धनों, पीड़ितो, अछूतो और निर्बलों को उठाने का बीडा उठाया। विशेषता यह थी कि वे साधन मे भी वही पवित्रता चाहते थे, जो उद्देश्य मे हो। बस, यही गुण उन्हे मार्क्सवादियो से भिन्न कर देता था। वे इतिहास की आर्थिक व्याख्या पर विश्वास नही करते थे। उनका कहना था, "मैं इस पर विश्वास नही करता कि पुरुष की विचार-प्रक्रिया को प्रकृति प्रेरित और नियन्त्रित करती है।" वे उच्च स्तरवाले जीवन का विरोध करके सादे जीवन को अच्छा समझते थे। वे कहते थे कि राजनीति को धर्म से पृथक् नही करना चाहिए। उनकी इच्छा थी कि राजनीति को दिव्यता प्रदान की जाय। उन्होंने सभी धर्मो को सहन करना तथा आदर देना सिखाया और हिंदुत्व की परिभाषा यह की कि जो सदैव सत्य की खोज मे लगा रहे। वे सब धर्मो की मौलिक एकता पर विश्वास करते थे। उन्होंने नारियो की स्थिति सुधारी तथा घरेलू एव सार्वजनिक जीवन मे उन्हे उचित स्थान प्रदान किया। उन्होंने देश की अनेक कठिन समस्याओ को समझा तथा लोगो को सलाह दी कि उनका सामना सत्य एवं अहिंसा के द्वारा करो। विदेशी शासन, गरीबी, सामाजिक तथा आर्थिक विषमता एव ऐसी ही दूसरी अनेक समस्याएँ थी, जिनका सामना गाधीजी ने अपने ढग से किया। भाषा, वस्त्र तथा धार्मिक विश्वासो के आधार पर किये जानेवाले अद्भुत व्यवहार—इन मामलो को भी उन्होंने सुलझाने

का प्रयत्न किया। उन्होंने बड़े पैमाने पर प्रयोग आरम्भ किये और प्राचीन भारतीय संस्कृति के गौरव की स्थापना केवल विचार के द्वारा नहीं, वरन् उस प्रकार का जीवन अपनाकर की। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह—इन महाव्रतों को उन्होंने आधार बनाया। जिन उच्च आदर्शों का उपदेश वे करते थे, उनको व्यवहार में लाते थे। उन्होंने भारतीय जनता की पूरी दृष्टि ही बदल दी। केवल सर्वसाधारण जनता को ही नहीं, वरन् श्रेष्ठ विद्वानों को भी उन्होंने प्रभावित और प्रेरित किया। कवि और लेखकों की दृष्टि निम्नता तथा पीड़ितों पर गयी और नव स्वातन्त्र्य एवं शान्ति के गीतों की रचना हुई। लोक-साहित्य का पठन आरम्भ हुआ, काव्य के लिए विविध विषयों की उत्पत्ति हुई और वह केवल महान् विषयों तक ही सीमित न रहा। राजनीतिक आन्दोलन में एक नवीन स्फूर्ति तथा साहस का उदय हुआ। इसके अतिरिक्त दो विश्व-युद्ध हो चुके थे, रूसी क्रान्ति हुई, और अन्य प्रान्तीय भाषाओं का गुजराती पर प्रभाव पड़ चुका था।

महात्मा गांधीजी, मोहनदास करमचंद गांधी, का जन्म सौराष्ट्र के अन्तर्गत पोरबंदर में सन् १८६९ को प्राचीन विचारधारा के वैष्णव वणिक्-परिवार में हुआ था। बचपन से ही उन्हें सत्य से प्रेम था। बैरिस्टरी पास करने के लिए जब वे इंग्लैंड जा रहे थे, तब उनकी माता ने उनसे शपथ करायी थी कि वे मांस-मदिरा का सेवन तथा पर-स्त्री-गमन नहीं करेंगे। उन्होंने उस संकल्प का पालन दृढ़तापूर्वक किया और बड़ी सादगी से वहाँ रहे। इंग्लैंड से लौटकर वे राजकोट में वकालत करने लगे, पर शीघ्र ही दक्षिण अफ्रीका चले गये जहाँ उन्होंने भारतीयों का संगठन किया। गोरों के अत्याचारों के विरुद्ध उन्होंने सत्याग्रह किया और सफलता प्राप्त की। सन् १९१८ में वे भारत आये और सन् १९२० में सत्याग्रह के लिए प्रस्ताव प्रस्तुत किया। उन्होंने साबरमती आश्रम और बाद में सेवाग्राम आश्रम की स्थापना की। सन् १९२१ में बंदी बना लिये गये और सन् १९२३ में छोड़े गये। सन् १९२८ में उन्होंने बारडोली के किसानों का मामला हाथ में लिया और सत्याग्रह किया। सन् १९३० में डांडी अभियान हुआ। गांधीजी पकड़ लिये गये। बाद में उन्हें 'गोलमेज परिषद' के लिए आमन्त्रित किया गया, जो असफल रही और वे फिर बंदी बना लिये गये। सन्

१९३७ मे कांग्रेस-मत्री थे, पर शीघ्र ही उन्होने त्याग-पत्र दे दिया। तब गांधीजी ने व्यक्तिगत आदोलन आरभ किया और सन् १९४२ मे 'भारत छोडो' प्रस्ताव पास हुआ। सभी नेता पकड़ लिये गये और सन् १९४५ मे छोड़े गये। देश का विभाजन हुआ, स्वराज्य मिला, बडे पैमाने पर जातीय दंगे हुए तथा गाधीजी के उदार एव सहिष्णु विचारों के कारण उनकी हत्या हुई। इस प्रकार सन् १९१४ से भारत का इतिहास इस राष्ट्रपिता के जीवन के साथ गुथा हुआ है।

गांधीजी ने कई पुस्तके लिखी है—हिन्द स्वराज, सत्यना प्रयोगो, दक्षिण आफ्रिकाना सत्याग्रह नो इतिहास, धर्मयुद्ध नु रहस्य, धर्म मथन, मंगल प्रभात, रचनात्मक कार्यक्रम , आरोग्य नी चावी, नवजीवन, हरिजन बन्धु (पत्र) आदि। इन ग्रथो मे इन्होने सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक तथा नैतिक समस्याओ पर और सत्याग्रह, असहयोग, स्वतत्रता एव स्वदेशी आंदोलन आदि विषयो पर अपने विशिष्ट विचार व्यक्त किये हैं। इनका जीवन राजनीति से भरपूर था, अत. नाना विषयो पर ये अपने विचार पत्र-पत्रिकाओ के माध्यम से प्रकट करने लगे। गुजराती और अंग्रेजी दोनो भाषाओ मे वे लिखते थे। कुछ प्रमुख पत्र, जिनमे वे लिखते थे, ये है—इडियन ओपीनिअन, नवजीवन, हरिजन, यग इडिया और हरिजन-बधु।

उनका आत्मचरित 'सत्य ना प्रयोगो' संसार के सर्वश्रेष्ठ आत्म-चरितो मे से है। इसके छोटे-छोटे वाक्य सीधे हृदय से निकले हुए उद्गार है। सत्यता, दिव्यता और नैतिकता के प्रति लेखक की अपार श्रद्धा होने के कारण पाठको के ऊपर बहुत बड़ा प्रभाव पड़ता है। लेखक की दूसरी विशेषता है निर्भीकता तथा नम्रता के साथ आत्म-विश्लेषण करना। यह आत्मचरित केवल साहित्य की एक कृति ही नहीं है, वरन् एक दृढ निश्चयी व्यक्ति का सत्य-प्राप्ति के लिए अनवरत प्रयास है और जीवन तथा उसकी विविध समस्याओं को देखने की एक विशेष दृष्टि है।

उपर्युक्त पत्रो मे नियमित रूप से सामग्री देने के लिए गाधीजी ने अनेक विषयो पर बहुत-से निबध लिखे। सभी मे उनकी अपनी शैली थी, सीधी-सादी और विषयानुकूल। विषय को प्रस्तुत करने का उनका अपना निराला ढंग था।

जिन विषयों में उन्होंने आवश्यकता समझी, उनको दैवी तेज से पूर्ण सशक्त भाषा में व्यक्त किया।

गांधीजी उन सबके बापू बन गये, जो उनके सम्पर्क में आये। वे गांधीजी का बहुत सम्मान करते थे और सभी मामलों में यहाँ तक कि बड़े से बड़े व्यक्तिगत मामलों में भी उनकी सलाह लिया करते थे। इस प्रकार गांधीजी की डाक बहुत भारी हो जाती थी। प्रतिदिन बहुत-से पत्र आते थे, जिनका उत्तर उन्हें देना पड़ता था। उत्तर देने में उनकी ममता प्रकट होती थी। ये पत्र ही उनके अपने साहित्य 'पत्र-साहित्य' का निर्माण करते हैं। जिन्हें भी सलाह की आवश्यकता थी, उन सब का मार्ग-दर्शन गांधीजी ने किया।

दैनिक प्रार्थना पर गांधीजी का बहुत बड़ा विश्वास था और नित्य करते थे। सामूहिक प्रार्थनाओं में छोटा-सा भाषण भी दिया करते थे। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद वे दिल्ली में प्रार्थना चलाया करते थे। डायरी के रूप में उनके दिये हुए ऐसे भाषण संगृहीत हैं। इन भाषणों से हमें ज्ञात होता है कि विषवत साम्प्रदायिक घृणा को देखकर उन्हें कितनी पीड़ा होती थी। अपनी सबल लेखनी और सशक्त चरित्र के द्वारा इस घृणा और हिंसा को मिटाने का उन्होंने अनवरत प्रयत्न किया।

उनका 'अनासक्तियोग' गीता की एक व्याख्या है। गीता का जैसा अध्ययन उन्होंने किया था और जो कुछ समझा था, उसीको 'अनासक्तियोग' में प्रकट किया है। सभी मामलों में निश्चय करने में वे इसी महान् ग्रंथ का सहारा लेते थे और जब कभी कोई उलझन उपस्थित होती, तो एकान्त में बैठकर, एकाग्रचित्त होकर इसी अमरवाणी से प्रकाश पाने की प्रतीक्षा करते थे।

अपने शक्तिशाली व्यक्तित्व, उच्च नैतिकता, दिव्यता, त्याग, सादगी और आत्मगौरव के कारण उनके साथ बहुत-से सच्चे तथा कुशल कार्यकर्ता हो गये थे। गांधीजी से प्रेरणा पाकर उन सबने भी एक सबल और प्रथम कोटि के साहित्य-सृजन में योग दिया।

गांधीजी ने कुछ नये लेखकों को प्रोत्साहित किया, जो सादी, किन्तु प्रभाव-पूर्ण शैली पसंद और कोरे पांडित्य प्रदर्शन को नापसंद करते थे। जटिल शब्दों में वर्णित आलंकारिक भाषा की अपेक्षा वे छोटे-छोटे और सादे वाक्यों में भाव

व्यक्त करते थे। इसीलिए उस समय के कई लेखकों में 'पंडित-युग' की गंभीर और विद्वत्तापूर्ण विशिष्ट दृष्टि का अभाव दीख पड़ता है। गांधी-विचार-धारा के कुछ श्रेष्ठ लेखकों ने राष्ट्रीयता, आत्मसम्मान, भारत की प्राचीन संस्कृति के प्रति आदर, अध्यात्मवाद, रूढ़िवादिता, उच्चनैतिक सिद्धान्तों और संयम आदि पर बड़ा बल दिया है। दूसरी ओर श्री क० मा० मुन्शी ने भी लेखकों के एक वर्ग को प्रेरणा प्रदान की। ये भी सादी, सीधी और प्रभावपूर्ण शैली में लिखते थे, किन्तु उनके ढंग आधुनिक और उनकी दृष्टि विस्तृत थी। वे सौंदर्य, आकर्षण, प्रभाव और कुशल अभिव्यक्ति पर बल देते थे।

इस प्रकार पंडित-युग के बाद नवीन युग का आरंभ गांधीजी और मुन्शीजी से आरंभ होता है। यद्यपि गांधीजी अपने को साहित्यकार नहीं मानते थे, किन्तु इस महान् विश्ववन्द्य विभूति तथा युग पुरुष ने समूचे राष्ट्र में उच्च भावना और लहर भर दी और इस प्रकार अनेक साहित्यकारों का प्रेरणा-स्रोत बन गया। उन्होंने गुजरात विद्यापीठ की स्थापना की, जहाँ राष्ट्रीय शिक्षा दी जाती थी। यहाँ शिक्षकों और विद्यार्थियों का एक ऐसा दल तैयार हुआ, जिसने विविध प्रकार से गुजराती साहित्य की वृद्धि की। उन लेखकों में से कुछ के नाम ये हैं—कालेलकर, महादेवभाई, रामनारायण पाठक, अमृतलाल सेठ, नरहरि पारिख, किशोरलाल मशरूवाला, गीजूभाई बधेका, जुगतराम दवे, रसिकलाल पारिख, मुनि जिन विजयजी, पंडित सुखलालजी, सुन्दरम्, उमाशंकर जोशी, नागरदास पारिख, स्नेहरश्मि तथा अन्य। गांधीजी के जीवन ने गुजराती साहित्य की अभिवृद्धि की और केवल गुजरात के ही नहीं, वरन् विदेशी लेखकों को भी प्रेरणा और विचार दिये।

कालेलकर

काकासाहेब दत्तात्रेय बालकृष्ण कालेलकर गौड सारस्वत ब्राह्मण हैं और इनका जन्म सन् १८८६ में बेलगाम के समीप शहापुर में हुआ था। सन् १९१७ में इन्होंने महात्मा गांधी के सत्याग्रह आश्रम में प्रवेश किया था। यद्यपि इनकी मातृभाषा मराठी है, किन्तु ये गुजराती में पढ़ाते और लिखते थे। उपनिषद् और ज्योतिष का इनका अच्छा अध्ययन है। इन पर विवेकानंद, टैगोर, गांधीजी,

रानडे, अरविंद, कुमारस्वामी, मिस्टर निवेदिता तथा तिलक के लेखों का बहुत अधिक प्रभाव है। इन्होंने भ्रमण बहुत अधिक किया है, विशेषकर उत्तर भारत और हिमाचल प्रदेश में। पहले ये बड़ौदा के गंगनाथ विद्यालय में अध्यापक थे, किन्तु बाद में गुजरात विद्यापीठ में चले गये और वहां आचार्य हो गये। गांधीजी के शिष्य बनकर इन्होंने गांधीवादी दर्शन को अपना लिया। ये कई बार जेल भी गये। अब ये गांधी-स्मारक-निधि तथा राष्ट्रभाषा प्रचार-समिति का काम सँभालते हैं। इन्होंने शिक्षा तथा मानवहित कार्यों के लिए अपना जीवन समर्पित कर रखा है।

काका कालेलकर गुजराती के कुछ प्रमुख गद्य-लेखकों में से एक माने जाते हैं। अपनी पुस्तक 'स्मरण यात्रा' में जो आत्मचरित मरीखी है, इन्होंने अपने आरंभिक जीवन की घटनाएँ बड़े रोचक ढंग से लिखी हैं। प्रवास सम्बन्धी इन्होंने कई पुस्तकें लिखी हैं, जैसे हिमालय नो प्रवास, पूर्व आफ्रिका मा, ब्रह्मदेश नो प्रवास और लोकमाता आदि। कालेलकर ना लेखो, जीवन नो आनन्द, जीवन-भारती, जीवन संस्कृति, जीवनविकास, रखड़वानो आनन्द और जीवना तहवारा पुस्तकों में इनके निबंध संगृहीत हैं। इन्होंने गीतामार, गीताधर्म, आतरनी दिवालो तथा मानवी खडियेरो पुस्तकें भी लिखी हैं और इनके कुछ पत्र भी प्रकाशित हुए हैं।

मुख्यतः इन्होंने निबंध लिखे हैं, जो विचारप्रधान, रुचिकर और उपदेशात्मक होते थे। इनका गद्य तीक्ष्ण, गरिमायुक्त और कलात्मक होता था। संस्कृत साहित्य के विस्तृत अध्ययन, विशेषकर पौराणिक साहित्य के, कारण भारतीय संस्कृति के साथ इनकी पूर्ण सहानुभूति थी और उसके प्रसंगों की व्याख्या का इनका ढंग मौलिक एवं काव्यात्मक होता था। इन सब विशेषताओं के कारण पाठकों पर इनके गद्य का काफी प्रभाव पड़ता था। इन्होंने हिमालय प्रदेश की पैदल यात्रा का आनन्द लिया था और भारत की नदियों के दर्शन किये थे, जिन्हें ये लोकमाता कहते हैं। ये अपने को 'कुदरतघेला' (प्रकृति के पीछे पागल) कहते हैं। इन्होंने आकाश के तारों का सूक्ष्म अवलोकन किया है और आनन्द प्राप्त किया है। उसी आनन्द का वितरण पाठकों को अपने 'जीवननो आनन्द' में किया है। अपने चारों ओर फैली हुई वस्तुओं में

सौन्दर्य देखने की शक्ति उनमे है, तभी उनका गद्य काव्यात्मक और रसपूर्ण हो जाता है। प्राचीन भारतीय संस्कृति के प्रति आदर की भावना एवं गाधीवादी जीवन के प्रति प्रेम के साथ-साथ उनमे एक कवि और कलाकार की दृष्टि का विकास हुआ है, जिससे वातावरण के सौंदर्य का अवलोकन कर वे कला और सौंदर्य का वर्णन मुहावरेदार गद्य मे कर सके। लिखते समय संस्कृत साहित्य के उद्धरण उन्होने प्राय प्रस्तुत किये है। विषयानुकूल ये अपनी शैली मे परिवर्तन कर देते है। 'स्मरणयात्रा', जिसमे इनका आरभिक जीवन वर्णित है, मे शैली कुछ सुगम और आनन्दप्रद है। 'कालेलकरना लेखो' मे इनके गभीर विचारात्मक निबंध है। इनके लेखो मे कुछ नयी और मौलिक बात कही हुई होती है। जब ये साधारण ढग से लिखते है, तब भी उसके पीछे कोई गंभीर विचार रहता है। इन्होने अनेक नये शब्द बनाये है। इनका प्रकृति-निरीक्षण तथा यात्रा-वर्णन इनके साहित्य का सर्वोत्तम अंग माना जाता है। निबध-लेखन मे इनका स्थान गुजराती साहित्य के श्रेष्ठ निबंधकार नर्मदाशंकर, मणिलाल, आनन्दशंकर और गांधीजी के समकक्ष बड़ी सरलता से रखा जा सकता है। भारत की नदियो का इनका वर्णन बडा काव्यात्मक और रंगीन है। 'ओतरानी दिवालो' मे इन्होने जेल के जीवन का वर्णन किया है। 'जीवन-भारती' मे इनके कुछ विवेचन है। इन्होने धार्मिक विषयो, त्यौहारो, आचारो, सामाजिक रीतियो, समाज, कला, ग्राम-जीवन तथा दूसरे अनेक विषयो पर लिखा है। यद्यपि इनकी अपनी मौलिक दृष्टि होती थी, फिर भी गांधीवादी दृष्टिकोण को इन्होने कभी नही छोड़ा। इन्होने कला और नैतिकता के समन्वय का समर्थन किया है। अपने गद्य मे इन्होने संस्कृत शब्दो का उपयोग स्वतत्रतापूर्वक किया है और साहित्यिक विषयो पर विचार करते समय तो संस्कृतगर्भित आलकारिक शैली को ग्रहण किया है। इन्होने लगभग ४००० पृष्ठ गुजराती गद्य के लिखे है, जिससे निबंध, यात्रा और आत्मचरित विधाओ की अभिवृद्धि हुई है।

मशरुवाला

किशोरलाल मशरुवाला सूरत के एक वैश्य थे। इनका जन्म सन् १८९० मे हुआ था। १९१३ मे इन्होने वकालत शुरू की, किन्तु १९१७ मे छोड़ दिया

और गांधीजी के आश्रम में प्रविष्ट हो गये। गुजरात विद्यापीठ के ये प्रथम रजिस्ट्रार थे। स्वामी नारायणसाहित्य, उस सम्प्रदाय के साधुओं तथा गांधीजी के विचारों का आप पर बहुत गहरा प्रभाव था। यद्यपि सभी मामलों में वे गांधीजी के साथ दौड़े नहीं जाते थे, किन्तु उनकी सच्चाई और सत्य की परम पिपासा के कारण उन्हें गांधीजी का प्रेम और ममत्व प्राप्त था। अपनी आध्यात्मिक साधना के लिए उन्होंने केदारनाथजी का मार्ग निर्देशन प्राप्त किया था। १९४७ के आन्दोलन के समय तथा महात्माजी की मृत्यु के बाद कई वर्षों तक उन्होंने गांधीजी के पत्र 'हरिजन' का सम्पादन किया था। जीवन पर्यन्त वे दर्शन-शास्त्रों का अध्ययन करते रहे और एक साधु की भांति कठोर जीवन बिताते हुए साधना में रत रहे।

उनका सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ 'जीवन शोधन' है, जिसमें उन्होंने दार्शनिक समस्याओं पर स्वतन्त्र ढंग से विचार किया है। वे सावधानचित्त से तार्किक विश्लेषण करते हुए विषय पर विचार करते थे। उनके धार्मिक और दार्शनिक निबंध उनके दूसरे ग्रंथों में संगृहीत हैं, जैसे 'गीता मंथन', 'अहिंसा विवेचन', 'सत्यमय-जीवन', 'समूळी क्रान्ति' तथा 'संसार अने धर्म'। इन सभी पुस्तकों में उन्होंने जीवन के आधारभूत मूल्यों पर अपने मौलिक विचार निर्भीकता के साथ व्यक्त किये हैं। इनके क्रान्तिकारी विचारों ने लोगों को गम्भीर विचार के लिए विवश कर दिया। उन्होंने कुछ जीवन चरित्र भी लिखे हैं, जैसे 'राम अने कृष्ण', 'बुद्ध अने महावीर', 'सहजानंद स्वामी' और 'ईशुख्रिस्त'। इन चरित्रों में उन्होंने उनके जीवन का विश्लेषण बड़ी सूक्ष्मता से किया है, जिससे उन महापुरुषों के पवित्र जीवन का उदात्त रूप सामने प्रकट हो जाता है। इनकी कुछ शिक्षा-सम्बन्धी पुस्तकें भी हैं, जैसे 'केळवणीविवेक', 'केळवणीना पाया' आदि, जिनमें उन्होंने बताया है, कि हमारी शिक्षा पद्धति में क्या-क्या मौलिक परिवर्तन होने चाहिए। इनकी पुस्तक 'समूळी क्रान्ति' में कुछ धार्मिक और सामाजिक समस्याओं की बड़ी तीव्र आलोचना है। खलील जिब्रान के ग्रंथ का गुजराती अनुवाद 'विदाय वेळाए' नाम से इन्होंने किया है और स्वेन हेडिन के ग्रंथ का अनुवाद '[illegible]' नाम से। इनका 'उपनिषद् गीता' भी एक अनुवाद है जिसमें इन्होंने उपनिषदों—ईश और केन—का सुगम रूपान्तर किया है। इनकी 'श्रीमुरु[illegible]

मर्यादा' पुस्तक मे उन्होने स्त्री-पुरुप के काम-सम्बन्ध को अत्यन्त संयमित रखने पर वल दिया है। 'गाधी-विचार-दोहन' मे उन्होने गांधीजी के विचारो का सग्रह किया है। वे गाधीमत के एक आदर्श व्यक्ति थे और वड़ी निर्भीकता के साथ देश के वड़े से वड़े व्यक्ति की आलोचना कर देते थे। उनका जीवन अत्यन्त पवित्र और साधु-सम था। दर्शन, धर्म और शिक्षा के विपयो में गुजराती साहित्य की आपने अमूल्य सेवा की।

महादेवभाई देसाई

महादेव देसाई अनाविल ब्राह्मण थे। इनका जन्म वलसार ताल्लुका के अन्तर्गत दिहण मे सन् १८९२ मे हुआ था। इनमे साहित्यिक क्षमता अधिक थी। नरहरि पारिख के साथ मिलकर इन्होने टैगोर की 'चित्रांगदा' का अनुवाद किया था। अग्रेजी तथा भारत की प्रान्तीय भापाएँ मराठी, वंगाली और हिन्दी से गुजराती अनुवाद करने मे आपने वडी पटुता प्राप्त कर ली थी, किन्तु अपना सारा जीवन आपने महात्मा गाधी के चिर-संग और उनके मत्री वने रहने में विता दिया। महात्मा गाधी के आत्मचरित्र का अनुवाद आपने अग्रेजी मे किया और उनके कुछ लेखो का अनुवाद अंग्रेजी से गुजराती मे और गुजराती से अग्रेजी मे किया। नरहरि पारिख के सहयोग मे इन्होंने टैगोर के प्राचीन साहित्य और विदाय अने अभिशाप वगाली से अनूदित किया। शरदवावू की कुछ पुस्तको का तथा प० जवाहरलाल नेहरू के अंग्रेजी आत्मचरित्र का भी अनुवाद आपने किया। गुजराती के सर्वश्रेष्ठ अनुवादको मे इनकी गणना है। कठिन से कठिन और सूक्ष्म भावो को भी आप प्रवाहमयी, मधुर और प्रासादिक गुजराती मे व्यक्त कर देते थे। 'महादेव भाईनी डायरी' ५ भागो का एक विशाल ग्रथ है, जिसमे आपने गांधीजी के जीवन तथा विचारो पर टिप्पणियाँ लिखी हैं। डायरी साहित्य की दृष्टि से यह एक अमूल्य ग्रंथ है, साथ ही गाधीजी के मंत्री की दृष्टि से भी। आपने 'वल्लभभाई का जीवन' और 'वे खुदाई खिदमतगारो' तथा 'वारडोली सत्याग्रह नो इतिहास' का सर्जन भी किया है।

इन्होने सव कुछ त्याग कर अपने मालिक-महात्मा की सेवा सच्चाई से की और उनके हृदय मे भी अपने महादेव के लिए प्यार तथा ममत्व था। १९४२ के आदोलन के समय आपकी मृत्यु जेल मे हुई।

नरहरि पारिख

नरहरि द्वारकादास पारिख एक खडायात वैश्य थे। इनका जन्म खेडा जिले में सन् १८९१ में हुआ था। मशरूवाला की भाति इन्होने भी १९१३ में वकालत शुरु की थी, किन्तु १९१७ में सत्याग्रह आश्रम में आ गये। महादेवभाई के साथ इन्होने टैगोर के ग्रथा का अनुवाद किया। इन्होंने टाल्सटाय के कुछ ग्रथा का भी अनुवाद किया था। नवल ग्रथावलि का सपादन इन्होंने किया और 'जाडणी कोश' तैयार करने में इन्होने बडा परिश्रम किया। कालेलकर के साथ आपने 'मानव अर्थशास्त्र पूवरग' लिखा तथा यत्रनी मर्यादा, वल्लभभाई और महादेव भाई की जीवनिया लिखी। महादेवभाईनी डायरी का सम्पादन भी आपने ही किया। आपने गुजरात विद्यापीठ में प्रवेश करके गाधीदर्शन का प्रतिनिधित्व अपने विविध लेखो द्वारा बडी ईमानदारी से किया।

अध्याय २०

क० मा० मुन्शी

गुजराती साहित्य में कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी कई दृष्टियो से विशेष उल्लेखनीय हैं। ये वकील, देशप्रेमी, समाज सुधारक, विधायक, शासक, मानवता-प्रेमी, कला-प्रेमी तथा आदर्शवादी है। इतना ही नहीं, ये उपन्यासकार, नाटक-कार, विद्वान्, शिक्षा-शास्त्री, पत्रकार और निबंध-लेखक भी है। आपने बहुत-से ऐसे कार्य किये हैं, जिनसे आपकी ख्याति देशव्यापी हो गयी है। अधिक अवस्था होने पर भी आज आप देश के कतिपय विशिष्ट विद्वानो मे से है। आप प्रतिभासम्पन्न साहसी, तीव्र बुद्धि और सामञ्जस्यकारी है। अपने विभिन्न कार्यक्रमो तथा कार्यों में ये सदा व्यस्त रहते हैं। आप तरल प्रकृति के है, तथा आप मे इस बात की असाधारण मानसिक शक्ति है कि एक ही क्षण मे आपका मन एक विषय से दूसरे विषय मे उतनी ही तीव्रता और एकाग्रता के साथ लग जाता है।

कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी का जन्म भड़ोच मे सन् १८८७ मे हुआ था। इनके पिता एक सरकारी कर्मचारी थे, जो उन्नति करके डिप्टी कलेक्टर के पद तक पहुँचे। बचपन मे मुन्शीजी गुजराती नाटक देखने के बड़े शौकीन थे जो प्रायः खेले जाते थे। नरसिंह मेहता, प्रेमचन्द्रिका आदि नाटकों का, जिन्हे ये प्राय. प्रतिदिन देखा करते थे, इनके मन पर गहरा प्रभाव पड़ा। जब ये बड़ौदा मे पढ़ते थे, तब ये श्री अरविंद के सम्पर्क मे आये, जो उस समय इनके शिक्षक थे। श्री अरविंद से ये बहुत प्रभावित हुए। ये सूरत के कांग्रेस-अधिवेशन मे उपस्थित रहे, और अपने एक उपन्यास मे इन्होंने अपनी धारणाओ को व्यक्त किया है। वकालत पास करके ये बंबई मे बस गये और वकालत करने लगे। सन् १९१२

मे उनका पहला कहानी-सग्रह 'मारी कमला' प्रकाशित हुआ और १९१३ मे इनका सामाजिक उपन्यास 'वेरनी वसूलात' एक साप्ताहिक गुजराती पत्रिका मे धारावाही रूप मे प्रकाशित हुआ। १९१५ में इन्होने 'यंग इंडिया' का आरम्भ किया और अपना दूसरा सामाजिक उपन्यास 'कोनोपात' प्रकाशित करवाया। गुजराती साहित्य की सेवा मुन्शीजी ने विविध अगो से की। उन्होने उपन्यास, कहानी, रोमाचकारी कथा, पौराणिक और ऐतिहासिक नाटक, जीवनचरित, विवेचनात्मक निबन्ध, सभी कुछ लिखा। अंग्रेजी में भी आपने कई ग्रंथ लिखे, जिसमें गुजराती साहित्य का इतिहास भी है। ५० वर्षों की अवधि मे आपके साहित्यिक योगदान का परिमाण ही अधिक नही है, वरन् वह विविधता और शक्ति मे भी पूर्ण है। आपकी कृतियो का वर्गीकरण निम्न-प्रकार से हो सकता है —

लघु कहानियां—'मारी कमला'।

सामाजिक उपन्यास—वेरनी वसूलात, कोनोपात, स्वप्नदृष्टा, स्नेह-सम्भ्रम, तपस्विनी भाग १, २, ३।

सामाजिक नाटक—काका शेठनु स्वातन्त्र्य, बे खराब जण, आज्ञाकित, ब्रह्मचारी नशी, ब्रह्मचर्याश्रम, पीडाग्रस्त प्रोफेसर, डॉ० मधुरिका, छीए तेज ठोर, वाह रे में वाह्।

ऐतिहासिक रोमाचकारी कथाएं—पाटणनी प्रभुता, गुजरातनानाथ राजाधिराज, पृथ्वीवल्लभ, भगवान कौटिल्य, जय सोमनाथ।

ऐतिहासिक नाटक—ध्रुवस्वामिनी देवी।

पौराणिक नाटक और उपन्यास—पुरंदर पराजय, अविभक्त आत्मा, तपण, पुत्र समावडी, लोपामुद्रा, शम्बर कन्या, देवदीधेली, विश्वामित्र ऋषि, लोमहर्षिणी, भगवान् परशुराम।

आत्मचरित सबधी—अर्धेरस्ते, सीधा चढाण, स्वप्नसिद्धिनी शोधमा, मारी बिनजवाबदार कहाणी, मुरोपनी यात्रा, शिशु अने सखी।

प्रकीर्ण—नरसैयाभक्त हरिनो, नाद, आदि वचनो भाग १–२, गुजरातनी ज्योतिर्धरो, थोडां रसदर्शनो, नरसैयाभक्त हरिनो, नाद, आदि वचनो भाग १–२, गुजरातनी अस्मिता, पश्चिमी प्रमुख परेशी।

आपने अग्रेजी की कई पुस्तके लिखी है।*

वचपन मे मुन्शीजी डुम्मस मे एक लडकी के सम्पर्क मे आये, जो सदैव उनके सपने मे आने लगी। अपनी पहली पत्नी की मृत्यु के वाद मुन्शीजी ने सन् १९२६ मे श्रीमती लीलावती सेठ मे विवाह कर लिया, जो वहुत ही आनन्द-प्रद और सफल सिद्ध हुआ। उन्होने काग्रेस मे प्रवेश किया, जेलयात्रा की और १९३७ मे वम्वई के गृहमत्री वन गये। इन्होने एक गुजराती मासिकपत्र आरभ किया, साहित्य-ससद की स्थापना की, कई वर्षो तक ये साहित्य-परिपद् का सचालन करते रहे और तीन वार इसके सभापति चुने गये। ववई विश्वविद्यालय मे आपने 'ठक्कर वसनजी व्याख्यान-माला' के अन्तर्गत 'गुजरात के आदि आर्य' विपय पर भापण दिये।

आपने १९३८ मे 'भारतीय विद्या भवन' की नीव वम्वई मे डाली, जिसका अव इतना विकास हुआ है कि यह सस्था शिक्षा और सस्कृति के क्षेत्र मे सर्वोत्तम सस्थाओ मे से एक है और सस्कृत तथा भारतीयता के क्षेत्र मे शायद सर्वश्रेष्ठ। इसकी शाखाएँ दिल्ली, मद्रास, कलकत्ता, वँगलोर, कानपुर, इलाहावाद, गुजरात आदि स्थानो मे है। मुन्शीजी हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के भी अध्यक्ष वन चुके है। आपने १९५१ मे 'सस्कृत विश्व परिपद्' की स्थापना की जिसके आप कार्याध्यक्ष है। इसकी लगभग ६०० शाखाएँ तथा केन्द्र, भारत में एवं विदेश

*अंग्रेजी कृतियाँ—'Gujarat and its literatures' 'Articles in social welfair, 'kulpati's latters 'Early Aryans in Gujarat Desha; The saga of Indian sculpture, I follow the Mahatma; Akhand Hindustan; The Indian Deadlock; The ruin that Britain wrought; The changing shape of Indian Politics, Gandhi: the Master, The End of an Era; The creative art of Life; Bhagwad Gita and Modern life; Our greatest need and other Essays; Sparks from the Anvil, Jonu's death and other Kulpati's letters; City of Paradise and other Kulpati's letters; To Badrinath; The wolf boy and other Kulpati's letters, and sparks from a Governor's Anvil.

में, है। संस्कृत-शिक्षा के प्रचार-प्रसार का बहुत बड़ा कार्य यह परिषद् कर रही है। ये हैदराबाद में भारत सरकार के एजेंट जनरल, भारत सरकार के कृषि तथा खाद्यमंत्री और उत्तर प्रदेश के पांच वर्षों तक राज्यपाल रहे।

मुन्शीजी ने 'घनश्याम' उपनाम से अपना साहित्यिक जीवन आरंभ किया था। उस समय परम्परा के विरुद्ध जाने के लिए इनकी बड़ी आलोचना हुई थी, किन्तु साथ ही कुछ ने इनकी प्रशंसा भी की। बहुतों की मान्यता थी कि उपन्यास-कला की पूर्णता, सबल चरित्र-चित्रण तथा शिष्ट और सशक्त शैली के कारण मुन्शीजी गोवर्धनराम से भी आगे बढ़ गये हैं, जो उनसे बड़े थे। जो कुछ भी मुन्शीजी ने लिखा, उसपर उनके व्यक्तित्व की छाप है। कुछ साहित्यिक परंपराओं का उन्होंने उल्लंघन किया है और इसमें उन्हें असाधारण सफलता मिली है। इन्होंने मौलिक विचारों और नयी विधि का सन्निवेश किया है। ये आधुनिक भारतीय साहित्य के निर्माताओं में से एक हैं, भारत की प्राचीन संस्कृति के प्रेमी हैं तथा अपनी प्रज्ज्वलित प्रतिभा और सबल कल्पना के द्वारा आपने अनेक रूपों में साहित्य को बहुत कुछ दिया है।

कालेज-दिनों से ही इनके प्रिय लेखक और कवि रहे हैं कार्लाइल, डि क्विन्सी, लाडार, स्काट, गाथे, शेली, ह्यूगो, मिचले, डयूमस और इब्सन। गुजराती में ये सूरत, भड़ौच और बम्बई की बोली ले आये, साथ ही उग्र शैली भी। समयानुसार ये अपनी शैली में परिवर्तन भी कर देते हैं तथा एक विशेष चमक पैदा कर देते हैं। अपनी कहानी में ये इतनी अधिक रोचकता ले आते हैं कि पाठक सांस रोक कर पढ़ता जाता है। ये परिस्थितियों को अत्यन्त नाटकीय और रंगीन बना देते हैं। उनके संवाद बड़े सजीव, कहानी आकर्षक और पात्र सप्राण तथा स्वाभाविक होते हैं, कार्य-व्यापार पग पग पर आगे बढ़ता है और पाठक बिना पूरी किये पुस्तक छोड़ नहीं पाता। मुन्शीजी मानव-चरित्र का चित्रण करते हैं, साधुओं का नहीं, और जीवन की वास्तविक घटनाओं से वे कहानी लेते हैं। कोरी नैतिकता के समर्थक ये नहीं है। इनकी ऐतिहासिक प्रेम-कथाएँ, जो इनकी सर्वोत्तम कृतियां मानी गयी हैं, अतीत के प्रेम-साहस से पूर्ण कल्पनाएँ हैं और अतीत के पर्दे पर वर्तमान-जीवन के नाटक की छायाएँ हैं। अपने पात्रों को केवल खिलौना बना देना उन्हें पसंद नहीं, वरन् मानव-पुट देने में उन्हें आनंद

आता है; यहाँ तक कि पुराणो के आदरणीय पात्रो का चित्रण भी इस प्रकार मानवता युक्त हुआ है, जिससे पता चलता है कि वे पात्र इसी धरती के है। मुन्शीजी अत्यन्त साहस के साथ अधिकार प्राप्त करने के इच्छुक स्त्री-पुरुष पात्रो का सघर्ष दिखाकर गंभीर स्थिति उत्पन्न कर देते है। ये नैतिक सिद्धान्तो तथा आदर्शो को भूलकर वास्तविक जीवन के प्यार की बात करते है। इनकी कृतियो की महिलाएँ पहले पुरुषो का विरोध करती है, फिर अपने पसद के किसी सबल पुरुष को आत्म-समर्पण करती है। यदि परिस्थिति मे कलात्मकता की सभावनाएँ रहती है, तो मुन्शीजी फिर यह परवाह नहीं करते कि यह चित्रण प्रतिष्ठा के नियमो अथवा मध्यकालीन नैतिकवादियों के अनुकूल है या नहीं। मुन्शीजी की नायक-नायिकाएँ पाठक के हृदयो मे स्थान पाते है। इनके कई ग्रथो का अनुवाद हिन्दी, तमिल, बंगाली, अंग्रेजी और सस्कृत मे भी हुआ है तथा कुछ नाटको का रंगमच पर अभिनय हुआ है और कुछ कहानियो की फ़िल्मे बनी है।

इनके सामाजिक नाटक बड़े उग्र और स्थानीय है, साथ ही आधुनिक और परंपरा-विरुद्ध है। मुन्शीजी के चार सामाजिक उपन्यासो मे 'वेरनी वसूलात' प्रथम है,जो तीन भागो मे है और जिसका मुन्शीजी की दृष्टि मे विशेष मान है। इसका अनुवाद अग्रेजी मे भी हो चुका है। इसकी नायिका तनमन ने बहुतो के हृदय को जीत लिया, यहाँ तक कि उन बड़ी उमर वाले वकीलो का भी, जिनसे मुन्शीजी अपने लेखक होने की बात छिपाते थे। जब उन्होने यह जान लिया तो उन्होने मुन्शीजी को क्षमा भी कर दिया। इस उपन्यास मे यह सत्य बताया गया है कि प्रतिशोध अपने आप हो सकता है, किन्तु जो दूसरों को दुख पहुँचाना चाहते है, वे स्वय दुख पाते है। 'कोनोपांक' मे सामाजिक दोषो और कुरीतियो की कड़ी आलोचना की गयी है। 'स्वप्नद्रष्टा' मे इस शताब्दी के आरंभ मे भारत की राजनीतिक व्यवस्था का वर्णन है। 'स्नेहसभ्रम' हास्यरस प्रधान कृति है। इनकी कहानियो का क्षेत्र बहुत व्यापक है, जो अनेक विषयो और भावो पर विविध रूपो मे लिखी गयी है।

मुन्शीजी की साहित्यिक सेवा विविधांगी और अधिक है। किन्तु इनकी श्रेष्ठ कृतियाँ है इनके ऐतिहासिक उपन्यास और नाटक। पाटणनी प्रभुता,

गुजरातनो नाथ, राजाधिराज, पृथ्वीवल्लभ, जय सोमनाथ, भग्नपादुका और ध्रुव स्वामिनी ने इन्हें गुजरात का सर्वश्रेष्ठ तथा भारत के श्रेष्ठ उपन्यासकारों में से एक उपन्यासकार बना दिया। इनके ये ग्रंथ गुजराती साहित्य में अमर स्थान रखते हैं। प्रथम ३ उपन्यासों में हिन्दू गुजरात का अत्यन्त वैभवपूर्ण काल—सिद्धराज जयसिंह का शासन वर्णित है। ऐतिहासिक पात्रों और घटनाओं को एक विचित्रता और काल्पनिकता का पुट दे दिया गया है। राजा मूंज, सिद्धराज तथा कर्ण वघेला के काल का वर्णन ऐसा ही है। कहानीकार के रूप में मुन्शीजी अद्वितीय हैं। संवाद जोरदार, छोटे, सारपूर्ण, प्रभावशाली होते हैं, चरित्र चित्रण अत्युत्तम होता है और उनमें अद्भुतता तथा कल्पना का समावेश रहता है। भूतकाल को वर्तमान की सी सजीवता ये प्राप्त करा देते हैं। मुन्शीजी में एक महान् कलाकार का साहस है, जिसमें ये अन्तर्मन को अपनी दृष्टि से देखकर चित्रित कर सके। कुछ परिस्थितियाँ तो बहुत ही काव्यात्मक हो गयी हैं, जिन्हें गीतात्मकता के साथ वर्णित किया गया है। आर्यसंस्कृति पर इनका अटल विश्वास है। ये तीक्ष्ण किन्तु निर्दोष हास्य उत्पन्न करने की क्षमता रखते हैं। मूंज, मूंजाल, काक, मिनळ, मजगी आदि इनके पात्र बहुत ही महान् हैं, किन्तु साथ ही जीवन की सत्यता भी उनमें है। नारी का हृदय उलझना में किस प्रकार काम करता है, यह मुन्शीजी ने बड़ी कुशलता से दिखाया है। इनकी विधि पूर्ण है, इनकी कथा और उपकथा की बुनावट सावधानी से की गयी होती है, सम्पूर्ण कृति में एक समरसता तथा पारस्परिक सम्बन्ध होता है। मुन्शीजी वातावरण को प्रभावपूर्ण तथा भावनाशील बना सकते हैं, परिस्थिति को नाटकीयता तथा कथानक को गीतात्मक सौंदर्य प्रदान कर सकते हैं। इनका गद्य यद्यपि स्पष्ट और सादा होता है, किन्तु विविध प्रसंगों की अनुकूलता ग्रहण करने की शक्ति उसमें रहती है, साथ ही उसमें एक बल और बुद्धिमत्ता का प्रकाश रहता है। मुन्शी जी ने जिन विशिष्ट और तेजस्वी व्यक्तियों का निर्माण किया है, वे गुजरात को उत्तराधिकार में मिले गौरव, अमूल्यता तथा शूरता से पूर्ण व्यक्तित्व हैं। इनका ग्रंथ 'पृथ्वी वल्लभ' गद्य काव्य माना जाता है, जो उचित ही है। मुंज में असाधारण शक्ति और वीरता है, और मृणालवती एक आकर्षक मनोवैज्ञानिक अध्ययन है। 'जय सोमनाथ' परिपक्व शैली में

लिखा गया है, जिसमे गजनी के सुलतान महमूद के आक्रमण को रोकने का वर्णन है। 'भग्न पादुका' अलाउद्दीन खिलजी के समय की दु.खान्त रचना है।

मुन्शीजी ने भारत के प्रागैतिहासिक काल से सम्बन्धित कुछ नाटक-उपन्यास लिखे हैं, जिनमे प्राचीन आर्यों की महत्ता वर्णित है। ये इनकी श्रेष्ठतम रचनाएँ हैं। 'पुत्र समोवडी' मे कच-देवयानी की कथा अत्यन्त रोचक ढग से लिखी गयी है। 'पुरन्दर-पराजय' सुकन्या और च्यवन की कहानी है। 'अविभक्त आत्मा' मे भारतीय तथा मिस्र देश के भावो का सम्मिश्रण है और इसमें एक ही आत्मा के दो अर्धांग दो प्रेमियो की—, अरुन्धती और वसिष्ठ—कहानी है। 'विश्वरथ', 'शंबरकन्या', 'देवदीधेली', तथा 'विश्वामित्र' चार नाटको में और 'लोमहर्षिणी' तथा 'भगवान् परशुराम' दो उपन्यासों मे आर्य-संस्कृति के प्रसार की कथा बड़े आकर्षक ढंग से कही गयी है और लोपामुद्रा, विश्वामित्र एवं परशुराम जैसे जाज्वल्यमान पात्रो को केन्द्र बनाकर कथानक तैयार किया गया है। 'तर्पण' श्रेष्ठ पौराणिक नाटको मे से एक है, जिसमे करुण, वीर, शृंगार और भयानकरस है।

तीन भागोवाली 'तपस्विनी' मे एक लम्बे समय के बाद मुन्शीजी ने फिर सामाजिक कथानक लिया है। यह इनकी परिपक्व कृति है, जिसमे १८५७ से १९३७ तक के गुजरात के राजनीतिक और सामाजिक विकास का वर्णन है। इन्होने अपने जीवन से सम्बन्धित कुछ पुस्तके लिखी है, जिनमे काफी स्पष्टता, अन्तर्मुखता, हास्यरसता और कहानी कहने की कला-पूर्णता है। 'शिशुअने सखी' की शैली कुछ विशेष है, जो न्हानालाल की डोलन शैली से मिलती-जुलती है। मुन्शीजी ने साहित्यिक आलोचना सम्बन्धी कुछ लेख और पुस्तके लिखी है। 'गुजरात ऐड इट्स लिटरेचर' मे आपने उपयुक्त उद्धरण देते हुए गुजराती साहित्य का पूरा इतिहास और उसका मौलिक मूल्याकन प्रस्तुत किया है। 'मध्यकालनो साहित्य प्रवाह' मे मुन्शीजी ने भक्ति के प्रभाव पर लिखा है। 'थोडाक रस दर्शनो 'आदिवचनो' तथा नर्मद और नरसिंह, सम्बन्धी इनकी कृतियां पाडित्यपूर्ण हैं; और यद्यपि बहुत-से विद्वान् किन्ही बातो मे इनसे मतभेद रखते है, किन्तु सभी ने यह स्वीकार किया है कि मुन्शीजी की लेखनी से जो भी निकलता है, वह विचारणीय होता है और उसका कुछ अश

तो बहुत ही निर्दोष, आकर्षक और साहित्यिक, छटायुक्त भाषा-सम्पन्न होता है। 'ग्लोरी दैट वाज गुजर देश' में इन्होंने बृहत्तर गुजरात के इतिहास में कुछ खोजें की हैं और प्रतिहार गुजरों के शासनकाल पर कुछ अतिरिक्त प्रकाश डाला है।

मुन्शीजी का व्यक्तित्व अत्यन्त महान् और प्रबल है तथा कानून, साहित्य एवं राजनीतिक क्षेत्र में आपने बहुत ऊँचा स्थान प्राप्त किया है। आप एक कार्य-निष्ठ व्यक्ति हैं और जीवन में आनन्द लेते हैं। मुन्शीजी एक समाज सुधारक हैं, साथ ही श्री मद्भगवद्गीता, योगसूत्र, अरविन्द घोष तथा गांधीजी का आप पर बहुत बड़ा प्रभाव है और आर्य-संस्कृति तथा संस्कृत की समर्थना पर आपका अमिट विश्वास है। आपने अपने विचारों को केवल साहित्य में ही व्यक्त नहीं किया, वरन् उन्हें कार्य में परिणत करने के लिए संस्थाओं को भी जन्म दिया है। आपने साहित्य-संसद की स्थापना की और कई दशकों तक साहित्य-परिषद् का मार्ग-दर्शन करते रहे। आपने भारतीय विद्याभवन की स्थापना की, जो आप की कीर्ति का अमर स्तम्भ है। भारत की एक विशिष्ट संस्था के रूप में भारतीय विद्याभवन अपने विभिन्न विभागों और केन्द्रों द्वारा जो अमूल्य कार्य कर रहा है वह किसी से छिपा नहीं है। मुन्शीजी ने 'संस्कृत विश्व-परिषद' की भी स्थापना की, जो अपने अनेक केन्द्रों और शाखाओं द्वारा संस्कृत के प्रचार-प्रसार का कार्य कर रहा है। आप राष्ट्रीय प्रेरणा और वर्तमान आवश्यकताओं के अनुकूल होनेवाली भारतीय संस्कृति की समग्रता चाहते हैं, जिसमें हमारी संस्कृति के सर्वोत्तम का समन्वय पाश्चात्य संस्कृति के सर्वोत्तम से हो सके। आप राष्ट्रीय एकता के सबल समर्थक हैं, इसीलिए आपने हिन्दी और अंग्रेजी दोनों भाषाओं के अध्ययन का समर्थन किया है।

मुन्शीजी गुजराती गद्य के अधिकारी विद्वान हैं। प्रायः इनकी तुलना गोवर्धनराम से की जाती है, किन्तु गोवर्धनराम की ख्याति उनकी कला के कारण नहीं, वरन् उनके उपदेशों के कारण है। मुन्शीजी एक शुद्ध कलाकार हैं और इस रूप में अद्वितीय हैं। वे जीवन का वैसा ही चित्रण करते हैं, जैसा देखते हैं और अनुपात का बोध सदैव उनमें जागृत रहता है। मुन्शी जी की कृतियों में पात्र, नाटकत्व, संवाद और रूप की एकरूपता—ये सब मिलकर कला और सौन्दर्य की सृष्टि करने में समर्थ होते हैं।

मुन्शीजी का रचनात्मक साहित्य बहुत विशाल तथा विविध रूपोंवाला है। आपने आधुनिक नारी का निर्माण किया है, जो अपने ढग से प्यार करने तथा जीने का अधिकार चाहती है और आपने ऐसे पुरुष का भी निर्माण किया है, जो विजयी तथा लज्जा की भावना से रहित होकर जीने को तैयार है। आपने जीवन के उस आनद का वर्णन किया है, जो सम्पन्नता मे पाया जाता है। आपके प्रागैतिहासिक तथा ऐतिहासिक उपन्यासो, नाटको और अनेक निबधो में आपका भारत-प्रेम प्रकट है। एक कलाकार के रूप मे आपने सौंदर्य का चित्रण ईमानदारी के साथ वैसा ही किया है, जैसा वह दिखाई देता है। ऐसा करते समय आपने रीति या परम्परा की परवाह नही की। भगवद्गीता और आधुनिक जीवन पर आपने एक अच्छी पुस्तक लिखी है। आपकी धारणा है कि अपने स्वरूप का सच्चा ज्ञान ही सच्चा मोक्ष है और वहां तक पहुंचने का मार्ग है, सच्ची आत्माभिव्यक्ति—'स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धि विन्दति मानव ।'

आधुनिक गुजराती साहित्य मे नानालाल, गांधीजी तथा मुन्शीजी मे से प्रत्येक का नाम अपने ढंग का अनुपम और सर्वोत्कृष्ट नाम है। भारत की अमूल्य विरासत की व्याख्या, आधुनिक जागृति तथा उनकी रचनात्मक कला एव कृतियों की अधिक मात्रा ने मुन्शीजी की गणना भारत के कुछ श्रेष्ठ आधुनिक लेखकों मे कर दी और उपन्यास-लेखक के रूप मे तो वे प्रेमचदजी तथा शरद्बाबू के समकक्ष माने जाते है।

अध्याय २१

रमणलाल, धूमकेतु तथा अन्य

रमणलाल वसन्तलाल देसाई, वडनगरा नागर ब्राह्मण, का जन्म सन् १८९२ में सिनोर में हुआ था। वैसे ये कलोल के रहने वाले हैं। इनकी शिक्षा सिनोर और बडौदा में हुई। सन् १९१६ में इन्होंने गुजराती विषय लेकर एम० ए० पास कर लिया और बडौदा राज्य में नौकरी कर ली। क्रमशः उन्नति करके ये सूबा के पद पर पहुँच गये। इन्होंने १९१७ में लिखना आरम्भ किया और अपने दो नाटकों—'संयुक्ता' और 'शंकित हृदय'—के कारण विशेष प्रख्यात हुए। ये नाटक अव्यवसायी लोगों द्वारा खेले जाने की दृष्टि से लिखे गये थे। ये विशेषतः न्हानालाल और 'कलापी' की रचनाओं से अधिक प्रभावित थे और उनकी पंक्तियाँ को अपने उपन्यासों में उद्धृत करते थे। बाद में इन्होंने बहुत अधिक संख्या में उपन्यास लिखे। 'सयाजी विजय' के सम्पादक ने आपको उस पत्र में धारावाहिक उपन्यास बराबर लिखते रहने के लिए आमंत्रित किया। उस पत्र में भेंट स्वरूप सदा सीपरा से बराबर उपन्यास प्रकाशित हुआ करते थे। रमणलाल ने सम्पादक के निमंत्रण को स्वीकार करके एक के बाद एक उपन्यास लिखने आरम्भ किये। उपर्युक्त उनके दो नाटकों का अच्छा स्वागत हुआ, क्योंकि उनमें साहित्यिकता और अभिनेयता—दोनों गुण थे। सन् १९२५ और १९३० के बीच, जबकि मुन्शी जी राजनीति-क्षेत्र में फँस गये थे, रमणलाल ने कई उपन्यास गुजराती-साहित्य को दिये।

अपने जयंत, कोकिला, पूर्णिमा, हृदयनाथ, दिव्यचक्षु आदि उपन्यासों में इन्होंने आधुनिक गुजरात के सुसम्पन्न मध्यमवर्गीय समाज का अच्छा चित्रण किया है। उनके द्वारा चित्रित पुरुषों और स्त्रियों के आदर्शों, विचारों, त्यागों, व्यवहारों तथा सेवा के प्रति उनकी गौरवपूर्ण भावनाओं में हमें समाज और उसके उस सांस्कृतिक पक्ष विकास की झलक मिलती है, जो महात्मा गांधी के

प्रभाव से पैना हुआ था। रमणलाल मे मुन्शीजी की भाँति छीटाकशी या कठोरता न पाकर हम कोमल संस्कारिता, नागरिकता, सूक्ष्मता और आदर्शवादिता पाते है। इन्होने मुख्यतः गुजराती-समाज का ही चित्रण किया है। 'पूर्णिमा' मे इन्होने एक वेश्या-पुत्री का आदर्श दिखाया है। 'दिव्यचक्षु' मे सत्याग्रह आदोलन तथा प्रधान पात्रो के बलिदानो का वर्णन है। 'ग्रामलक्ष्मी' मे ग्राम्य जीवन तथा ग्राम-सुधार है। 'बसरी' और 'कोकिला' के कथानक जासूसी कहानियो की भाँति है। 'भारेलो अग्नि' मे १८५७ के विद्रोह का प्रभाव वर्णित है। 'क्षितिज' मे आर्य-अनार्य सघर्ष है। 'कालभोज' मे बाप्पा रावल के समय का युद्ध वर्णित है। 'झझावात' और 'प्रलय' मे उन दोषो का वर्णन है, जो स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद भारत मे तथा दो महायुद्धो के बाद विश्व में आये, साथ ही यह भी बताया गया है कि किस प्रकार ससार सकट और विनाश की ओर द्रुत गति से बढ़ रहा है। बाद के अपने कुछ उपन्यासो में इन्होने नेताओ की आलोचना करते हुए वामपथियो के विचार प्रस्तुत किये है।

महान् आलोचक विश्वनाथ भट्ट ने रमणलाल को युगमूर्ति वार्ताकार की उपाधि दी है, क्योकि गाधीयुग के गुजरात के लोगो का जीवन एव उनके विचारो को इन्होने बड़ी सफलतापूर्वक चित्रित किया है। सामाजिक उपन्यासो के लेखक के रूप मे ये बहुतो से आगे बढ गये है। बहुतो के मत से इस क्षेत्र मे इनका नाम गोवर्धनराम के बाद दूसरा है। इनके पात्र मुख्यत. मध्यमवर्ग के शिष्ट गुजराती नर-नारी है, जिनमे आदर्शवाद की भावना जागृत है। कई आलोचको ने सकेत किया है कि इनके विभिन्न उपन्यासो मे कथानक , परिस्थिति, चरित्र-चित्रण, वातावरण आदि की समानता रहती है। ये अपने विचारो को उपन्यासो मे प्रस्तुत करके गोवर्धनराम के ढग पर विचार करते है। [इनकी शैली यद्यपि विस्तारपूर्ण है, फिर भी शिष्ट है। इनमे व्यग्य करने की भी क्षमता है। कहानी कहने का इनका ढंग स्पष्ट और प्रभावपूर्ण है। इनके उपन्यास बहुत ही प्रसिद्ध हुए है। इन्होने २५ से अधिक उपन्यास लिखे है।

'निहारिका' इनकी कविताओ का सग्रह है, जिस पर 'कलापी' और न्हाना-लाल का प्रभाव स्पष्ट है। साहित्यिक आलोचना के क्षेत्र मे इन्होने 'जीवन अने साहित्य' भाग १–२ तथा 'साहित्य अने चिंतन' लिखा है। सयाजी साहित्य

माला के अन्तर्गत आपने युवकों के लिए कई छोटी-छोटी पुस्तिकाएँ लिखी हैं। 'गईकाल' और 'मध्याह्नना मृगजल' में इन्होंने अपने जीवन से सम्बन्धित कुछ घटनाओं का वर्णन किया है। ५ भागों वाली 'अप्सरा' में वेश्याओं का इतिहास है। 'गुजरातनु घडतर' में इन्होंने गुजरात का ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक विकास दिया है। इन्होंने हेनरी फोर्ड का जीवन अंग्रेजी से गुजराती में अनूदित किया है। 'सुवर्णरज' में इनके ओजस्वी कथन, विचार और चुटीले सूत्र संगृहीत हैं। इनके ग्रंथ 'भारतीय संस्कृति' में इनके पांडित्य और योग्यता की साक्षी मिलती है। इसे इन्होंने बड़ौदा विश्वविद्यालय की प्रेरणा से लिखा था, जिसमें आदिकाल से लेकर आजतक की भारतीय संस्कृति का इतिहास बड़ी विद्वत्ता के साथ प्रस्तुत किया गया है।

इस प्रकार उपन्यासों के अतिरिक्त आपने कविताएँ, नाटक, निबंध, आत्म-चरित तथा साहित्यिक आलोचनाएँ भी लिखी हैं। ये रूस-भ्रमण को गये थे तथा अपनी यात्रा का वर्णन 'एशिया' और 'मानव-शान्ति' में किया है। एकांकी-नाटकों के भी इनके ३ संग्रह हैं।

इन अनेक विविध विधाओं के होते हुए भी रमणलाल मुख्यतः अपने उप-न्यासों के लिए स्मरण किये जायेंगे और सामाजिक उपन्यासों के क्षेत्र में इनका स्थान गुजरात में वस्तुतः बहुत ऊँचा है।

धूमकेतु

गौरीशंकर गोवर्धनराम जोशी, जो 'धूमकेतु' नाम से प्रसिद्ध हैं, खेडावाल ब्राह्मण हैं। इनका जन्म सौराष्ट्र के अंतर्गत गोंडल के निकट वीरपुर में सन् १८९२ में हुआ था। ये जूनागढ़ से १९२० में बी० ए० पास हुए तथा इनके प्रिय विषय थे साहित्य और इतिहास। कुछ समय तक अध्यापकी करने के बाद आप सर चीनु भाई के घर में अध्यापक नियुक्त हो गये, जहाँ कई वर्षों तक रहे। साहित्य-क्षेत्र में इनका मुख्य योगदान छोटी कहानियों और उपन्यासों का रहा है।

धूमकेतु के पूर्व कई लेखकों ने लघुकथाओं का क्षेत्र विकसित किया था, किन्तु धूमकेतु ने जिस रूप की स्थापना कलात्मक ढंग से की, उसकी पूर्णता उन्हीं से हुई। अंग्रेजी से अनुवाद करने वाले भी कई लेखक थे। नारायण

हेमचन्द्र, रणजीतराम बाबा भाई, मलयानिल, राममोहनराय देसाई, रमणभाई नीलकंठ तथा मुन्शी जैसे लेखकों ने भी धूमकेतु की शैली पर लिखने का प्रयत्न किया। मलयानिल की छोटी कहानियों का संग्रह 'गोवालणी अने बीजी वातो' है। इन कहानियो मे आपने कलात्मक रूप दिखाया है और आलोचकों को यह कहना पड़ता है कि आधुनिकता एव कलात्मकता की दृष्टि से कहानी-लेखन मलयानिल से आरम्भ होता है। किन्तु दुर्भाग्य से इस लेखक का देहान्त जल्दी हो गया। श्रीराममोहन राय देसाई मासिक पत्रिका 'सुन्दरी सुबोध' के सम्पादक थे। इन्होने सरल शैली मे जीवन की दैनिक समस्याओं पर कहानियाँ लिखी है। मुन्शी के कहानी-संग्रह 'मारी कमला अने बीजीवातो' मे हम इस शैली का विकास पाते है। मुन्शी की ये कहानियाँ भी सामाजिक समस्याओं पर लिखी गयी है। लघुकथा के रूप का उच्चतम विकास धूमकेतु ने किया, जो कहानीकार के रूप मे न केवल गुजरात मे, वरन् सारे भारत मे प्रसिद्ध है और इनकी एक कहानी को संसार की श्रेष्ठ कहानियो के सग्रह मे स्थान मिला है; इनकी कुछ कहानियो का अनुवाद हिन्दी मे भी हुआ है।

धूमकेतु के कहानी-संग्रह है—तणखा—भाग १ से ४, प्रदीप, अवशेष परिशेष, त्रिभेटो, मल्लिका, आकाशदीप, वनकुन्ज आदि। इनके उपन्यास है—राजमुगट, पृथ्वीश, अजिता, वाचिनीदेवी, चौलादेवी, राजसन्यासी, कर्णावती, राजकन्या, सिद्धराज जयसिह, महाअमात्य चाणक्य आदि। इन्होने कई नाटक भी लिखे है, जैसे—'पडघा', 'एकलव्य अनेबीजा नाटको' आदि। इनके द्वारा लिखे जीवन-चरित 'हेमचन्द्राचार्य', 'परशुराम', 'नेपोलियन' आदि मे सगृहीत है। जीवनपंथ और जीवनरग शीर्षक के अन्तर्गत इन्होने आत्मचरित भी लिखा है। इतिहास, निबंध तथा अन्य विषयो पर भी इनके ग्रंथ है।

अपनी छोटी कहानियो मे—जो १५ से भी अधिक संग्रहो मे सगृहीत है—इन्होने दुर्बल तथा पीड़ित व्यक्तियो का जीवन चित्रित किया है। इनमे मानवता का पुट अधिक स्पष्ट है और विषय को चरम सीमा तक अत्यन्त भावुकता के साथ ले जाने मे ये दक्ष है। इनकी कुछ कहानियो को विश्व भर की मान्यता प्राप्त है। इनकी सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ है—भैयादादा, जुमोभिश्ती, पोस्ट आफिस, मशहूर गवैयो, आदि। इन्होने अपनी कहानियो के पात्र समाज के सभी वर्गो

तथा जीवन के सभी क्षेत्रों में लिये हैं, साथ ही पुराणों में भी। मध्य युग, कृषक-जीवन, ग्राम्य जीवन, पीडित वर्ग इनके कथानकों के स्रोत हैं। इनकी शैली भावोत्पत्ति के लिए बहुत अनुकूल है, जो सशक्त है, काव्यात्मक है और प्रवाहमय है। दृश्य-चित्रण में ये कल्पना से काम लेते हैं। प्रत्येक कहानी में एक मुख्य भाव रहता है, जिसे केन्द्र बनाकर लेखक अपने कथानक, चरित्र-चित्रण, वातावरण और भावों का विकास करता है। कभी-कभी इनमें अत्युक्ति दोष भी आ गया है और विभिन्न कहानियों में चरित्र-चित्रण, परिस्थिति तथा वातावरण की समानता भी देखी जाती है। इतने पर भी ये गुजरात के सर्वश्रेष्ठ एवं भारत के श्रेष्ठ कहानी लेखकों में से एक माने जाते हैं, जो उचित ही है।

धूमकेतु ने कई उपन्यास भी लिखे हैं। इनके आरंभिक उपन्यास उतने सफल नहीं हैं। गुजरात तथा मालवा की ऐतिहासिक घटनाओं पर इनके उपन्यास हैं और एक दूसरी पुस्तकमाला के अंतर्गत इन्होंने गुप्तकाल की ऐतिहासिक घटनाओं का वर्णन करते हुए उपन्यास लिखे हैं। चौलादेवी, वाचिनी देवी, आम्रपाली, वैशाली, महा अमात्य चाणक्य आदि इनके कुछ ऐतिहासिक उपन्यास हैं। मुन्शीजी की भांति इन्होंने भी अपने उपन्यासों में राजनीति कुशल एवं तड़क-भड़कवाले व्यक्तियों, साथ ही साधुओं आदि का चित्रण किया है। अनेक उपन्यासों में इन्होंने भी चमत्कारिक अथवा अति मानुषिक तत्त्वों का समावेश किया है। इन्होंने भिन्न-भिन्न प्रकार के चरित्रों को चित्रण करने का प्रयत्न किया है, किन्तु मुन्शीजी के पात्रों की तुलना में ये फीके और कुछ कम कलात्मक लगते हैं। इनकी दूसरी कृतियाँ हैं—निबंध-संग्रह, एकांकी-नाटक, बालकों के लिए नाटक और कहानियाँ, विचारों और सूत्रों के संग्रह गुजराती साहित्य में अनेक प्रकार का योगदान होते हुए भी धूमकेतु का सबसे अधिक स्मरण होगा अधिकृत कहानी लेखक के रूप में।

मेघाणी

झवेरचन्द कालीदास मेघाणी दशा श्रीमाली जैन वणिक थे। इनका जन्म सन् १८९७ में सौराष्ट्र के चोटीला ग्राम में हुआ था। अपनी आरंभिक अवस्था में आप ने सौराष्ट्र की रियासतों में भाटों तथा चारणों के मुख से लोक साहित्य

तथा लोकगीत सुने थे। तभी से आपकी रुचि इस ओर हुई और आपने लोक-साहित्य के संग्रह करने में विशेषता प्राप्त की। लोकगीतों की रचना करके बड़े जनसमूह के सामने आप उच्चकंठ एवं मधुर धुन में गाते थे। जूनागढ़ से बी० ए० पास करके आप पत्रकारिता में प्रविष्ट हुए। 'सौराष्ट्र' के तत्कालीन सम्पादक श्री अमृतलाल सेठ ने आपको आमंत्रित किया। परिणामस्वरूप आपको अध्ययन, पुस्तक-समीक्षा और लोकसाहित्य पर—जो आपका प्रिय विषय था—काम करने का अवसर प्राप्त हुआ। वहां रहकर आपने लोकसाहित्य का अच्छा संग्रह किया, उसका विधिवत् अध्ययन किया, कुछ ग्रंथों का सम्पादन किया और लोककथा, लोकगीत एवं लोकजीवन पर अनेक कहानियां तथा कविताएँ लिखी। बाद में आप बम्बई के पत्र 'जन्मभूमि' में चले आये और कुछ वर्षों के बाद सौराष्ट्र के राणपुर में 'फूलछाब' को फिर सजीव किया।

यद्यपि इन्होंने उपन्यास, कहानी, कविता, साहित्यिक आलोचना—सभी कुछ लिखा है, किन्तु इनका मुख्य योगदान, जिस पर इनकी ख्याति आधारित है, इनकी लोकसाहित्य-सेवा है। इनके मुख्य ग्रंथ हैं—सौराष्ट्रनी रसधार—५ भाग; सोरठी बहारवटिया—३ भाग, दरियापारना बहार वटिया, रठियाली रात—४ भाग; चुंदड़ी—२ भाग; कंकावटी—२ भाग; दादाजीनी वातो; सोरठी सन्तो, सोरठी सन्तवाणी, पुरातन ज्योत आदि। इनमें मेघाणी जी द्वारा सम्पादित अथवा पुनर्लिखित लोककथाएँ हैं। इस ढंग का एक विशाल साहित्य आपने संगृहीत किया है। आपने गुजरात एवं सौराष्ट्र के इतिहास पर आधारित कई उपन्यास भी लिखे हैं—जैसे, समरागण; रा' गंगाजलियो; गुजरातनो जय आदि। आपने सौराष्ट्र जीवन के वीरतापूर्ण प्रसगों का वर्णन बड़ी कुशलता के साथ प्रेरणात्मक, सबल तथा प्रवाहपूर्ण शैली से किया है। कथा कहने की चारण-शैली को आपने अच्छी तरह ग्रहण कर लिया था और उसी आकर्षण-गुण के साथ आप कहानी लिखते थे। इनके कई कहानी-संग्रह हैं।

मेघाणी जी के कई कविता-संग्रह भी हैं, जैसे युगवन्दना, किल्लोल, वेणीना फूल आदि। इनमें आपने तत्कालीन स्वतंत्रता-आन्दोलन के प्रति देशप्रेम एवं वीर भावों को व्यक्त किया है। आपने गृह-जीवन का भी अच्छा चित्रण किया है विशेषत: इसके करुणापूर्ण अंगों का। इनमें से अधिकांश रचनाएँ लोकभाषा में

तथा लोकगीतों की धुन में लिखी गयी हैं। इन गीतों की बहुत प्रसिद्धि हुई। लोगों ने प्रेरणा प्राप्त की। कुछ गीत तो अंग्रेजी कविताओं का अनुवाद अथवा रूपान्तर थे, कुछ पुराने लोकगीतों पर आधारित थे और कुछ स्वतंत्र रचनाएँ थीं। आपने बच्चों के लिए भी स्वरचित कविताओं के संग्रह प्रस्तुत किये हैं। इनकी कुछ उत्तम कविताएँ हैं—शिवा जीनू हालरडु, घणरे बोले रे, कसुंबी रंग, कवि तने प्रेम गमे, सलवारना धारदार, कोईना लाडकवाया। मेघाणी ने चारणी धुन के अतिरिक्त बंगाली धुन में भी गीत लिखे हैं। इनके गीतों में मधुरता, करुणा, वीरता, स्वदेश-प्रेम कूट-कूटकर भरा है। ये राष्ट्रकवि माने जाते हैं।

इन्होंने कुछ नाटक लिखे हैं, जैसे राणा प्रताप, शाहजहाँ आदि, और कुछ यात्रा सम्बन्धी पुस्तकें भी लिखी हैं। दयानन्द सरस्वती, संत देवीदास, ठक्करबापा, वे देशदीपको आदि इनके द्वारा लिखित कुछ जीवनचरित हैं। वेरानमा तथा परिभ्रमण—३ भाग इनकी आलोचनाओं के संग्रह हैं। 'जन्मभूमि' के प्रसिद्ध 'कलम अने किताब' स्तंभ के अन्तर्गत ये पुस्तक-समीक्षा लिखते थे। साहित्य-समीक्षा का उच्चस्तर आपने सदैव स्थिर रखा। आपने कुछ सामाजिक एवं राजनीतिक समस्याओं पर भी विचार प्रस्तुत किये हैं। इनकी शैली में हम मधुर, उपयुक्त, अभिव्यंजक और सशक्त शब्द मिलते हैं, जो लोकबोली के हैं, साथ ही बोलचाल के पद, शब्द और मुहावरे हैं, जिन्हें मेघाणी ने प्रस्तुत किया है। इन्हीं शब्दों-मुहावरों के प्रयोग से दूसरों ने भी बाद में गुजराती भाषा को समृद्ध किया। इस प्रकार गुजराती साहित्य को मेघाणी का बहुत बड़ा योगदान है।

चुनीलाल वर्धमान शाह

चुनीलाल वर्धमान शाह सौराष्ट्रान्तर्गत वढवाण के जैन वणिक हैं, जिनका जन्म सन् १८८० में हुआ था। अब ये सुरेन्द्र नगर में रहते हैं। इन्होंने पत्रकार-जगत में प्रवेश किया और बहुत समय तक ये 'प्रजाबन्धु' के सम्पादन विभाग में रहे। ये इसी पत्र में 'साहित्यप्रिय' उपनाम से साहित्यिक ग्रंथों की समीक्षा किया करते थे। आलोचना का उच्च मानदंड आपने स्थापित किया। आपकी समीक्षा निर्णयात्मक, विचारपूर्ण और उच्च स्तरीय होती थी। इनके साहित्यिक

स्तम ने दूसरों के समक्ष आदर्श उपस्थित किया। पत्रकार की अपेक्षा उपन्यासकार के रूप में आपकी ख्याति अधिक है। पहले पहल इन्होंने जासूसी उपन्यास लिखे, बाद में 'प्रजाबन्धु' के लिए भेंट उपन्यास लिखने लगे। इन्होंने ३० से अधिक उपन्यास लिखे हैं। इनके कुछ ऐतिहासिक उपन्यास उच्चकोटि के हैं। यद्यपि इनमें ऐतिहासिक तत्त्व अधिक है, फिर भी पाठक की रुचि बनी रहती है। इनके कुछ श्रेष्ठ उपन्यास हैं—'कर्मयोगी राजेश्वर'—यह मूलराज सोलंकी का चित्रण करता हुआ सोलंकी युग पर प्रकाश डालता है—, 'अवन्तीनाथ', 'नीलकंठनुं बाण', 'रूपमती' आदि। 'जिगर अने अमी' इनका सामाजिक उपन्यास है, जो बहुत लोकप्रिय हुआ। 'एकलवीर' किसी पुरानी हस्तलिपि का रूपान्तर है। इन्होंने कहानियाँ भी लिखी हैं, जो 'एक दंडियो महेल' तथा 'रूपानो वट' आदि संग्रहों में संगृहीत हैं। इनकी प्रसिद्धि मुख्यतः इनके ऐतिहासिक उपन्यासों के कारण है। इनकी शैली प्रवाहमय, शिष्ट और सरल है।

गुणवन्तलाल आचार्य

गुणवन्तलाल आचार्य जामनगर के वडनगरा नागर ब्राह्मण हैं, जिनका जन्म १९०२ में हुआ था। इन्होंने ऐतिहासिक नाटक अधिक संख्या में लिखे हैं, साथ ही साहसिक और जासूसी भी। इनका सम्बन्ध 'फूलछाब' और 'सौराष्ट्र' पत्रों से था। 'सक्करबार सरफरोश' और 'हराटी' आदि उपन्यासों में इन्होंने समुद्री साहसों का वर्णन किया है। इन्होंने इतिहास तथा दूसरे देशों की दन्तकथाओं का अच्छा अध्ययन किया था और आपने उपन्यासों में उनका उपयोग भी किया है। इनकी शैली सबल और सोरठ लक्षणों से युक्त है। इन्हें सोरठी साहस और वीरता का वर्णन करने में बड़ा आनंद आता है। ऐतिहासिक घटनाओं को ये नयी पृष्ठभूमि के साथ वर्णन करते हैं, तथा वर्तमान युग के लिए उससे प्रेरणा ग्रहण करने की चेष्टा करते हैं। इनके कुछ अन्य प्रख्यात उपन्यास हैं, 'दरियालाल', देशदिवान हाजी-कासम तारी वीजली।'

अध्याय २२

रामनारायण तथा अन्य

रामनारायण विश्वनाथ पाठक प्रश्नोरा नागर थे। इनका जन्म धोल्का तालुका के गाणोल ग्राम में सन् १८८७ में हुआ था। इनके पिता विश्वनाथ ने कुछ धार्मिक एवं दार्शनिक महत्त्वपूर्ण ग्रंथों का अनुवाद गुजराती में किया था, जैसे—पंचदशी, गीता शांकर भाष्य, महिम्नस्तोत्र, नचिकेता कुसुम गुच्छ आदि। रामनारायण ने दर्शनशास्त्र विषय लेकर बी० ए० पास किया, फिर वकालत पास करके सादरा में कई वर्षों तक वकीली करते रहे। अंत में गुजरात विद्यापीठ में गुजराती के प्राध्यापक हो गये। यहाँ रहकर आप अनेक परिश्रमी और प्रतिभासम्पन्न विद्यार्थियों के गुरु बने, जो आगे चलकर प्रसिद्ध विद्वान्, कवि और लेखक बने। आपने कहानियाँ, निबंध, कविताएँ लिखी हैं और कुछ साहित्यिक समीक्षाएँ, जो आप का मुख्य क्षेत्र था।

उनके आलोचना सम्बन्धी ग्रंथ हैं—अर्वाचीन गुजराती काव्य-साहित्य, अर्वाचीन काव्य-साहित्य ना वहेणो, काव्यनी शक्ति, साहित्य विमर्श, आलोचना, साहित्यालोक, नमद-अर्वाचीन गद्य-पद्यनो प्रणेतो, प्राचीन गुजराती छन्दो और बृहद् पिंगल, जो इनका पिंगल सम्बन्धी अमर ग्रंथ है। भिन्न भिन्न विधाओं के इनके भिन्न उपनाम थे। ये कहानी 'द्विरेफ' उपनाम से, निबंध 'स्वैरविहारी' उपनाम से और कविता 'शेष' उपनाम से लिखते थे। इनकी कहानियाँ 'द्विरेफनी वातों' शीर्षक से ३ खंडों में संगृहीत हैं और कविताएँ 'शेष ना काव्यो' में। इनके सरल निबंधों का संग्रह 'स्वैरविहार' २ भागों में है। आपने कई ग्रंथों का संपादन किया है, उनमें कुछ चुनी हुई कविताएँ हैं और कुछ कान्त की भी कविताएँ हैं, आनन्दशंकर ध्रुव के ग्रंथ भी उनमें सम्मिलित हैं। आपने 'काव्यप्रकाश' के प्रथम ६ उल्लासों का तथा 'धम्मपद' का अनुवाद किया है और तर्कशास्त्र पर गुजराती में एक पुस्तक लिखी है—प्रमाणशास्त्र प्रवेशिका।

सुंदरम् एवं स्नेह-रश्मि जैसे लेखक उनके शिष्य थे। कुछ दिनों तक इन्होंने 'युगधर्म' का सम्पादन किया और कई वर्षों तक आप 'प्रस्थान' नामक मासिक

पत्र के सपादक रहे। इन दोनो पत्रों का स्तर बहुत ऊँचा था। कुछ दिनों तक ये बबई के एस. एन. डी. टी. महिला महाविद्यालय मे गुजराती के प्राध्यापक भी थे। इन्होने अपनी एक प्रतिभासम्पन्न छात्रा हीरा बहेन मेहता से विवाह कर लिया। इसके बाद आप बबई के भारतीय विद्याभवन कालेज मे गुजराती के प्राध्यापक हुए और बाद मे आकाशवाणी भारत में गुजराती कार्यक्रमो के परामर्शदाता हो गये। सन् १९४९ मे राजकोट मे होनेवाले गुजराती साहित्य-परिषद् के अधिवेशन के आप अध्यक्ष चुने गये।

इनकी शैली तर्कयुक्त, काच सदृश विशद और निर्मल, आडम्बरहीन, मुख्य विषय की ओर उन्मुख रहनेवाली, अन्तरग अर्थ को खोलनेवाली और अनूठी है। इनकी उक्तिया और व्याख्याएं नवीन होती हैं। समीक्षा करते समय ये लेखक की प्रतिभा और रस की परख तत्काल कर लेते हैं। इन्होने सस्कृत अलंकार-शास्त्र का विधिवत् अध्ययन किया था और इसी आधार पर इन्होने ग्रथो की समीक्षाएँ लिखी हैं। इनकी आलोचनाओं ने अनेक आधुनिक ग्रथकारो को प्रोत्साहित करके उनका मार्ग-दर्शन किया है। बलवन्तराम ठाकोर और रामनारायण—इन दोनो ने अपने आगे की पीढ़ी के बहुत-से साहित्यिको को प्रेरणा प्रदान की है। आलोचक के रूप मे इनकी गणना रमणभाई के समकक्ष है। इनका विश्लेषण गहन और पूर्ण होता है तथा उसकी भाषा शिष्ट और स्पष्ट होती है। इन्होने पिगल विषय मे विशेषता प्राप्त की है और इनके सर्वोत्तम ग्रथ 'बृहत् पिगल' को केन्द्रीय सरकार से पुरस्कार प्राप्त हुआ है। कहानियो के क्षेत्र मे इनका स्थान 'धूमकेतु' के बाद आता है। खेमी-जक्षणी आदि इनकी कुछ श्रेष्ठ कहानियाँ हैं। 'द्विरेफनी वातो' मे इनकी कहानियाँ सगृहीत हैं। 'स्वैर विहार' मे इनके सरल और हास्यात्मक निबध है, जिनमे व्यग, सहानुभूति और हास्य है। इन्होने सामाजिक जीवन पर इन निबधो मे बडी कुशलता से विचार किया है।

विजयराय

विजयराय कल्याणराय वैद्य भावनगर के वडनगरा नागर है। इनका जन्म १८९७ मे हुआ था। विद्यार्थी अवस्था मे ही ये 'वीसमी सदी' मे लेख

लिखते थे। बी० ए०, पास करने के बाद आपने साहित्यिक जीवन अपनाया और १९२० में मासिक पत्र 'चेतन' के सह-सम्पादक हो गये। आपने 'विनोद-कान्त' उपनाम से लिखना आरम्भ किया। 'हिन्दुस्तान' साप्ताहिक, मुन्शीजी के 'गुजरात' और 'युगधर्म' से भी आप का सम्बन्ध था। १९२४ में आपने 'कौमुदी' का प्रकाशन आरम्भ किया, जिसका स्तर सदैव ऊँचा रहा। किन्तु आर्थिक कठिनाइयों के कारण 'कौमुदी' इन्हें बन्द करनी पड़ी। कई वर्षों तक ये सूरत के सार्वजनिक कालेज में गुजराती के प्राध्यापक रहे। कौमुदी के बाद आपने 'मानसी' आरम्भ किया। ये दोनों पत्रिकाएँ कभी मासिक रहीं, कभी त्रैमासिक। यद्यपि इनकी सामग्री अत्यन्त साहित्यिक और उत्तम रहती थी, किन्तु ग्राहक संख्या कम होने के कारण विजयराम सदा आर्थिक संकट में ग्रस्त रहते थे। श्री क० मा० मुन्शी के साथ काम करते हुए भी उनसे विजयराम का मतभेद था और इसीलिए इन्हें 'कौमुदी' आरम्भ करनी पड़ी। बाद में यह मत-भेद दूर हो गया और आपने भारतीय विद्याभवन में पिछली शताब्दी के गुजराती-साहित्य के इतिहास पर बारह भाषण दिये। इनके भाषणों का सार 'गतशतकनुं साहित्य' शीर्षक से प्रकाशित हुआ।

साहित्यिक आलोचना क्षेत्र में आपके ग्रंथ हैं—साहित्य-दर्शन, जूई अने केतकी, गुजराती साहित्यनी रूपरेखा, वनीसनुं प्रत्यक्ष वाङ्मय एवं गतशतकनुं साहित्य। इन्होंने कुछ कहानियाँ भी लिखी हैं, जैसे 'नाजुक सवारी' और 'प्रभात तारक' आदि। इनका 'ऋग्वेदकालनुं जीवन अने संस्कृति' ग्रंथ अध्ययन और पांडित्यपूर्ण है। 'शुक्रतारक' में आपने नवलराम का जीवनचरित लिखा है। सब मिलाकर इनके लगभग २० ग्रंथ हैं।

आलोचक के रूप में ये रामनारायण, विश्वनाथ भट्ट तथा विष्णु प्रसाद त्रिवेदी की कोटि के हैं। इनका अंग्रेजी साहित्य का अध्ययन बहुत गहन है। 'कौमुदी' और 'मानसी' में लिखने के लिए इन्होंने अनेक विद्वान् लेखकों को प्रेरित तथा आकर्षित किया था। सादी भाषा पर ये बहुत बल देते थे। हाँ, इनकी शैली अवश्य जटिल है और कहीं-कहीं कठिन हो गयी है। इनका ग्रंथ 'गुजराती साहित्यनी रूपरेखा' बड़ा अध्ययनपूर्ण है, जिसमें विस्तार से सब कुछ दिया गया है, किन्तु उसकी भाषा जटिल और कठिन है। इनके 'गतशतकनुं

साहित्य' द्वारा पिछली शताब्दी के कुछ उन लेखकों-कवियों पर नवीन प्रकाश पड़ता है, जिनके विषय में इतनी अच्छी तरह और किसी ग्रंथ में विचार नहीं किया गया। आलोचक की दृष्टि से इनका स्थान बहुत ऊँचा है और सम्पादक के रूप में आपने 'कौमुदी' तथा 'मानसी' जैसे अनेक पत्रों का कुशल सम्पादन करके साहित्य की बहुत बड़ी सेवा की है।

विष्णुप्रसाद त्रिवेदी

विष्णुप्रसाद रणछोड़लाल त्रिवेदी उमरेठ के बाज खेड़ावाल ब्राह्मण हैं। इनका जन्म १८९९ में हुआ था। सन् १९२३ में एम. ए. पास करके आप सूरत के सार्वजनिक कालेज में अंग्रेजी और गुजराती के प्राध्यापक हो गये। वहां कई वर्षों तक आप रहे और वहाँ से अवकाश ग्रहण करने पर अब आप 'चुनीलाल गांधी रिसर्च इन्स्टीटयूट' के डाइरेक्टर हैं। आपने पहले 'गुजरात', 'कौमुदी' और अन्य पत्रों में लिखना आरम्भ किया। इनके प्रिय विषय हैं, काव्य, चिन्तनात्मक साहित्य, साहित्यिक आलोचना तथा भाषा शास्त्र। आपकी आलोचनाएँ और समीक्षाएँ अध्ययन पूर्ण और विचारप्रधान होती हैं। इनकी भाषा सुव्यवस्थित, शुद्ध एवं उपयुक्त किन्तु कुछ कठिन होती है। इनका पांडित्य और अध्ययन तत्काल पाठक को आकर्षित कर लेता है। एक आलोचक की दृष्टि से आपका स्थान बहुत ऊँचा है और वर्तमान आलोचकों में तो आप सर्वश्रेष्ठ हैं। अभी हाल ही दिसंबर १९६१ में कलकत्ता में होनेवाले गुजराती साहित्य परिषद् के अधिवेशन के आप अध्यक्ष चुने गए थे। अध्यक्षीय पद से आपने अत्यन्त सारगर्भित और अध्ययनपूर्ण भाषण दिया था, जिसमें आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियों पर अच्छा प्रकाश पड़ता था। इनके ग्रंथ हैं—विवेचना, परिशीलन, अर्वाचीन चिन्तनात्मक गद्य और भावना सृष्टि। अंग्रेजी तथा संस्कृत साहित्य का आपने अच्छा अध्ययन किया है। आप के ही कथनानुसार आप पर गोवर्धनराम का बहुत अधिक प्रभाव है। प्रकृति से आप चिन्तनशील हैं और साहित्यिक आलोचनाओं में साहित्यिक सिद्धान्तों की सूक्ष्मता पर आप अधिक बल देते हैं। इनके 'अर्वाचीन चिन्तनात्मक गद्य' में आधुनिक गुजराती साहित्य के चिन्तनात्मक गद्य की शास्त्रीय ढंग से विवेचना की गयी है और यह बड़ा विद्वत्तापूर्ण ग्रंथ है।

विश्वनाथ भट्ट

विश्वनाथ मगनलाल भट्ट औदीच्य ब्राह्मण है। इनका जन्म १८९८ में भावनगर में पाम हुआ था। अंग्रेजी और सस्कृत विषय लेकर आपने बी ए पास किया, फिर १९२० के आदोलन तथा 'मम्ब केलवणी मडल' में भाग लिया। उसके बाद साहित्यिक गतिविधि के लिए इन्होने विजयराय के 'कौमुदी सेवकगण' में प्रवेश किया। १९२६ मे आपने गद्य नवनीत का सम्पादन किया। गुजराती वर्नाक्युलर सोसाइटी ने आपको पारिभाषिक कोश तैयार करने का काम सौंपा। आलोचक के रूप में आप बहुत ऊँचे उठे और रामनारायण, विष्णु प्रसाद, विजयराम तथा अन्य आलोचकों की कोटि मे आ गये। इनके कुछ आलोचनात्मक ग्रंथ हैं—साहित्यसमीक्षा, विवचन मुकुर, निकषरेखा। रामनारायण और विष्णुप्रसाद के समान तो नहीं, फिर भी आप की शैली शिष्ट और पठनीय है। आपने 'नमदत् मदिर' तथा निबंधमाला' का सम्पादन किया है। आप शैली की विशिष्टता को बहुत पसद करते हैं। आप के कुछ अनूदित ग्रंथ भी बहुत अच्छे हैं जैसे प्रेमनो दम्भ, लग्न सुख, स्त्री हाने पुरुष आदि।

डोलरराय माकड

डोलरराय रगील्दास माकड कच्छ के बडनगर भागर हैं। उनका जन्म १९०२ में हुआ। आप पहले सस्कृत के प्राध्यापक थे, किन्तु बहुत दिनो से अब अन्यिया ग्राम में एक कालेज चला रहे है, जो ग्रामीण क्षेत्र में एक प्रयोग के रूप मे है। अलकार शास्त्र और नाट्यशास्त्र के आप विशेष पडित हैं और इन विषयो पर आपका अध्ययन बहुत गहरा है। आपका ग्रंथ 'काव्य विवेचन' बहुत पाडित्यपूर्ण है। आपके पौराणिक तथा भारतीयता विषयक निबंधो में शास्त्रीय खोज का पता चलता है, साथ ही उनमें सतुलित विचार हैं। 'भगवान नी लीला' आपकी धार्मिक कविता है। आपकी गणना कुछ उन गिने-चुने पडितो मे है जिन्होने रसशास्त्र का बडी सूक्ष्मता से विधिवत् अध्ययन किया है।

रामप्रसाद बक्षी

रामप्रसाद बक्षी बहुत दिनो तक पायर हाई स्कूल माताबुन्न, बम्बई में संस्कृत के अध्यापक तथा प्रधानाध्यापक थे। अलकार और रसशास्त्र के आप दूसरे महा-

पंडित हैं। दर्शन शास्त्र पर भी आपका अच्छा अधिकार है। इन तीनों विषयों के द्वारा आपने साहित्य सर्जन में अच्छा योग दिया है।

धनसुखलाल कृष्णलाल मेहता

धनसुखलाल हास्यरस के प्रमुख लेखकों में से हैं। आपने उपन्यास, कहानियां, नाटक, अनुवाद ग्रंथ, आलोचनाएँ, रूपान्तर और आत्मचरित्र लिखा है तथा हास्यपूर्ण प्रसंगो का वर्णन किया है। ज्योतीन्द्र दवे के साथ मिलकर आपने 'अमे बधा' लिखा है। हास्यविहार, विनोदविहार, वार्ताविहार आदि आपके उपन्यास है और छेल्लोकाल आदि कहानियां है। 'बुत्रसर' गुलाबदास ब्रोकर के सहयोग से आपने लिखा है। 'सगेजनुं सूरत' में प्राचीन सूरत की कहानी है। आपने मोलियरके नाटकोंका, शेरलाक होम्ज की जासूसी कहानियों का तथा मेटरलिंक के निबंधों का अनुवाद भी किया है। अनुवादो एवं रूपान्तरो के अतिरिक्त हास्यरस का मौलिक साहित्य भी आपने प्रदान किया है। आप का व्यंग्य कटु अथवा आक्षेपयुक्त नहीं होता। समाज के मध्यमवर्गीय लोगों की दशा पर आपका व्यंग्य अधिक प्रकाश डालता है। ये अतिशयोक्ति द्वारा नहीं, वरन् वास्तविक घटना से हास्य उत्पन्न करने की चेष्टा करते है।

बटुभाई उमरवाड़िया

बटुभाई एकांकी नाटक लिखने के लिए प्रसिद्ध हैं। 'बटुभाईना नाटकों' में इनके एकांकी संगृहीत है। इनके नाटक 'लोमहर्षिणी' का पाठक-जगत में बहुत बड़ा स्वागत हुआ। 'मत्स्यगंधा' और 'गांगेय' में मत्स्यगंधा और भीष्म के आख्यान बड़े प्रभावपूर्ण ढंग से वर्णित हैं, किन्तु पात्र पौराणिक नहीं वरन्, आधुनिक लगते हैं। बटुभाई की लेखनी से हास्य की फुलझड़ियां भी निकली हैं और इनके पात्र सजीव हैं। इनके 'शकुन्तला रस दर्शन' तथा 'मालादेवी' को विशेष ख्याति मिली है। 'कीर्तिदाने कमलना पत्रो' में इन्होंने गुजराती के साहित्य और इतिहास पर पत्रशैली मे विचार किया है। इनके कुछ निरीक्षण बड़े तीव्र और प्रभावोत्पादक है। आपने आधुनिक कहानियों के दो संग्रह भी उपस्थित किये हैं। नाटक लिखने में, नवीन विचार प्रस्तुत करने में, सहसा

दिशा परिवर्तन करने में और विषयों की विविधता में आपने इब्सन की शैली ग्रहण की है। आपके नारी पात्र चित्ताकर्षक और संवाद-प्रभावमय होते हैं। आप वातावरण को कल्पना द्वारा मनोरम बना देते हैं। आप सर्वप्रथम एकांकी लिखनेवाले हैं और सफल एकांकी-लेखकों में से एक हैं।

लीलावती मुन्शी

लीलावती मुन्शी एक सफल लेखिका हैं, जिनकी अपनी निजी शैली है। 'जीवनमाथी जडेली' में आपकी कहानियां हैं, जिनमें सामाजिक समस्याओं पर प्रकाश डाला गया है। आपकी अंतर्दृष्टि अत्यन्त गहन और मनोवैज्ञानिक है, जिससे नर-नारियों के जीवन की कठिनाइयों को आप बहुत शीघ्र भाप लेती हैं। आपने विविध विषयों पर लिखा है, विशेषकर नारियों की दुर्दशा और सामाजिक असमानता पर। इनके नाटक 'कुमारदेवी' में गुप्तवंश की महारानी—जो चंद्रगुप्त प्रथम की जीवनसंगिनी बनी—का चरित्र अत्यंत सबल, प्रेरक, महत्त्वाकांक्षी और मनोरम है।

इनकी शैली सादी है, फिर भी उसमें एक आभा है। पहले आपका जीवन सीमित क्षेत्र में बीता, किन्तु श्री क० मा० मुन्शी के साथ विवाह होने के बाद दोनों को कला, साहित्य, सामाजिक कार्य, शिक्षा और राजनीतिक क्षेत्र में बहुत सफलता मिली और इनका मिलन अत्यन्त आनन्ददायी सिद्ध हुआ। विवाह के बाद आपने अपना ध्यान संसद, भारतीय विद्या भवन, स्त्री सेवासदन जैसी संस्थाओं के विकास की ओर केन्द्रित किया। आपने निगम, विधानसभा और संसद में भी बड़ी लगन से काम किया। प्रदर्शनी, नाटक, संगीत, कला और साहित्य द्वारा आपने जनता की सौंदर्य-भावना जगाने का प्रयास किया। भारतीय विद्याभवन के कलाकेन्द्र का सफल संचालन आपने कई वर्षों तक किया। 'रेखाचित्रो अने बीजा लेखो' में आपने छोटे वाक्यों और सीधी शैली में अपनी अंतर्दृष्टि का उपयोग करते हुए अच्छे शब्द-चित्र प्रस्तुत किये हैं।

अध्याय २३

उन्नीसवीं शताब्दी के कुछ अन्य साहित्यकार

पंडित गट्टूलालजी---इनका जन्म १८०१ में जूनागढ़ में हुआ था। ये तैलंग ब्राह्मण थे। ९ वर्ष की अवस्था में ये अंधे हो गये थे। संस्कृत साहित्य और शास्त्रों के आप प्रकांड पंडित थे। उन्हें भारत मार्तण्ड की पदवी प्राप्त हुई थी। आप आशुकवि थे। संस्कृत और गुजराती में इन्होंने अनेक ग्रंथ लिखे। इनकी मृत्यु पर इनकी पत्नी ने बोलना छोड़ दिया और दूसरे दिन उनकी भी मृत्यु हो गयी।

हरजीवन कुबेरजी ऋवाड़ी-ऋषिराय---(१८३५-१९२७) ने दलपतराम की शैली में अनेक प्रसिद्ध भजनों की रचना की, जिसमें काव्यत्व अच्छा है।

वल्लभजी हरिदत्त आचार्य---(१८४०) की रुचि शोध भारतीय संस्कृति की ओर अधिक थी। आपने गुजराती और संस्कृत में अनेक कविताएँ लिखी हैं तथा कुछ संस्कृत ग्रंथों और स्तोत्रों का गुजराती में अनुवाद किया है।

अनवरमियां काजी (ज्ञानी)---(१८४३-१९१६) ने गुजराती में कई पद और गरविया लिखी हैं। आपने उर्दू में भी कविताएँ लिखी हैं, जो दार्शनिक और भक्तिरस प्रधान हैं। इनकी रचनाएँ सूफीमत की भाषा में प्रेमरूपा भक्ति का प्रतिपादन करती हैं।

लालशंकर उमियाशंकर---(१८४५) एक सार्वजनिक कार्यकर्ता, समाज-सुधारक और शिक्षा-शास्त्री थे। इनकी ख्याति लेखक के रूप में न होकर एक गणितज्ञ के रूप में विशेष है यद्यपि इन्होंने कई पुस्तकें लिखी हैं।

भाईशंकर नाना भाई भट्ट---(१८४५) आप एक सफल वकील थे। आपने अनेक नाटक और कहानियाँ लिखी हैं।

हरिकृष्णलाल शंकर दवे---सूरत के वडनगरा नागर थे। इनका जन्म १८४९ में हुआ था। ये राजकोट में राजकुमार कालेज के प्राध्यापक थे, जहाँ

सौराष्ट्र के अनेक भावी शासकों ने इनसे शिक्षा पायी थी। वे सब इनका बड़ा आदर करते थे। कुछ के तो जीवन भर आप पथ-प्रदर्शक रहे। इनके शिष्य गोंडल के राजा ने इनसे गोंडल में बस जाने की प्रार्थना की थी। इन्होंने अनेक ग्रंथ लिखे हैं, जिनमें गोंडल का इतिहास भी सम्मिलित है। गोंडल के राजा भगवतसिंहजी तथा उनकी रानी के आप साहित्य-गुरु थे। आपने सौराष्ट्र के शासकों को प्रेरित किया था कि वे दादाभाई नौरोजी की आर्थिक सहायता करें, जिससे दादाभाई का चुनाव ब्रिटिश पार्लियामेंट में हो सके। नृसिंहाचार्य, नाथूराम शर्मा, मणिलाल तथा दूसरों की भाँति ये भी सनातनी मत के थे। ग्रंथ-रचना के अतिरिक्त ये अखिल भारतीय ख्याति-प्राप्त संन्यासिगण के पोषक बन गये, जो भारतीय संस्कृति का प्रचार कर रहे थे। उनमें से मुख्य थे—कृष्णानंद, ब्रह्मानंद, प्रज्ञानानन्द और आनन्दाश्रम। इनके लिए आपने वाराणसी में एक मठ की स्थापना की और कृष्णानंद के ग्रंथ 'विचारत्रयी' का सम्पादन किया, जो धर्म और दर्शन का मौलिक, शोधपूर्ण और पांडित्यपूर्ण ग्रंथ है। लोकमान्य तिलक ने अपनी गीता लिखने में इस ग्रंथ का आभार स्वीकार किया है।

अरजुन भगत—(१८५०–१९००) का ग्रामीण भाषा पर अच्छा अधिकार था। इन्होंने सीधी सादी किन्तु प्रभावपूर्ण भाषा में अनेक कविताएँ लिखी हैं।

छोटालाल नरभेरामभट्ट—(१८५०) संस्कृत के अच्छे विद्वान थे। बड़ौदा की प्राचीन काव्य माला में आपका सम्बन्ध था। आपने गुजराती में कई मौलिक ग्रंथ लिखे हैं तथा संस्कृत के दर्शन, आयुर्वेद और ज्योतिष विषयक ग्रंथों का अनुवाद भी किया है।

इंदिरानंद ललितानंद पंडित—(१८५१) नर्मद और दयानन्द से अधिक प्रभावित थे। इन्होंने कुछ काव्य ग्रंथों की रचना की है, जो द्वितीय कोटि के हैं। आपने कुछ धार्मिक पुस्तकें भी लिखी हैं।

श्री मनुसिंहाचार्यजी—विस नगरा नागर का जन्म १८५८ में सूरत जिले के बडोद में हुआ था। आपने श्रेय साधक वर्ग की स्थापना की, जिसकी ओर बहुत-से शिक्षित व्यक्ति आकर्षित हुए। अपने महान व्यक्तित्व, आत्मिक बल, धर्म सम्बन्धी गहन अध्ययन, दर्शन, योग और मंत्रशास्त्र के ज्ञान पर आप

वह शक्ति पुंज बन गये, जिसने नवशिक्षितो मे आयी हुई अविश्वास की लहर को समाप्त कर दिया तथा गुजरात की जनता के हृदयो मे आर्य धर्म और संस्कृति के प्रति फिर विश्वास उत्पन्न कर दिया। उन्होंने अनेक ग्रथ लिखे है, जैसे भामिनी-भूषण, त्रिभुवन विजयी राज्य, नृसिंहवाणी विलास, सिद्धान्त सिन्धु आदि। ४३ वर्ष की अल्पायु मे इनका देहान्त हो गया। इनके सुन्दर कार्य को इनके बाद छोटालाल जीवणलाल ने चालू रखा। श्रेय.साधक वर्ग ने 'महाकाल' जैसे अनेक धार्मिक और दार्शनिक पत्रों का सम्पादन किया। छोटालाल के बाद नृसिंहाचार्य के पुत्र भगवान् उपेन्द्राचार्य और उपेन्द्राचार्य की पत्नी जयन्तीदेवी द्वारा ये कार्य आगे बढाये जाते रहे। इन्होंने तथा इनके शिष्यो ने गुजरात को अनेक धार्मिक और दार्शनिक ग्रंथ प्रदान किये।

कमलाशंकर प्राणशंकर त्रिवेदी—वडनगरा नागर ब्राह्मण का जन्म सूरत में १८५७ मे हुआ था। आप अहमदाबाद के प्रेमचंद रायचन्द ट्रेनिंग कालेज के प्रिंसिपल थे। आपने परम्परागत और आलोचनात्मक दोनों प्रणालियो से अपना संस्कृत का अध्ययन बढाया और अनेक शास्त्रो के, विशेषकर व्याकरण के, आरूढ पंडित हो गये। आपने गुजराती वाचनमाला तैयार की और 'काव्य साहित्यमीमांसा' तथा 'अनुभव विनोद' आदि ग्रथ लिखे। आपने संस्कृत के कुछ ग्रंथो का समीक्षात्मक सम्पादन किया, जैसे भट्टि काव्य, रेखागणित, एकावली, प्रतापरुद्रीय, षड्भाषाचन्द्रिका और प्रक्रिया कौमुदी। आप वेदान्त के अच्छे ज्ञाता थे और शंकर के सूत्र भाष्य की गुजराती मे टीकाएँ लिखी है। आपने इंग्लैंड का इतिहास लिखा है। आपने गुजराती भाषा का बृहद् व्याकरण लिखा था, जो अब भी बी० ए० और एम० ए० के पाठ्यक्रम मे है। भावनगर में १९२४ मे होनेवाले गुजराती साहित्य परिषद् के अधिवेशन के आप अध्यक्ष चुने गये थे। अनेक शास्त्रो के पंडित के रूप मे आप का मान पूरे प्रान्त मे था और आपकी गणना सर रामकृष्ण गोपाल भंडारकर के साथ होती थी।

डाह्याभाई पीताम्बरदास देरासरी—एक विसनगरा नागर ब्राह्मण थे, जिनका जन्म सूरत में १८५७ मे हुआ था। आपने कई ग्रथो का अनुवाद किया तथा कुछ मौलिक ग्रथ भी लिखे। आपने गुजराती साहित्य का इतिहास 'साठीनुं साहित्य' लिखा और 'कहान उदे प्रबंध' का समीक्षात्मक सम्पादन किया तथा

मादी और गुपठनीय भाषा म काव्यानुवाद भी किया। आपने 'पौराणिक कथा कोष' की रचना की। आपकी कविताएँ 'बुल्बुल' और 'चमेली' में सगृहीत है। आपकी कविताओं में मधुरता ह तथा गेय है।

छगनलाल ठाकोरदास मोदी—सूरत के दशादिशावाल वणिक् है, जिनका जन्म १८५७ मे हुआ था। आप उन्नति करके बडौदा के विद्याधिकारी के पद पर पहुँच गये। आपने कई ग्रथ लिखे है, जैसे द्रावती, नलाख्यान (सटीक) आदि। 'बृहत्काव्य दोहन' के कई भागो का सम्पादन करने मे आप इच्छाराम सूर्यराम देसाई के सहयोगी थे। आप शिक्षा प्रेमी थे। सूरत का महिला विद्यालय आपकी ही प्रेरणा से स्थापित हुआ था। सूरत के एम० बी० टी० आर्ट्स कालेज को एक बडी रकम दान करने के लिए आपने अपने भाई मगनलाल को प्रेरित किया था। यह कालेज अब बहुत बडी संस्था के रूप में हो गया ह।

श्रीमान् नाथूराम शर्मा—औदीच्य सहस्र ब्राह्मण थे। इनका जन्म लीमडी के पास मागीदड में १८५८ म हुआ था। आपने सौराष्ट्र के बीलखा मे एक आश्रम की स्थापना की थी। आपके बाद आपके शिष्यो द्वारा अनेक आनन्दाश्रमों और श्रीनाथ मन्दिर की स्थापना हुई। आप संस्कृत साहित्य, योग, वेदान्त और अध्यात्म विद्या के अच्छे पडित थे। आपने अनेक ग्रथ लिखे और सार्वजनिक सभाओं मे भाषण दिये। गुजरात की जनता की धार्मिक प्यास बुझानेवाले कुछ विशिष्ट व्यक्तियो मे से आप एक है। गुजरात भर म आपके शिष्य थे। एक महा आचार्य के रूप में आपका आदर था। आप क ग्रथो की संख्या लगभग १०१ है, जो विविध विषयो पर है, जैसे धर्म, दर्शन, योग और वेदान्त।

गोकुलजी झाला—जूनागढ के दीवान तथा गौरीशकर थाला भावनगर के दीवान थे। दोनो वडनगरा नागर ब्राह्मण थे। दोनो वेदान्ती ज्ञानी, चरित्रवान्, शिक्षा प्रेमी और महान् व्यक्ति थे। आगे चलकर गौरीशकर सन्यासी हो गये थे।

छगनलाल हरिलाल पड्या—नडियाद के वडनगरा नागर ब्राह्मण थे, जिनका जन्म १८५९ में हुआ था। आपने बाण की कादम्बरी का गुजराती (गद्य) में अनुवाद किया था। इस ग्रथ के कई सस्करण निकले और इसका बडा सम्मान हुआ। आपके और भी कई ग्रथ है।

मान शंकर पीताम्बरदास महता—भावनगर में कुंडला के वडनगरा नागर थे। इनका जन्म १८६३ में हुआ था। आपने नागरोत्पत्ति तथा मेवाड़ना गुहिलो पर एक अध्ययनपूर्ण ग्रंथ लिखा है। आपने वेदान्त के कई ग्रंथों का अनुवाद भी किया है और कई मौलिक ग्रंथ भी लिखे है।

रणछोड़दास वृन्दावनदास पटवारी—(१८६४) पुष्टिमार्ग के प्रबल समर्थक थे और सम्प्रदाय साहित्य के कई ग्रंथ लिखे है।

त्रिभुवन प्रेमशंकर त्रिवेदी—(१८६५) जिनका दूसरा नाम 'मस्त कवि' था विभावरी स्वप्न, मित्रनो विरह, स्वरूप पुष्पांजलि और कलापी नो विरह के लेखक है।

जीवणलाल लक्ष्मीराम दवे—(१८६४) जो जटिल नाम से प्रसिद्ध थे—भी 'कलापी' के मित्र थे। आपने कुछ गीतों की रचना की है और भामिनी-विलास का अनुवाद किया है।

रामचन्द्र रवी भाई पचाण—श्रीमद्राजचन्द्र के नाम से विख्यात थे। इनका जन्म १८६७ मे हुआ था। आरभ से ही आप की प्रवृत्ति अध्यात्मविद्या की ओर थी। आपने जैन दर्शन का अध्ययन किया था। आपकी स्मरणशक्ति असाधारण थी। महात्मा गाधी आपसे बहुत प्रभावित थे। आपने प्रौढ, शिष्ट तथा संस्कृतमय शैली मे, साथ ही छोटे-छोटे वाक्यो मे, कई मौलिक ग्रथ लिखे है। ३२ वर्ष की अल्पायु मे आपका देहान्त हो गया। आप कुछ इने-गिने दार्शनिको और कवियो मे है।

भानुसुखराम निगणराम मेहता—(१८६७) ने मध्यकालीन गुजराती साहित्य के कुछ ग्रंथो का सम्पादन किया और वैज्ञानिक विषयो पर बहुत-कुछ लिखा। किन्तु इनका प्रधान कार्य है 'गुजराती-इगलिश कोश', जिसे इन्होने अपने पुत्र भरतराम के सहयोग से पूरा किया था।

मनु भाई नन्द शंकर मेहता—(१८६८) बहुत समय तक वड़ौदा के दीवान रहे थे। आप शिक्षा-प्रेमी थे। इनका शिक्षा-प्रेम इनके विद्वत्तापूर्ण भाषणो मे प्रकट होता है। आपने हिन्द राजस्थान और प्रमाणशास्त्र पर भी लिखा है।

कृष्णलाल मोहनलाल झवेरी—(१८६८) जीवन भर अनेक शिक्षा-सस्थाओं तथा विश्वविद्यालयो से सम्बन्धित रहकर सक्रिय योग देते रहे।

१९३३ में लाठी में होनेवाले गुजराती साहित्य परिषद् के अधिवेशन के आप अध्यक्ष चुने गये थे। मृत्यु पर्यन्त आप परिषद् के सभी अधिवेशनों में उपस्थित रहे। आप बम्बई के स्माल काजेज़ कोर्ट के चीफ़ जज तथा हाईकोर्ट के एक जज थे। अंग्रेजी, फ़ारसी और बँगला के प्रकाण्ड पंडित थे। आपने अनेक ग्रंथ लिखे तथा सम्पादित किये और फ़ारसी-बंगाली के कई महत्वपूर्ण ग्रंथों का अनुवाद भी किया। कई वर्षों तक 'माडर्न रिव्यू' में आप गुजराती पुस्तकों की समीक्षा बराबर करते रहे। आपने गुजराती साहित्य का इतिहास अंग्रेजी में ३ खंडों में लिखा है। आप अन्त तक नवीन तथा प्राचीन का योग-सूत्र बने रहे।

किलाभाई घनश्याम भट्ट—(१८६९) ने 'मेघदूत', 'विक्रमोर्वशीय' तथा 'पावनी परिणय' का ललित गुजराती में अनुवाद किया।

मणिलाल छेबाराम भट्ट—(१८७०) का सम्बन्ध अनेक पत्रों से था।

अमृतलाल सुंदरजी पढियार—(१८७०) ने साधारण पाठकों के लिए बहुत सरल भाषा में कई पुस्तकें लिखी हैं। इनमें से कई के शीर्षक 'स्वर्ग' शब्द से आरम्भ होते हैं, जैसे स्वर्गनी कुंची, स्वर्गनी सीढी आदि। आप एक बड़े सामाजिक कार्यकर्ता भी थे।

नर्मदा शंकर देवशंकर मेहता—(१८७१) दर्शन शास्त्र के महापंडित थे और २ खंडों में 'हिन्द तत्त्वज्ञाननो इतिहास' लिखा है। आपने शक्ति सम्प्रदाय पर भी एक विद्वत्तापूर्ण ग्रंथ लिखा है और अन्यों के ग्रंथों का सम्पादन किया है।

दीपक बा देसाई—(१८७१) पेटलाद की वडनगरा नागर महिला थीं। इनकी कविताएँ इनके 'स्तवन मंजरी' और 'खंडकाव्यो' में संगृहीत हैं और 'रंजीवनी' में इन्होंने मराठी नाटक 'विद्याहरण' का रूपान्तर प्रस्तुत किया है।

हरगोविन्द प्रेमशंकर त्रिवेदी—(१८७२) सम्पन्न कवि त्रिभुवन प्रेमशंकर के छोटे भाई थे। आपने 'शिवाजी अने जेबुन्निसा' और 'काठियावाडनी जूनी वातो' पुस्तकें लिखी हैं तथा कुछ गीत एवं खंडकाव्यों की रचना की है।

राममोहनराय जसवंतराय देसाई—(१८७३) कई वर्षों तक महिलाओं की पत्रिका 'सुन्दरी सुबोध' के सम्पादक थे। आपने कहानियाँ, उपन्यास, कविताएँ और नाटक लिखे हैं। आपके दो उपन्यास 'योगिनी' और 'माया' तथा कविता-संग्रह 'तरंगावलि' अधिक प्रसिद्ध हैं।

मगनलाल गणपतराम शास्त्री––(१८७३) डेकन कालेज, पूना में संस्कृत के प्राध्यापक थे तथा पुष्टि मार्ग के अच्छे विद्वान् थे। आपने संस्कृत के अनेक ग्रंथो का संपादन तथा अनुवाद किया है और वल्लभ संप्रदाय के ३० से अधिक ग्रंथों का समीक्षात्मक संपादन किया है, जिनमें इनकी विद्वत्तापूर्ण प्रस्तावनाएँ भी हैं।

कौशिकराम विघ्नहरराम मेहता––(१८७८) धर्म तथा दर्शन के अच्छे ज्ञाता थे। आपने 'सर्वयान' ग्रंथ लिखा है। 'महाकाल' और अनेक अन्य पत्रों में आप के लेख प्रकाशित होते थे।

भिक्षु अखण्डानन्द–(लल्लूभाई जगजीवन ठक्कर)––का जन्म बोरसद मे १८७४ मे हुआ था। आप १९०४ मे सन्यासी हो गये। साधारण जनता के लाभ के लिए आप बहुत सस्ते दामो मे पुस्तके प्रकाशित करने लगे। कुछ समय बाद आपका प्रयास 'सस्तु साहित्य वर्धक कार्यालय' के रूप मे परिणत हुआ, जिसने समूचे गुजरात मे ज्ञान तथा शिक्षा के प्रचार की अद्भुत सेवा की है। आपने कुछ अच्छी पुस्तके चुनी और उन्हे सबके लिए सुलभ कर दिया। अपने सतत प्रयास, सच्ची लगन और व्यावहारिक ज्ञान के कारण सस्ती पुस्तको द्वारा जन-सेवा करने मे आपको महान् सफलता मिली।

मुनि बुद्धिसागर––(१८७४) ने 'अध्यात्म ज्ञान प्रसारक मंडल' की स्थापना की और अनेक ग्रंथो का प्रकाशन किया, जिनमे भजन, धर्म और दर्शन की पुस्तके सम्मिलित है। आपने गुजराती तथा संस्कृत के अनेक जैन-ग्रंथो का सम्पादन भी किया।

भोगीन्दराव रतनलाल दिवेटिया––(१८७५) एक उपन्यासकार के रूप में अधिक प्रसिद्ध है। आपके दो उपन्यास 'मृदुला' तथा 'उपाकान्त', जिनमे गुजरात के नारी-जीवन का चित्रण है, आपको प्रकाश मे ले आये। आपने कई सामाजिक उपन्यास प्रदान किये है, जिनमे समाज की वर्तमान प्रमुख समस्याओ पर विचार किया गया है। ४२ वर्ष की आयु मे आपका देहान्त हो गया।

विद्यागौरी रमणभाई नीलकंठ––(१८७६) का विवाह छोटी अवस्था मे रमणभाई के साथ हो गया था, किन्तु विवाह के बाद भी आपने पढाई बंद नही की और बी० ए० पास होनेवाली गुजरात की प्रथम महिला होने का गौरव

प्राप्त किया। अपने पति के साथ आप साहित्य-सेवा करने लगी। इनकी बहन शारदा बहन सुमन्तराय मेहता ने भी बी० ए० पास किया। इन दोनों बहनों ने कालिज जानेवाली लड़कियों के लिए मार्ग खोल दिया। दोनों ने शिक्षा तथा समाज की अच्छी सेवा की है। विद्यागौरी १९४३ में बड़ौदा में होनेवाले 'गुजराती-साहित्य-परिषद' के अधिवेशन की अध्यक्षा चुनी गयी थीं।

मगनभाई चतुरभाई पटेल—(१८७६) धर्म तथा दर्शन के अच्छे विद्वान् थे। आपने उपनिषद-ज्योति, गीता ज्योति तथा ब्रह्म मीमांसा ज्योति नामक ग्रन्थ लिखे, शाकुन्तल का अनुवाद किया तथा कुसुमांजलि आदि में कविताएँ लिखीं।

हाजी महम्मद अलारखिया शिवजी—(१८७७) की रुचि सचित्र कलात्मक पत्रिका निकालने की ओर थी। १९१८ में आपने 'बीसमी सदी' आरंभ की, जो बहुत उच्चकोटि की थी। आपने इस पत्रिका को असाधारण स्तर की बनाया, भले ही ऐसा करने में आप निर्धन हो गये। अपने लेखों के अतिरिक्त आपने कई ग्रंथों का अनुवाद भी किया है। १९२१ में आपकी मृत्यु हो गयी। आपके मित्रों ने 'हाजी महम्मद स्मारक ग्रंथ' प्रकाशित किया।

हिम्मतलाल गणेशजी अजारिया—(१८७७) ने अंग्रेजी काव्य-संग्रह 'गोल्डेन ट्रेजरी' की भांति गुजराती कविताओं का संग्रह प्रकाशित किया, जो बहुत प्रसिद्ध हुआ। आपने 'साहित्य प्रवेशिका' नाम से गुजराती साहित्य का संक्षिप्त इतिहास लिखा। 'कविता प्रवेश' तथा 'संगीत मंजरी' भी आपकी पुस्तकें हैं और हाईस्कूल के विद्यार्थियों के लिए उपयोगी कुछ और पुस्तकें भी आपने लिखीं।

मुनि मंगल विजय—(१८७७) ने धर्म और दर्शन सम्बन्धी अनेक पुस्तकें गुजराती तथा संस्कृत में लिखीं और प्रकाशित कीं।

वाडीलाल मोतीलाल शाह—(१८७८) एक गंभीर चिंतक थे। आपने तीन पत्रों का सम्पादन किया और ३५ वर्षों तक साहित्य-सेवा करते रहे। आपने स्वतन्त्र चिंतन से युक्त कई मौलिक एवं श्रेष्ठ ग्रंथ लिखे हैं। 'एक', 'आर्य धर्म', 'मृत्युना म्होंमा', 'मस्तविलास', 'जैन दीक्षा' आदि आपके कुछ परिचायक ग्रंथ हैं।

हरिप्रसाद ब्रजराय देसाई—(१८७९) ने कहानियाँ तथा जीवन चरित लिखे हैं। स्वास्थ्य और ओषधि आप का मुख्य विषय था। आपने लगभग ८ ग्रंथों का प्रकाशन भी किया है।

पुरुषोत्तम विश्राम मावजी—(१८७९) प्राचीन इतिहास, कला तथा भारतीय शास्त्रो के अच्छे पंडित थे। कला, हस्तलिपियो तथा पुरातन वस्तुओं का एक असाधारण संग्रहालय आपने बनाया था। आपने धनी व्यक्तियों के सम्मुख एक आदर्श उपस्थित किया। आपने 'सुवर्णमाला' नाम की एक पत्रिका आरंभ की, जिसमें बड़े कलात्मक चित्र रहते थे। आपने कुछ पुस्तकें तथा कहानिया भी लिखी है, जिनका मुख्य विषय इतिहास है।

पंडित सुखलाल संघजी संघवी—(१८८०) बचपन मे ही अंधे हो गये थे, फिर भी बड़ी कठिनाई से आपने संस्कृत और दर्शन शास्त्र का अध्ययन किया और कई शास्त्रो के आरूढ पंडित हो गये। आप हिन्दू-विश्व-विद्यालय तथा भारतीय-विद्या-भवन मे दर्शन विभाग के अध्यक्ष थे। आपने जैन-दर्शन-शास्त्र के कई ग्रथो का समीक्षात्मक सपादन किया है, जिनमें इनकी विद्वत्तापूर्ण टिप्पणियाँ तथा प्रस्तावनाएँ है। आप यद्यपि जैन हैं; किन्तु आप के विचार उदार और पुरातन हैं। आपने प्राय. सभी शास्त्रो का सूक्ष्म अध्ययन किया है और उनपर अधिकार प्राप्त किया। आपके निबंधो का संग्रह कई भागो मे हुआ है। आप अखिल भारतीय ख्याति के एक उच्च दार्शनिक एवं विद्वान् है।

प्रहलाद चन्द्रशेखर दिवानजी—(१८८१) भारतीय शास्त्रो तथा शोध के अच्छे विद्वान् थे। आपने कई विद्वत्तापूर्ण विस्तृत निबधो का प्रकाशन किया तथा 'सिद्धान्त बिन्दु' का संपादन किया है। आपने 'भगवद्गीता' की शब्द-सूची भी तैयार की। 'रश्मि कलाप' मे आपके गुजराती निबध सगृहीत है।

चिमनलाल डाह्याभाई दलाल—(१८८१) बडौदा के पुस्तकालय विभाग मे थे। आपने कई दुष्प्राप्य तथा बहुमूल्य पांडुलिपियो का संग्रह किया। जैन-भांडार की हस्तलिपियो की तालिका बनाने के लिए आपकी नियुक्ति पाटन मे हुई थी। आपके शोध-कार्य के कारण ही अनेक महत्त्वपूर्ण हस्तलिखित पुस्तके प्रकाशित हुई तथा सस्कृत, अपभ्रंश और पुरानी गुजराती के कई ग्रंथों का पता चला। इनमे से कई का संपादन आपने किया। आपने जैसलमेर,

सिरोही, बीकानेर, जोधपुर आदि के भंडारों का भी अवलोकन किया। आपने 'गायकवाड ओरिएंटल सीरीज' के कुछ महत्त्वपूर्ण ग्रंथों का, 'प्राचीन गुजर-काव्य-संग्रह' और 'वसन्त विलास' का सम्पादन किया तथा पाटन और जैसलमेर आदि पुस्तकालयों का सूचीपत्र तैयार किया।

गिरिजाशंकर वल्लभ जी आचार्य—(१८८१) बंबई के 'प्रिंस आफ वेल्स' संग्रहालय के क्यूरेटर थे। आपने अनेक शोधपूर्ण निबंधों तथा 'गुजरातना ऐतिहासिक लेखों' का प्रकाशन किया।

जयसुखराम पुरुषोत्तम राय जोशीपुरा—(१८८१) बड़ौदा के शिक्षा-विभाग में थे। आपने 'सयाजी साहित्य माला' तथा 'बाल साहित्यमाला' के विकास में अच्छी सहायता की। आपने वैज्ञानिक शब्द-संग्रह तैयार किया। आपने कुछ मौलिक ग्रंथ लिखे और कुछ का अनुवाद किया।

जयेंद्रराय भगवानलाल दूरकाल—(१८८१) पहले एक पत्रकार थे, फिर सूरत में अंग्रेजी तथा गुजराती के प्राध्यापक हो गये। इनकी माता जनका अच्छी कवयित्री थी, जिन्होंने वेदांत सम्बन्धी अनेक पदों की रचना की थी। जयेंद्रराय की रुचि धार्मिक कामों की ओर अधिक थी। आपकी कविताएँ 'झरणा राठा अने उन्हा' में संगृहीत हैं। किन्तु सरल निबंध लिखने में आप अधिक कुशल थे और ऐसे निबंधों के कई संग्रह प्रस्तुत किये, जैसे 'थोडाक छुट्टा फूल', 'पोयणा' आदि। आपकी शैली शुद्ध, मधुर और मृदुलहास्य, प्रखर बुद्धिमत्ता तथा व्यंग्य से युक्त है। आप प्राचीनता के कट्टर पक्षपाती थे और साहित्य, धर्म तथा शिक्षा के विषय में आपने बहुत लिखा है।

सूर्य कृष्ण हरिकृष्ण दवे—(१८८१) ने गुजराती में अनेक पद तथा संस्कृत में कई स्तोत्र लिखे हैं। आप एक प्रमुख वैद्य थे। आपने ऋग्वेद संहिता का निश्चित सस्वर कंठाग्र किया था। भक्तिसाहित्य और वेदान्त के आप अच्छे ज्ञाता थे।

हीरालाल त्रिभुवनदास पारिख—(१८८२) कई वर्षों तक गुजरात-वर्नाक्युलर-सोसाइटी तथा गुजरात-साहित्य-सभा से संबंधित थे। बुद्धिप्रकाश में आप पुस्तकों की समीक्षा करते थे। आपने कई विद्वत्तापूर्ण लेख लिखे, पुस्तकें लिखीं और सम्पादित कीं तथा 'ग्रंथ अने ग्रंथकार माला' तैयार की।

डुंगरसिंह धरमसिंह संपट--(१८८२) ने पत्रों में अध्ययनपूर्ण लेख लिखे, एक यात्रा-पुस्तक लिखी तथा कच्छ के व्यापार और नौका-उद्योग पर प्रकाश डाला।

रणजीतराम वावा भाई मेहता--(१८८२) एक आदर्शवादी व्यक्ति थे, जिन्होंने अनेक साहित्यकारों को प्रोत्साहित किया। आप प्राचीन और अर्वाचीन को जोड़नेवाली कड़ी थे। आपने गुजराती-साहित्य-परिषद की रूपरेखा तैयार की और ठोस आधार पर उसे प्रस्तुत किया। आपने गुजरात की महत्ता की कल्पना की और अनेक कार्यकर्ताओं को योग देने के लिए प्रोत्साहित किया। पत्रों में आपने कई लेख लिखे। उनकी कहानियां तथा नाटक 'साहेबराम आदि कृत्यानो सग्रह' तथा 'रणजीतरामना निबन्धो' मे संग्रहीत है। आपका देहान्त ३६ वर्ष की छोटी अवस्था मे हो गया।

राजेन्द्र सोमनारायण दलाल--(१८८३) ने कुछ उपन्यास और नाटक लिखे है, जैसे 'विपिन', 'मोगल सध्या' आदि।

जगन्नाथ दामोदर त्रिपाठी--(१८८३) जो 'सागर' नाम से विख्यात थे, ने कलापी और अखो के ग्रथो का सम्पादन किया है, जिनमे विद्वत्तापूर्ण प्रस्तावनाएँ लिखी है। आप कवि और दार्शनिक थे। आपने गजले लिखी है और गुजराती गजलो के सग्रह का प्रकाशन 'गुजराती गजलिस्तान' नाम से किया। आपकी गजलो मे सूफीमत और वेदान्त की झलक रहती थी। आपके अनुयायी अधिक सख्या मे थे। उनकी संस्थाओ के लिए आपने कई छोटी-छोटी पुस्तकें लिखी।

मोहनलाल पार्वती शंकर दवे--(१८८३) सूरत मे सस्कृत के प्राध्यापक थ। आपने लैडोर और मैक्डानल के 'संस्कृत-साहित्य का इतिहास' का अनुवाद किया और सी० वी० वैद्य के आलोचनात्मक ग्रंथ 'महाभारत' का भी। आपके साहित्यिक तथा आलोचनात्मक अन्य निबध पुस्तकाकार प्रकाशित है। आपकी शैली ललित मधुर और सस्कृत-बहुल है और आपका विवेचन पाडित्यपूर्ण है।

विनायक नंदशंकर मेहता--(१८८३) ने अपने पिता का जीवनचरित 'नदशकरजीवन चरित्र' नाम से लिखा। आपने एक नाटक 'कोजागरी' और एक पुस्तक 'ग्रामोद्धार' भी लिखी।

चन्द्रशंकर नर्मदा शंकर पंड्या—(१८८४) ने कविताएँ, कहानियाँ, निबन्ध, आलोचनाएँ और जीवनियाँ लिखी हैं। आपकी कविताएँ 'स्नेहांकुर' और 'काव्य कुसुमांजलि' में संगृहीत हैं। आप एक सामाजिक कार्यकर्ता और कुशल वक्ता थे।

ठक्कुर नारायण विसनजी—(१८८६) का उर्दू और बंगाली आदि भाषाओं पर अच्छा अधिकार था। आपने अनेक सामाजिक और ऐतिहासिक उपन्यास लिखे, जो गुजराती के लिए उपहार-ग्रन्थ के अन्तर्गत थे। बाद में आपने 'हिन्दू गौरव ग्रन्थ माला' के लिए लिखा। आपने कहानियाँ, नाटक, कविताएँ और धर्म तथा दर्शन-सम्बन्धी पुस्तकें भी लिखी हैं, जिनमें कुछ मौलिक हैं तथा कुछ अनुवाद। आपकी कृतियों की संख्या बहुत अधिक है। जब से मुन्शीजी ने लिखना आरम्भ किया, तब से आपके उपन्यासों की ख्याति मंद पड़ गयी।

शंकरलाल मगनलाल पंड्या—(१८८४) का दूसरा नाम मणिकान्त था। आपने 'मणिकान्त काव्यमाला' 'गजल मा गीता', 'निर्भोगी निमन्त्र' आदि ग्रन्थ लिखे हैं। आपकी कविताएँ बहुत अधिक प्रसिद्ध हुईं।

गिजुभाई भगवान जी बधेका—(१८८५) नृसिंह प्रसाद भट्ट द्वारा आरम्भ किये हुए 'दक्षिणामूर्ति बालभवन' में सम्मिलित हुए और इसका बाल-भवन बनाया, जो बाल शिक्षा की एक आदर्श संस्था है। बालोपयोगी अनेक पुस्तकें आपने लिखीं। आपने विस्तार, निम्बाभ नेता, सिधिवत् राय तथा गयाजन [illegible] आन्दोलन को अत्यन्त सफल बनाया। आपने 'वार्तामाला', 'बाल साहित्यमाला', 'बालशिक्षा ग्रन्थमाला' के अन्तर्गत पुस्तकें लिखीं तथा बच्चों के लिए अनेक कविताएँ, कहानियाँ आदि लिखीं और अंग्रेजी तथा मराठी की पुस्तकों का अनुवाद किया।

अतिसुखशंकर कमलाशंकर त्रिवेदी—(१८८५) बम्बई में दर्शन शास्त्र तथा गुजराती के प्राध्यापक थे और [illegible] नवसारी के प्रिंसिपल। 'निबंध विहार', 'साहित्य विहार' आदि में आपके निबंध संगृहीत हैं। आपने तत्त्वज्ञान, मनोविज्ञान, शिक्षाशास्त्र आदि विषयों पर अंग्रेजी तथा गुजराती में लिखा है। आपने लघु और बृहद् व्याकरण लिखे तथा [illegible] का 'बृहद्-व्याकरण' का पुनः सम्पादन किया। आपने [illegible] पत्र-पत्रिकाओं में लिखा है और लगभग ७० वर्षों से एक प्रमुख शिक्षा शास्त्री के रूप में हैं।

मोहनलाल दलीचंद देसाई—(१८८५) ने 'जैन गुर्जर कवियो' नामक ग्रंथ के ३ भागो मे अनेक जैन लेखको के ग्रंथो का सम्पादन किया है। साथ ही उनमें अपनी विद्वत्तापूर्ण भूमिकाएँ भी लिखी है। आपने 'जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास' लिखा है, जो तद्विषयक जानकारी के लिए सर्वोत्तम पुस्तक है।

हरसिद्धभाई वजुभाई दिवेटिया—(१८८६) गुजरात विश्वविद्यालय के ९ वर्षो तक उपकुलपति रहे, साथ ही हाईकोर्ट के एक प्रमुख न्यायाधीश भी थे। आपने 'मानसशास्त्र' लिखा है। गीता सम्बन्धी आप की पुस्तक की बडी प्रशसा हुई। अनेक पत्रो मे आपने निबंध लिखे। आप एक महान् शिक्षा-प्रेमी है और आपका सम्बन्ध अनेक संस्थाओं से है।

शंकरप्रसाद छगनलाल रावल—(१८८७) कई वर्षो तक बबई की फ़ार्बस-सभा मे थे। आपने 'भागेलूँ गामडूँ' लिखा, जो गोल्ड स्मिथ के 'डिज़र्टेड विलेज' का अनुवाद है। 'दयाराम जीवन चरित्र' तथा 'प्रबोध बत्तीसी' भी आपकी लिखी पुस्तकें है। आपकी कविताओ का संग्रह 'कथा विहार' मे हुआ है। पत्र-पत्रिकाओ मे आपने विद्वत्तापूर्ण लेख लिखे और क० मा० मुन्शी के सहयोग मे साहित्य-संसद के लिए भी बहुत-कुछ लिखा।

मुनि विद्याविजय जी—(१८८७) एक अच्छे वक्ता थे। आपने जैनमत, भारतीय संस्कृति इतिहास पर कई पुस्तके लिखी है। आपने कई पत्रो का सम्पादन किया है। आपका ऐतिहासिक ग्रंथ 'सूरीश्वर अने सम्राट' बहुत अधिक प्रसिद्ध हुआ और इसकी प्रशसा भी बहुत हुई। इसमे जैनाचार्य हरिविजय सूरि और अकबर की परस्पर घनिष्ठता का वर्णन है। आपने लोगो को समयानुसार चलने की सलाह दी। आप प्रसिद्ध गुरु विजय धर्म सूरि के शिष्य थे।

मूलचन्द्र तुलसीदास तेलीवाला—(१८८७) वेदान्त के वल्लभ मत के अच्छे विद्वान् थे तथा सम्प्रदाय के अनेक संस्कृत ग्रंथ लिखे और सम्पादित किये। उनमे विद्वत्तापूर्ण भूमिकाएँ भी लिखी तथा उनमे से कुछ ग्रंथो के अनुवाद किये।

मुनि जिन विजय जी—(१८८८) गुजरात विद्यापीठ, शान्तिनिकेतन तथा भारतीय विद्या भवन मे थे और अब आप राजस्थान पुरातत्त्व मंदिर में है। आपने प्रसिद्ध सिंघी जैन पुस्तक माला के ग्रंथो का सम्पादन किया है, अनेक पांडुलिपियो का संग्रह किया है तथा प्राकृत, अपभ्रंश, पुरानी गुजराती और

इतिहास तथा जैनमत के आप प्रमुख अधिकारी विद्वान् हैं। भारतीय धर्म तथा शोध के क्षेत्र में आपका सहयोग अनुपम है। आप कई ग्रन्थों के लेखक तथा सम्पादक हैं। आपकी खोजों ने कई विषयों पर नवीन प्रकाश डाला है।

जीवणचन्द साकरचन्द झवेरी—(१८८८) ने 'आनन्द काव्य महोदधि' के ८ खंडों का सम्पादन किया है, जिससे गुजराती में बहुत अधिक जैन-साहित्य का समावेश हो गया है। इस विषय की जानकारी प्राप्त करने के लिए यह श्रेष्ठ ग्रंथ है तथा साहित्यिक दृष्टि से भी उत्तम है।

नृसिंहदास भगवानदास विभाकर—(१८८८) ने रंगमंच के लिए नाटक लिखे। पहला नाटक था 'सिद्धार्थ बुद्ध'। मुंबई-गुजराती-नाटक-मंडली ने उनके ५ नाटक अभिनीत किये तथा लक्ष्मीकान्त-नाटक-समाज ने एक। ये सभी जनप्रिय हुए। 'आत्मनिवेदन' आपके निबंधों का संग्रह है तथा 'निपुण-चन्द्र' आपका उपन्यास है। आप अद्भुत वक्ता भी थे। साहित्य के अति-रिक्त आपकी रुचि अनेक सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक समस्याओं की ओर भी थी। आप एक वकील थे। ३७ वर्ष की छोटी आयु में आपका स्वर्गवास हो गया।

केशवलाल हरगोविन्ददास शेठ—(१८८०) ने 'स्वदेशगीतावलि', 'स्नेह गीत', 'प्रभुचरणे', 'राम अंजलि', 'रासमंजरी' आदि काव्य-संग्रह दिये हैं। इन संग्रहों का अच्छा स्वागत हुआ है। आपने कुछ कहानियाँ भी लिखी हैं।

गोकुलदास द्वारकादास रायचुरा—(१८९०) ने गद्य साहित्य के उत्कर्ष के लिए बहुत बड़ी सेवा की है। अत्यन्त सरल और स्पष्ट भाषा में आपने दोहा [illegible] नाना रीति और प्रभावयुक्त प्राचीन शैली में कहानियाँ लिखीं। आपने मेघाणी के समान ही सौराष्ट्र का कीर्तिगान करके जनता तथा साहित्य-सेवा की है। [illegible], [illegible], सोरठी, काठियावाड़ी [illegible] आपके मुख्य ग्रन्थ हैं।

पंडित बेचरदास जीवराज दोशी—(१८९०) प्राकृत, पाली और आगम के योग्य विद्वान् हैं। गुजरात विद्यापीठ में आप इन विषयों का पठन कराते थे और इन विषयों की ऐतिहासिक एवं समीक्षात्मक शोध की है। आपने कुछ संस्कृत और प्राकृत ग्रंथों का विद्वत्तापूर्ण सम्पादन तथा अनुवाद किया।

भरतराम भानुसुखराम शर्मा—(१८९४) ने पुरातत्त्व-इतिहास आदि विषयों पर कई पुस्तकें लिखी हैं। अपने पिता के साथ आपने कुछ ग्रंथों का सम्पादन किया है तथा गुजराती–अंग्रेजी-कोश तैयार किया है।

डा० चार्लोट क्रौजे—(१८९५) का दूसरा नाम सुभद्रा देवी था। यद्यपि ये जर्मन महिला थी, किन्तु गुजराती भाषा की अच्छी सेवा आपने की है। ये मुनि विद्याविजयजी के साथ ग्वालियर में रहती थी और श्राविका के सब नियमों का पालन करती थी। आप जर्मनी तथा भारत के पत्रों में बहुत अधिक लिखती थी। इन्होंने 'नागकेसरी कथा' का सम्पादन किया है जो मध्ययुग का राजस्थानी और गुजराती मिश्रित ग्रंथ है, साथ ही 'पचाख्यान' का भी सम्पादन किया जो पुरानी गुजराती के 'पचतत्र' का रूपान्तर है। आप की विशेष रुचि जनमत की ओर थी। आपने गुजराती, अंग्रेजी, जर्मन और हिन्दी में कई पुस्तकें लिखी हैं।

डा० रमणलाल कनैयालाल याज्ञिक—(१८९५) ने भारतीय रंगमंच विषय पर लंडन मे थीसिस लिखी। आपने गजेन्द्र बुच के ग्रंथ 'गजेन्द्र मौक्तिको' का सम्पादन किया तथा कई पत्रों मे विद्वत्तापूर्ण लेख लिखे।

हरिहर प्राणशंकर भट्ट—(१८९५) की रुचि उच्च गणित तथा ज्योतिष की ओर बहुत अधिक है। आप कविताएँ भी अच्छी लिखते है। आपने 'गणित की परिभाषा' (हिन्दी) तथा ३ भागो मे 'खगोल गणित' लिखा है। 'हृदयरंग' आप की कविताओं का संग्रह है। भूगोल की कई पुस्तको का आपने अनुवाद भी किया है।

नवलराम जगन्नाथ त्रिवेदी—(१८९५) ने कई आलोचनात्मक ग्रंथ लिखे है, जैसे केटलांक विवेचनो, केतकीना पुष्पो, नवा विवेचनो और कलापी।

व्योमेशचन्द्र जनार्दन पाठक जी—(१८९५) ने कई पत्रो मे अनेक लेख लिखे, प्रिंसिपल ए० के० द्विवेदी के साथ 'काव्य-साहित्य-मीमांसा' लिखा तथा विद्वत्तापूर्ण टिप्पणियो के साथ 'गद्य कुसुम' का सम्पादन किया। ४० वर्ष की आयु मे आप का देहान्त हो गया। इनकी मृत्यु के बाद इनके कुछ ग्रंथों का प्रकाशन इनकी पत्नी जयमन गौरी ने किया, जो एक श्रेष्ठ कवयित्री है और जिन्होंने अच्छी कविताएँ लिखी है।

रजीतलाल हरिलाल पड्या—(१८९६) का दूसरा नाम वाम्मल्न भी है। आपने ११ सर्गोवाली 'रामनी कथा' मे रामायण की कहानी लिखी है तथा आपकी अन्य रचनाएँ 'काम्मलनना काव्यो' में प्रकाशित हैं। इनकी कुछ कवि-ताएँ जैसे, शकुन्तला, जमदग्नि अने रेणुका आदि बहुत प्रशसित हैं।

मजुलाल रणछोडदास मजमुदार—(१८९७) ने प्राचीन तथा मध्य-कालीन गुजराती साहित्य के शोध, सम्पादन, और प्रकाशन की अच्छी सेवा की है। आपकी पत्नी चैतन्यबाला भी अच्छी साहित्य-सेविका थी, जिन्होंने कला और साहित्य पर कई लेख लिखे। मजुलाल ने अनेक ग्रथ लिखे तथा सम्पादित किये, काव्य के रूपो पर आपने एक श्रेष्ठ ग्रथ लिखा है तथा अब गद्य के रूपो पर एक सुन्दर ग्रथ लिख रहे हैं। आपने लोक वार्ता साहित्य पर कई पाडित्य अध्याय लिखे और गुजरात की काल क्रमणिका तैयार की है।

ज्योत्स्ना बहेन शुक्ला—(१८९७) ने दो अच्छे काव्य-सग्रह दिये, मुक्ति-नाास आर जाकाशना फूल। आपने दो मराठी उपन्यासो का अनुवाद भी किया है। आप एक उत्साही और सच्ची समाज-सेविका हैं।

हसाबहेन जीवराज मेहता—(१८९७) ने बालको के लिए सरल और रुचिकर शैली में बाल वार्तावलि, त्रण नाटको तथा बावलाना पराक्रमो आदि लिखा है।

रसिकलाल छोटालाल परीख—(१८९८) मूसीकार नाम से भी प्रसिद्ध, ने भारतीय धर्म पर विद्वतापूर्ण लेख लिखे। ससीकार नाम से आपने कई अच्छी कविताएँ लिखी।

नागरदास ईश्वर भाई पटेल—(१८९८) ने बाल साहित्य का विकास किया, जिसके लिए आपने बालकोपयोगी अच्छी कहानियाँ लिखी, जिनमे कुछ जासूसी कहानिया भी हैं। बच्चो के पत्रो का सम्पादन भी आपने किया।

गगनविहारी लल्लूभाई मेहता—(१९००) अमेरिका में भारत के राज-दूत थे। आप प्राय पत्र-पत्रिकाओ में साहित्यिक लेख लिखा करते हैं। आपने 'आराधना पुष्पा' का प्रकाशन किया है। आप की लेखनी में हास्य का पुट रहता है।

अध्याय २४

उमाशंकर, सुन्दरम् तथा अन्य

उमाशंकर जेठालाल जोशी का जन्म १९११ मे उत्तर गुजरात के प्राचीन ईदर राज्यान्तर्गत बामणा मे हुआ था। आपका उपनाम 'वासुकि' है। १९३१ में प्रकाशित होनेवाले आपके ग्रंथ 'विश्वशान्ति' ने आधुनिक गुजराती काव्य में एक नयी आधारभूमि और नये युग का प्रारंभ किया है। इनके पूर्वयुगीन आचार्य थे दलपतराम, नर्मदाशंकर; तत्पश्चात्, नरसिंहराव, कान्त और नानालाल। इस आधुनिक कविता को जन्म देनेवाली कई बातें थी। दो विश्वयुद्ध, भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन, रूस की क्रान्ति, पश्चिम का नवीन आदर्श—इन बातो ने भारतीयो मे एक जागृति, राष्ट्रप्रेम की भावना, स्वतंत्रता की उत्कट इच्छा, शिक्षा, समानता, सेवा, निर्धनो के प्रति सहानुभूति, मानव-मूल्य तथा आदर्श की भावना उत्पन्न की। विश्वविद्यालय की शिक्षा ने तथा साहित्यकारों की सामग्री ने भी लोगो को देश के दूसरे प्रान्तो के तथा अन्य देशों के साहित्य से परिचित कराया। उच्च परीक्षाओ मे गुजराती भाषा का प्रवेश हो जाने से प्राचीन, मध्यकालीन तथा आधुनिक गुजराती साहित्य के समीक्षात्मक अध्ययन का अवसर प्राप्त हुआ। नानालाल तथा बलवन्तराय ने छन्दों मे अनेक प्रयोग किये। नानालाल ने मधुर-ललित भाषा दी तथा बलवन्तराय ने अर्थघन प्रवाही और सबल शैली। काव्य के लिए विषय-क्षेत्र बड़ा विस्तृत हो गया। साहित्यकारो पर गांधीवाद, समाजवाद और साम्यवाद का प्रभाव पड़ा। लोकसाहित्य से भी काफी प्रेरणा मिली। बंगाली साहित्य के अध्ययन ने तथा शांतिनिकेतन की शिक्षा ने गुजराती कविता में भी बंगाली छंदो का प्रवेश करा दिया। संस्कृत-काव्य की शिष्टता, वैदिक और उपनिषदीय, भाषा का गांभीर्य, नानालाल की आलंकारिक शैली, बलवन्तराय की प्रयोगशीलता, मध्यकालीन काव्य की विरासत—इन सबने आधुनिक गुजराती काव्य के निर्माण मे सहायता दी।

इस काल में अनेक ऊर्मिकाव्यों, खंडकाव्यों, सोनेटों, मुक्तकों, लोक-गीतों, गर्बों, गज़लों और अन्य विविध रूपों की रचना हुई।

यद्यपि 'शेष' नाम से रामनारायण पाठक ने तथा गजेन्द्र बुच ने बहुत पूर्व १९२२ में ही नयी शैली की कविता आरंभ कर दी थी, किन्तु इसका वास्तविक आरंभ उमाशंकर के 'विश्वशान्ति' नामक ग्रंथ में ही समझना चाहिए। बलवन्तराय की शैली में चन्द्रवदन मेहता के 'यमल' में सोनेट मिलते हैं। सुन्दरम्, स्नेहरश्मि, मनसुखलाल, मेघाणी, श्री धराणी तथा अन्य—इनमें से प्रत्येक ने अनेक रूपों, शैलियों और छन्दों में विविध विषयों पर लिखा है।

उमाशंकर का ग्रंथ 'विश्वशान्ति' ६ खंडों में है, जिसमें अहिंसा और शान्ति के लिए किये गये गांधी जी के प्रयत्नों की महिमा गायी गयी है। सम्पूर्ण ग्रंथ आदर्श की भावना से व्याप्त है तथा छन्द में गाम्भीर्य और भव्यता है। इसमें भव्य कल्पना, प्रसाद, माधुर्य, शिष्टता एवं प्रवाह है। इसमें पूर्ववर्ती तथा परवर्ती कवियों के काव्य के सर्वोत्तम तत्त्वों का सम्मिश्रण है। अत्यन्त तीव्र समालोचक नरसिंहराव को भी इस ग्रंथ की प्रशंसा करनी पड़ी।

उमाशंकर गुजरात कालेज अहमदाबाद में पढ़ते थे, किन्तु १९३० में आप असहयोग आन्दोलन में सम्मिलित हो गये। बाद में गुजरात विद्यापीठ में नाम लिखाया और काका साहब कालेलकर के शिष्य हुए। आपने बम्बई के एलफिन्स्टन कालेज में भी शिक्षा पायी, जहां आप नरसिंहराव के विद्यार्थी थे। वहां से आपने प्रथम श्रेणी में गुजराती लेकर एम० ए० पास किया। आप कई संस्थाओं में—अहमदाबाद के बी० जे० विद्याभवन में भी—गुजराती के प्राध्यापक रहे और अब गुजरात-विश्वविद्यालय में गुजराती के डायरेक्टर हैं। आप एक मासिक पत्रिका 'संस्कृति' का सम्पादन भी करते हैं, जो बहुत ही उच्च स्तर की साहित्यिक पत्रिका है। 'विश्वशान्ति' ग्रंथ के प्रकाशित होते ही आपकी ख्याति एक प्रतिभासम्पन्न कवि के रूप में हो गयी, जो सर्वथा उचित है। उस ग्रंथ की भूमिका इनके गुरु काका साहब कालेलकर ने लिखी थी तथा नरसिंहराव ने बड़ी प्रशंसा की थी। साहित्य अकादमी तथा अन्य समितियों में भी आप गुजराती साहित्य के प्रतिनिधि हैं। साहित्य-जगत् में आज आप प्रमुख व्यक्ति हैं। काव्य के अतिरिक्त आपने साहित्य के और भी कई अंगों को पोषित किया है। आपने

कहानी, नाटक, उपन्यास, साहित्यिक आलोचना और निबंध—सभी कुछ लिखा है तथा सम्पादन एवं शोधकार्य भी किया है।

आपके काव्य-ग्रंथ हैं—विश्वशान्ति, गंगोत्री, निशीथ, गुले पोलांड, प्राचीना, आतिथ्य और वसन्तवर्षा। 'गंगोत्री' में गीत और छन्दबद्ध कविताएँ हैं। 'गुले पोलांड' पोलैण्ड के एक कवि की कविताओं का गुजराती सॉनेटों में रूपान्तर है, जिसमें सॉनेट रूप को समझानेवाली विद्वत्तापूर्ण प्रस्तावना भी है। 'निशीथ' में बहुत से मनोहर गीत हैं। इसमें अनेक चिन्तन प्रधान कविताएँ भी हैं। 'प्राचीना' में पौराणिक आख्यानों पर आधारित कविताएँ हैं। उमाशंकर और सुन्दरम् आधुनिक गुजरात के प्रमुख कवि हैं और प्रथम श्रेणी के कवियों में इन्होंने स्थायी स्थान प्राप्त कर लिया है। उमाशंकर में आदर्श, प्रसाद, निर्मलता, माधुर्य, विचार समृद्धि तथा दाक्षिण्य आदि गुण हैं तथा इनकी भाषा में आह्लादकत्व एवं अर्थगौरव है।

उमाशंकर ने 'सापना भारा' तथा 'शहीद' में एकाकी नाटक लिखे हैं, जिनकी तुलना बटुभाई उमरवाडिया तथा चन्द्रवदन मेहता जैसे एकाकी लिखनेवालों के नाटकों से भलीभाँति की जा सकती है। इनकी कहानियाँ 'त्रण अर्धुं बे। अने बीजी वातो, श्रावणी मेलो अन्तराय में संगृहीत हैं। आपने एक उपन्यास भी लिखा है, किन्तु कहानी-उपन्यास के क्षेत्र में आप अन्य प्रमुख लेखकों की समानता नहीं कर सके। आपने अनेक पांडित्यपूर्ण लेख, शोधपूर्ण विस्तृत निबंध तथा साहित्यिक आलोचनाएँ लिखी हैं। 'अखो—एक अध्ययन' और 'पुराणो मा गुजरात' इनके शोधसंबंधी दो विद्वत्ता पूर्ण ग्रंथ हैं। 'समसंवेदन' में इनकी साहित्यिक आलोचनाएँ संगृहीत हैं। आपने क्लान्त कवि के ग्रंथों का सम्पादन स्वतंत्र रूप से तथा रामनारायण के साथ मिलकर आनन्द शंकर ध्रुव के ग्रंथों का सम्पादन किया है, साथ ही अखो के छप्पयों का भी। शाकुन्तल तथा उत्तरराम चरित के बहुत सुन्दर अनुवाद आपने किये, जिनमें पांडित्यपूर्ण भूमिका भी है। 'गोष्ठि' में आपके कुछ साहित्यिक तथा समीक्षात्मक निबंध संगृहीत हैं। 'संस्कृति' में, जिसके आप सम्पादक हैं, बराबर विविध साहित्यिक विषयों पर लिखा करते हैं। साहित्य के विविध रूपों पर आपने लेखनी चलायी है तथा कवि के रूप में एवं एक साहित्यिक के रूप में आपका स्थान सर्वोच्च है।

दक्षिण भारत की यात्रा का वर्णन है। मृच्छकटिक नाटक का आपने भाषान्तर किया है। आपकी कहानियों के संग्रह है—'पियासी हीराकणी अने बीजी वातो', 'खोलकी अने नागरिका' तथा 'उन्नयन'। इन कहानियो मे आपने अनोखे ढग तथा प्रवाहपूर्ण शैली मे नवीन विषयो पर लिखा है। अरविन्द-दर्शन का प्रचार आप 'दक्षिणा' द्वारा करते है, जिसके आप सम्पादक है।

किन्तु सुन्दरम् का सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ 'अर्वाचीन कविता' है, जो साहित्यिक समीक्षा है। इसमे इन्होंने आधुनिक गुजरात के कवियो का स्पष्ट मूल्याकन किया है, साथ ही योग्य कवियो की प्रशसा भी की है। गहन और विस्तृत अध्ययन के बाद यह ग्रंथ लिखा जान पडता है, क्योंकि इसमे विभिन्न कवियों के गुण-दोष का विवेचन बडी सूक्ष्मता से किया गया है और काव्य के अनेक मोड़ो का भी सूक्ष्म दिग्दर्शन है। ऐसे महान् कवि द्वारा लिखित यह ग्रंथ सचमुच अनूठा है। निस्सन्देह इसमे एक दोष भी बताया जाता है कि कुछ छोटे कवियो की प्रशसा आवश्यकता से अधिक की गयी है। तथा कुछ प्रमुख कवियों का गुण घटा कर कहा गया है। फिर भी यह अध्ययनपूर्ण एक ठोस कृति है, जिसमें अत्यन्त निर्भयता से अपना मत व्यक्त किया गया है।

× × ×

चन्द्रवदन चीमनलाल मेहता—(१९०१) का प्रेम आरंभ से ही नाट्य-कला और रगमंच की ओर था। आप एक कवि और नाटककार है। इनके नाटको मे नये विचार और कार्य, सजीव सवाद तथा विषयो और पात्रो की विविधता होती है। आप स्वय एक कुशल अभिनेता है। आपने अनेक नाटको का दिग्दर्शन तथा निदर्शन किया है। अव्यवसायी कलाकारो के रगमच के विकास के लिए आपने बहुत परिश्रम किया है। आपके नाटक रंगमंच की दृष्टि से बहुत अच्छे होते है। आपके कुछ नाटक है—आगगाड़ी, नागा बावा, रमकडानी दुकान, धरा गुर्जरी, प्रेमनु मोती, पाजरापोल, संताकुकडी आदि। आपके नाटक गभीर भी है और सुगम भी। आपकी गणना प्रमुख नाटककारों मे है। 'आगगाड़ी' मे आपने रेल्वे कर्मचारियो के जीवन का यथार्थ चित्रण किया है। नाटक के विविध रूपों पर आपने अपनी कुशलता की परीक्षा की है—जैसे शृंगार रस पूर्ण, ग्राम्य गीतमय, संगीत नाटक, प्रहसन, एक पात्र अभिनीत,

ऐतिहासिक, मूक अभिनय, यथार्थवादी और आदर्शवादी। आपने रतन, इला-काव्यो तथा स्कोरवारी म कविताएँ लिखी हैं। बलवंतराय से प्रभावित होकर सॉनेट लिखने वालो म आप सर्वप्रथम हैं। 'इलाकाव्यो' में आपने भाई-बहन के प्रेम का वर्णन किया है। रतन एक प्रवाही दीर्घकाव्य है। आपकी कविताओ की रचना तो अत्यन्त परिष्कृत है, किंतु भावो की कमी है। 'बाँध गठरिया' और 'छोड गठरिया' मे आपने अपना जीवन चरित लिखा है। तेजपूर्ण, सरल और प्रत्यक्ष शैली के कारण ये दोनो ग्रथ बहुत अधिक पसद किये गये हैं।

ज्योतीन्द्र हरिहर शकर दवे—(१९०१) की ख्याति हास्य एव व्यग्य लेखक की दृष्टि से अधिक है। आपमे सूक्ष्म निरीक्षण, कुशाग्र बुद्धि, गहनता, मर्मभेदी अतर्दृष्टि, रचनात्मकता और विद्या है। हास्य के अतिरिक्त अधिक रूपो में आपने लिखकर हास्य-भावना को जागृत किया। मारी नाव पोथी, रग तरग (भाग १ से ६), हास्यतरग, पानना बीडा, अल्पात्मानु आत्म पुराण, रेतीनी रोटली तथा वीरजल अने वीना इनकी अपनी कृतियाँ हैं और धन सुख-लाल मेहता के साथ मे आपने 'अमे बधा' लिखा। इन सभी में सूक्ष्म तथा बौद्धिक हास्य प्रचुर मात्रा मे है तथा विषय की विविधता भी है। हास्य रस का साहित्य रचने में आप की समता रमणभाई नीलकठ से की जाती है। ज्योतीन्द्र को श्लेष आदि शाब्दिक चमत्कार में बडा आनन्द आता है, अत गभीर तर्क और अनल वाणी का उपयोग अधिक मिलता है। इनका हास्य स्वाभाविक और शिष्ट होता है। आपने साहित्यिक आलोचनाएँ भी लिखी हैं, किन्तु गुजरात की जनता का ध्यान विशेषत अपने छोटे सरल निबधो तथा सूक्ष्म परिहासो द्वारा ही आकर्षित किया। पहले आप सूरत कालेज में गुजराती के प्राध्यापक थे, अब घाटकोपर (बबई) कालेज में हैं। कई वर्षो तक आप बबई सरकार के प्राचीन साहित्य के अनुवादक थे। कुछ समय तक आप क० मा० मुन्शी के 'गुजरात' पत्र के सम्पादक रहे और अब आप 'समर्पण' के सम्पादक हैं, जो भारतीय विद्याभवन का गुजराती मासिक पत्र है।

पूजालाल रणछोडदास दलवाडी—(१९०१) पर विवेकानद, रामकृष्ण और अरविंद का बहुत गहरा प्रभाव रहा है। स्वभावत आपका जीवन एक आश्रम-जीवन रहा और आपने अध्यात्म, योग तथा भक्ति सबधी विषयो पर

चिन्तनपरायण काव्य की रचना की। वर्तमान काल में भक्तिकाव्य का पोषण भोलानाथ, नरसिंह, खबरदार, न्हानालाल, केशवराम हरिराम भट्ट तथा दूसरों के द्वारा हुआ, किन्तु अभी हाल में भक्तिकाव्य का पोषण मुख्यत: पूजालाल के द्वारा तथा अंशत: सुन्दरम् और बेटाई के द्वारा हुआ। पारिजात, ऊर्मिमाला, जपमाला, गीतिका तथा अनेक अनुवाद गुजराती साहित्य को पूजालाल की देन है। प्रमुख आलोचकों ने भावना, कल्पना तथा सहज भक्ति के तत्त्व से युक्त आपकी कविताओं को सराहा है और आज आप सात्त्विक भाव, भक्ति तथा अध्यात्म के प्रमुख कवि हैं।

चन्द्रशंकर प्राणशंकर शुक्ल—(१९०१) ने कुछ विशिष्ट विद्वानों के—जैसे गांधी जी और राधाकृष्णन् आदि—कठिन ग्रंथों का गुजराती में अनुवाद किया है। इनके अनुवाद मूल ग्रंथ-से लगते हैं।

राजेन्द्र गुलाबराम बुच—(१९०२) ने अपनी बी० ए० तथा एम० ए० की परीक्षाओं में संस्कृत तथा पुरानी अंग्रेजी विषय लिये थे और अपनी योग्यता के कारण छात्रवृत्ति प्राप्त की। बाद में आप सूरत कालेज में अंग्रेजी के प्राध्यापक हो गये। संस्कृत, अंग्रेजी तथा गुजराती साहित्य का आपका अध्ययन बहुत विस्तृत था, किन्तु २५ वर्ष की युवावस्था में ही आप का देहान्त हो गया। आप एक होनहार लेखक थे। आपकी मृत्यु के बाद आपकी कविताओं, निबंधों और लेखों का संग्रह 'राजेन्द्र मौक्तिको' नाम से प्रकाशित हुआ, जिसमें रमणलाल याज्ञिक ने भूमिका लिखी है। आपकी कविताएँ आधुनिक गुजराती काव्य-क्षेत्र की निधि है।

करसनदास नरसिंह माणेक—(१९०२) करांची में बी० ए० पास करने के बाद गुजरात विद्यापीठ में पढ़ने के लिए आये। बाद में आपने पत्रकारिता स्वीकार की और जन्मभूमि कार्यालय में आप प्रविष्ट हुए। इनके काव्य-संग्रह हैं—आलबेल, महेताबने मांडवे, कल्याण यात्री तथा वैशंपायननी वाणी। आपकी कविताएँ भावपूर्ण तथा भाषा सशक्त और प्रासादिक है। आपने नव-लिका और नाटिकाएं भी लिखी हैं। आपके व्यंग्यकाव्य बहुत प्रसिद्ध हैं, जो आनन्ददायी सभारंजनी शैली में लिखे हुए हैं।

जयमन गौरी व्योमेशचन्द्र पाठकजी—(१९०२) मोहनलाल दवे की

पुत्री और कमलाशंकर त्रिवेदी की नातिन हैं। आपने बहुत-सी कविताएँ तथा निबंध लिखे हैं और अपने पति रामेशचन्द्र पाठकजी के ग्रंथों का सम्पादन भी किया है। तेजछाया, सूरदास अने तेना काव्यो, गुणसुंदरीनो रास, राम विवेचन आदि इनकी कुछ कृतियां हैं। इनकी बहन चन्द्रिका पाठकजी ने भी कुछ कविताएँ लिखी हैं।

झीणाभाई रतनजी देसाई—(१९०३) का उपनाम 'स्नेहरश्मि' है। आप अहमदाबाद में एक सुव्यवस्थित स्कूल के प्रिंसिपल हैं। आपकी रचित कविताएँ 'अर्घ्य' तथा 'पनघट' में और कहानियाँ 'तूटेला तार', 'गाता आसो-पालव' और 'स्वर्ग अने पृथ्वी' में संगृहीत हैं। इनकी कविताओं में बंगाल की लय और गेयता है। इनकी 'एकोऽहं बहुस्याम्' कविता सर्वश्रेष्ठ मानी जाती है। इनके गीत ऊर्मिप्रधान होते हैं। कहानी लिखने में इन्होंने धूमकेतु का अनुसरण किया है। गुजरात के आप प्रमुख शिक्षा-शास्त्री हैं तथा स्कूल के विद्यार्थियों के लिए विविध विषयों की पाठ्य पुस्तकें भी लिखी हैं।

नगीनदास नारणदास पारेख—(१९०३) ने बंगाली तथा हिन्दी की कई पुस्तकों का अनुवाद गुजराती में किया है। इनके अनूदित ग्रंथों में मूल ग्रंथों के गुण सुरक्षित हैं। चंदन अने बीजी वातो, परिणीता, पल्ली समाज, विप्रदास, चन्द्रनाथ आदि इनके कुछ अनूदित ग्रंथ हैं।

सुन्दरजी गोकुलदास बेटाई—(१९०४) नरसिंह राव के विद्यार्थी थे। अब आप 'गुजराती हिन्दु स्त्री मंडल' नामक संस्था में गुजराती के अध्यापक हैं। ज्योतिरेखा, इन्द्रधनु और विशेषांजलि आपके काव्य-संग्रह हैं। 'गुजराती साहित्य मां सोनेट' नाम का आपने एक विद्वत्तापूर्ण निबंध भी लिखा है। इनकी कविताओं में मार्दव, संयम, चिन्तन और प्रभुप्रेम दिखाई देता है। अध्यात्म तथा भक्ति संबंधी कविता करने में आपकी रुचि अधिक है। आपकी शैली शुद्ध और प्रासादिक है। इनके 'ज्योतिरेखा' संग्रह में नरसिंहराव ने भूमिका लिखी है।

किसनसिंह गोविंद सिंह चावडा—(१९०४) अरविन्दाश्रम में रह चुके हैं। बंगाली, मराठी, हिंदी साहित्य का आपने अच्छा अध्ययन किया है तथा इन भाषाओं की कई पुस्तकों का अनुवाद गुजराती में किया है। इनके आत्म-

चरित्र, गर्विनी हाय तथा जीवननो दर्द (प्रेमचन्दजी की कहानियां), हिन्दी साहित्यनो इतिहास आपके कुछ अनूदित एवं स्वतंत्र ग्रंथ हैं।

इन्दुलाल फूलचन्द गांधी—(१९०५) ने कुछ कविताएँ तथा नाटिकाएँ लिखी हैं। खंडित मूर्तिओ, गलदल. गोरम्भी आदि आपकी कविताओं के संग्रह हैं तथा 'अन्धकार बच्चे' आदि नाटिकाओं के आपके ऊर्मिगीत मंजुल तथा कर्ण-प्रिय होते हैं और आप के नाटकों में दृश्य की अपेक्षा श्राव्य गुण अधिक है।

केशवराम काशीराम शास्त्री—(१९०५) वर्तमान समय के प्रसिद्ध शोध-विद्वान् हैं और विद्वत्ता तथा अध्ययनपूर्ण अनेक ग्रंथ लिखे, जैसे आपणा कवियो, कविचरित. अक्षर अने शब्द, संशोधनने मार्गे, गुजराती साहित्यनु रेखादर्शन अनुशीलन आदि। आपने प्राचीन तथा मध्यकालीन गुजराती साहित्य के कई ग्रंथों का सम्पादन भी किया है। आप कट्टर पुष्टिमार्गी हैं तथा महाप्रभुजी का जीवन चरित एवं कई साम्प्रदायिक ग्रंथ लिखे हैं। आप भाषा शास्त्र, प्राचीन काव्य, पुरातत्व तथा पुष्टि मार्गीय वैष्णव साहित्य के प्रकांड विद्वान् हैं। आपने मौलिक ग्रंथ भी लिखे तथा अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रंथों का अनुवाद एवं सम्पादन भी किया। आपके ग्रंथ 'कविचरित' तथा 'आपणा कविओ' अमूल्य हैं, जिनमें मध्यकालीन कवियों के विषय में अत्यन्त दुर्लभ तथा उपयोगी जानकारी है।

बचुभाई प्रभाशंकर शुक्ल—(१९०५) की शिक्षा शांतिनिकेतन तथा जर्मनी में हुई। आपने भाषा विज्ञान प्रवेशिका तथा कुछ नाटक लिखे हैं। जैसे, शुकशिक्षा, मडूक कुंड, देवयानी आदि। आपने कुछ उपन्यास भी लिखे हैं, जो या तो रूपान्तर है या अनुवाद। टैगोर और बंगला साहित्य का इनपर बहुत प्रभाव है। इनके कुछ मौलिक उपन्यास भी हैं।

यशवन्त सवाईलाल पंड्या—(१९०६) ने एकांकी तथा पूरे नाटक लिखे हैं जैसे पड्दा पाछल, वदनमदिर, अ० सौ० कुमारी, सरतना घोडा तथा बाल-नाटको। इनके संवाद सजीव और विषय नवीन होते हैं। परम्परा-रहित ढंग से नवीन विचार प्रस्तुत करके आपने लोगों का ध्यान आकर्षित किया है।

जयन्तीलाल मफतलाल आचार्य—(१९०६) शांतिनिकेतन में रह चुके हैं और टैगोर तथा अरविंद से काफी प्रभावित हैं। बंगाल के मध्यकालीन संतों के साहित्य का आपने अच्छा अध्ययन किया है और आपकी रुचि रहस्यवाद

की ओर अधिक है। आपने 'मध्यकालीन भारतीय संस्कृति' नामक ग्रंथ तथा रहस्यवाद पर अनेक निबंध लिखे हैं। बंगाली के कई ग्रंथों का आपने या तो अनुवाद या रूपांतर किया है। आपने कुछ बाल गीत और कविताएँ भी लिखी हैं।

अम्बेलाल नारणजी जोशी—(१९०६) ने कहानी-लेखक के रूप में साहित्यिक जीवन आरंभ किया। १९३२ में इन्होंने इंग्लैंड का इतिहास लिखा और १९३६ से प्रमुख वकीलों, उद्योगपतियों और राजनीतिज्ञों की जीवनियाँ आप लिख रहे हैं, जिनमें सर चिमनलाल, भूलाभाई देसाई, होरमस जी एडेन-वाला, सर होमी मेहता, महात्मा गांधी, जवाहरलाल नेहरू, मोरारजी देसाई, वल्लभ भाई पटेल डा० राजेन्द्रप्रसाद, राजगोपालाचारी, पट्टाभि सीतारमैया, टंडनजी तथा अन्य की जीवनियाँ हैं। इनमें से कुछ तो हजार-हजार पृष्ठों से भी अधिक हैं। जिनकी जीवनी इन्होंने लिखी है, उनके लेखों से पर्याप्त उद्धरण जोशीजी ने दिये हैं तथा उनके जीवन को कई दृष्टियों से देखा है। जीवनी लिखने में इन्होंने विशेषता प्राप्त कर ली है और आज ये गुजरात के आदर्श जीवनी-लेखक माने जाते हैं। इनकी शैली शुद्ध, आनन्दप्रद और सरल है, सामग्री बहुमूल्य तथा पूर्ण है। आप बंबई विश्वविद्यालय की सिंडीकेट के सदस्य और प्रमुख शिक्षा-शास्त्री हैं। सामाजिक तथा राजनीतिक समस्याओं की ओर भी आपकी काफी रुचि है। आप एक अच्छे वक्ता भी हैं। जीवनियों के अति-रिक्त भी आपने कई पुस्तकें लिखी हैं और कई पुस्तकें लिखने का संकल्प किया है।

मनसुखलाल मगनलाल झवेरी—(१९०७) पहले गुजराती के प्राध्यापक थे और अब पोरबंदर में एक कालेज के प्रिंसिपल हैं। आप एक प्रमुख कवि साहित्यिक आलोचक हैं। आपके काव्य-संग्रह हैं—आराधना, अभिसार, फूलदोल, चन्द्रदूत तथा आलोचनात्मक पुस्तकें हैं—थोड़ा विवेचन लेखो, पर्य-षणा, गुजराती साहित्यनु रेखा दर्शन आदि। आपने कुछ संस्कृत का रूपांतर भी किया है तथा गुजराती भाषा के कई व्याकरण लिखे हैं, जो बहुत प्रसिद्ध हैं। इनकी शैली शिष्ट एवं माधुर्यमय है और इनकी कविताओं में छंद, भाव, विचार, चिंतन तथा वर्णन की विविधता है। आपने रुचि छंदों में भी कवि-

सरलता से रचना की है और आधुनिक कवियों मे इनका उच्च स्थान है। आलोचना लिखने में आप निर्भीकता से काम लेते है तथा विषय पर बड़ी सूक्ष्मता से विचार करते है।

साराभाई मणिलाल नवाब—(१९०७) चित्रकला तथा स्थापत्य के गहन विद्यार्थी है तथा मन्त्रशास्त्र में भी रुचि रखते है। इन विषयो के कई ग्रंथो का सम्पादन आपने किया है, यथा जैनचित्र कल्पद्रुम, श्री भैरवी, पद्मावती कला आदि, साथ ही जैन धर्म के कुछ ग्रथो एव स्तोत्रो का भी सम्पादन किया है। अत्यन्त धैर्य तथा परिश्रमपूर्वक आपने कला के अनेक दुष्प्राप्य नमूने एकत्र किये हैं।

रमणलाल पीताम्बरदास सोनी—(१९०७) ने बालसाहित्य की कई पुस्तकें लिखी है। आपके युद्धगीतो का सग्रह 'रणनाद' नाम से प्रकाशित हुआ है। आपने कुछ बगाली-पुस्तको का अनुवाद भी किया है।

रमणलाल नरहरलाल वकील—(१९०८) बबई के एक प्रमुख हाई स्कूल के प्रिंसिपल है। आपने 'उरतन्त्र अने नाटचकला' नामक पुस्तक लिखी है, जिसमे नाटक पर एक निबध है। 'प्रणय काव्यो' आपकी कविताओ का सग्रह है। आपकी पत्नी पुष्पा वकील ने भी कुछ कविताएँ लिखी है। कई वर्षो तक रमणलाल ने एक गुजराती मासिक पत्र का सम्पादन भी किया।

हरजीवन सोमैया—(१९०८) ने विभिन्न प्रदेशो की सामाजिक रीतियो, इतिहास, भूगोल तथा विज्ञान को विशेष दृष्टि मे रखकर कई उपन्यास लिखे हैं। पृथ्वीनो पहलो पुत्र, समाजना त्रीजा अंग, पुनरागमन, जीवन नु झेर(जहर) आदि इनके कुछ उपन्यास हैं। बाल-साहित्य की पुस्तके भी आपने लिखी हैं। ३४ वर्ष की अल्पायु मे आपका देहान्त हो गया।

गुलाबदास हरजीवनदास ब्रोकर—(१९०९) ने कहानियाँ और नाटिकाएँ लिखी है। लता अने बीजी वातो, वसुन्धरा अने बीजी वातो, ऊभीवाटे सत्य परवार्यु नथी इनकी कृतियाँ हैं। 'धूम्रसेर' नाटक आपने धनसुखलाल के साथ मिलकर लिखा। आपके पात्र अधिकतर शिष्ट समाज के उच्च मध्यमवर्ग से लिए हुए हैं। पाश्चात्य साहित्य का आपका अध्ययन विस्तृत है। आपने पाश्चात्य लेखको की कुछ उत्तम कहानियो का रूपान्तर किया है, तथा कुछ मौलिक कहानियाँ भी लिखी है। आपका मुख्य विषय बहुत छोटा होता है तथा

सादे, किन्तु प्रभावपूर्ण ढंग से आप मानस-व्यापार पर अधिकार कर लेते हैं। आपका मनोवैज्ञानिक विश्लेषण बड़ा गहन और सूक्ष्म होता है तथा कहानी-क्षेत्र में आपको बहुत बड़ी सफलता मिली है। आपने अनेक विद्वत्तापूर्ण तथा आलोचनात्मक निबंध भी लिखे हैं। आज ये गुजरात के प्रमुख कहानीकार हैं। आपकी उत्तम कहानियों का संग्रह पृथक् रूप में है। इनका रचना-कौशल बड़ा कलात्मक होता है और बड़ी सफलता तथा प्रभावपूर्णता के साथ ये अपने पात्रों में मंगल तत्त्व का समावेश कर देते हैं।

जयन्तकृष्ण हरिकृष्ण दवे—(१९०९) एक प्रतिभाशाली लेखक, प्रसिद्ध विद्वान् तथा बंबई-बार के प्रमुख एडवोकेट हैं। आपका विद्यार्थी-जीवन बहुत ही उज्ज्वल था, जिसमें आपने अनेक महत्त्वपूर्ण पुरस्कार जीते। श्री क० मा० मुन्शी के अधीन रहकर आपने वैधानिक शिक्षण प्राप्त किया। कुछ समय तक आप राजस्थान के बांसवाड़ा राज्य में चीफ जस्टिस थे। संस्कृत और धर्मशास्त्र विषयक इनके पांडित्य ने हिन्दू-विधान में इन्हें प्रामाणिक व्यक्तित्व प्रदान किया है। पृथ्वीचंद्र के धर्मशास्त्र विषयक पांडित्यपूर्ण ग्रंथ 'व्यवहार प्रकाश' का सम्पादन इन्होंने समीक्षात्मक ढंग से किया है। वर्तमान समय में आप बंबई-विश्वविद्यालय की सिनेट तथा बनारस-संस्कृत-विश्वविद्यालय के सदस्य हैं तथा हिन्दू-विधान के आधे समय के प्राध्यापक हैं। संस्कृत की सेवा के लिए आप सदा तत्पर रहते हैं। भारत संस्कृत-आयोग की सिफारिश पर भारत सरकार द्वारा स्थापित 'दि सेंट्रल बोर्ड आफ संस्कृत स्टडीज' के आप सदस्य हैं और संस्कृत आयोग के भी सदस्य थे। 'संस्कृत विश्व-परिषद्' के आप इसके जन्म से ही मानद प्रधान मंत्री हैं। आप भारतीय विद्या भवन के मानद डायरेक्टर तथा 'भवन्स जर्नल', 'भारती' एवं 'भारतीयविद्या' पत्रों के प्रबंध सम्पादक हैं। १२ वर्षों से अधिक समय तक आप गुजराती साहित्य-परिषद के मंत्री रहे हैं।" (भवन्स बुक युनिवर्सिटी) भारत के तीर्थों तथा मुख्य स्थानों पर इनके लेखों का संग्रह 'इम्मार्टल इंडिया' (अमर भारत) नाम से ४ भागों में हुआ है। इन निबंधों को बहुत पसंद किया गया तथा चारों भागों के कई संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं, साथ ही कई विश्वविद्यालयों में भारतीय संस्कृति विषय की पाठ्यपुस्तकों के रूप में स्वीकृत हुए हैं। वैदिक, पौराणिक तथा महाकाव्य संबंधी साहित्य

ने, ऐतिहासिक घटनाओं के विवरण ने तथा धार्मिक आन्दोलनो के वर्णन ने इन पुस्तको को बहुत मूल्यवान् तथा पाडित्यपूर्ण बना दिया है। इन निबंधों मे से कई का अनुवाद भारत की विभिन्न भाषाओ मे हुआ है। आपने साहित्यिक तथा दार्शनिक विषयो पर भी अनेक विद्वत्तापूर्ण निबंध लिखे है। गुजराती-साहित्य-परिषद के प्रधान मत्री की हैसियत मे आपने 'गुजराती साहित्यनो सुवर्ण महोत्सव' तथा 'अर्वाचीन साहित्य प्रवाह' प्रकाशित किया है। सोमनाथ ज्योतिर्लिंग प्रतिष्ठा के अवसर पर आपने 'सोमस्तवराज' की रचना की तथा अन्य अनेक सस्कृत-काव्य रचे। विभिन्न पत्रो मे प्रकाशित आपके गुजराती लेखों तथा रेडियो पर दिये हुए भाषणो की सख्या बहुत अधिक है और विषय-क्षेत्र भी विस्तृत है। द्वारका पीठ शकराचार्य द्वारा आपको 'विद्यावाचस्पति' की उपाधि प्राप्त हुई।

जयन्ती घेलाभाई दलाल—(१९०९) की रुचि रगमंच की ओर अधिक है और आपने सामाजिक नाटक लिखे है, जैसे जवनिका, बीजो प्रवेश, त्रीजो प्रवेश आदि। आपके पिता घेलाभाई देशी नाटक कंपनी का सचालन कर रहे थे। अत नाटको की ओर जयन्ती दलाल की रुचि उनके पिता की देन है। नाटक सम्बन्धी आपका अध्ययन और अनुभव बहुत अधिक है। आपके सवाद सजीव, तर्कयुक्त और व्यंग्यात्मक होते है। मोयनु नाकु, बस कन्डक्टर और अवतरण आपके नाटको मे से है। आपने कुछ रेडियो-रूपक और दूसरे नाटक भी लिखे है। आपने कुछ ऐसे सुगम और सजीव एकाकी लिखे है, जो रेडियो में प्रस्तुत करने के लिए बहुत उपयुक्त है। 'पोरट्रेट आफ ए रिबेल फादर' का अनुवाद आपने 'बलवाखोर पितानी तसवीर' नाम से किया है तथा टालस्टाय के महान् उपन्यास 'वार ऐंड पीस' का रूपान्तर 'पादरनां तीरथ' मे किया है। इनकी अन्य पुस्तके है 'पगदिवानी पछी तेर्था', 'धीमू अने विभा' आदि।

कान्तिलाल बलदेवराम व्यास—(१९१०) पहले एलफिन्स्टन कालेज, बबई मे गुजराती के प्राध्यापक थे और अब गुजरात मे एक कालेज के प्रिसपल है। आप प्राचीन भारतीय सस्कृति और साहित्य, प्राचीन और मध्यकालीन गुजराती साहित्य, दर्शन और अलकार शास्त्र के विशेषज्ञ है। 'वसन्तविलास' का सम्पादन बड़ी कुशलता से आपने किया है और 'गुजराती

भाषानु व्याकरण अने शुद्ध लेखन' तथा 'भाषावृत्त अने अलंकार' जैसी स्वतन्त्र पुस्तकें भी लिखी हैं। आपने विद्वत्तापूर्ण कुछ निबंध भी लिखे हैं, जिनके लिए आपको पुरस्कार मिला है, साथ ही एक प्रमुख भाषाशास्त्री और शोध विद्वान् के रूप में महान् ख्याति भी आपको प्राप्त हुई है।

मुरलीधर रमाशंकर ठाकुर—(१९१०) गुजराती के प्राध्यापक हैं। आपने अनेक कविताओं की रचना की है, जो 'सफर अने बीजां काव्यो' में संगृहीत है। 'मेलो' आपके बाल-गीतों का संग्रह है।

कृष्णलाल जेठालाल श्रीधराणी—(१९११) दक्षिणामूर्ति संस्था में पढ़ते थे, जहाँ इनके अध्यापक थे नाना भाई और हरभाई। बाद में आपने गुजरात विद्यापीठ में शिक्षा पायी, जहाँ महात्माजी तथा काकासाहब कालेलकर का इनपर बहुत प्रभाव पड़ा। आपने एकांकी नाटक लिखे हैं, जिनमें टैगोर का रहस्यवादी पुट और काव्यमय वातावरण है। 'वडलो' और 'पीळां पत्तां' (बाल-नाटक), 'पियो गोरी' (सामाजिक नाटक), 'जुवान ज्योत', 'मोरना इंडां' तथा 'पद्मिनी' आदि आपके कुछ नाटक हैं। 'मोरना इंडा' आपने इब्सन की शैली में लिखा है। 'कोडिया' आपका काव्य-संग्रह है, जिसमें कुछ भावात्मक गीत हैं।

मोहनलाल तुलसीदास मेहता—(१९११) 'सोपान' नाम से अधिक प्रसिद्ध हैं। आप कई वर्षों तक 'जन्मभूमि' के सम्पादक थे और कुछ दूसरे पत्रों का भी सम्पादन आपने किया। आपने कई उपन्यास और कहानियाँ लिखी हैं। गांधी जी तथा राष्ट्रीय आन्दोलन से आपको काफी प्रेरणा मिली है। इनकी पत्नी नानु बहेन भी एक अच्छी लेखिका हैं। 'सोपान' की लिखी पुस्तकें बहुत हैं, जिनमें जनरली जाना, मजीवनो, प्रायश्चित, मानवतानां जळ, लग्न, एक समस्या, विदाय आदि सम्मिलित हैं। आपने मानव प्रकृति का अच्छा अध्ययन किया था और बहुत अधिक परिमाण में लिखा है।

दुर्गेश तुलजाशंकर शुक्ल—(१९११) ने कहानियाँ, उपन्यासों, नाटिकाओं की रचना की है और कविताओं का एक संग्रह प्रस्तुत किया है। दुर्गेश ने अपनी कहानियों और नाटिकाओं में समाज के निम्नवर्ग का चित्रण किया है। 'पृथ्वीनां आंसु' इनके प्रगतिशील तथा यथार्थवादी दोनों प्रकार के नाटकों का

संग्रह हे। 'पंडना पतिका', ''हैये भार', 'मेघली राते' इनके कुछ अन्य एकांकी नाटक हैं। 'उत्मबिका' मे स्कूली लडको के लिए लिखी हुई नाटिकाएँ हैं, जो वहुत प्रसिद्ध हुई हैं। 'अकृति' में डा० अवमरे की ३० मराठी कविताओं का पद्यानुवाद है। इनका 'मुन्दरवन' एक प्रसिद्ध सामाजिक प्रहसन हे, जो अंग्रेजी का रूपान्तर है। पूजाना फूले, छाया, पल्लव आदि इनकी कहानिया है। पात्रों के मनोवैज्ञानिक विश्लेपण मे इनका मन वहुत लगता है।

अनन्तराम मणिशंकर रावल—(१९१२) गुजरात कालेज मे गुजराती के प्राध्यापक तथा वाद मे एक कालेज के प्रिंसिपल थे। आपने साहित्यिक आलोचना सवंधी कई पुस्तके लिखी है, जैसे राईनो पर्वतनु विवेचन, साहित्य विहार, गंधाक्षत, गुजराती साहित्य, 'कलापी' नो काव्य कलाप, प्रेमानद कृत नलाख्यान आदि। एक साहित्य-आलोचक के रूप मे आप अपने विपय का अव्ययन वहुत विस्तार और सूक्ष्मता से करते है तथा इतनी जल्दवाजी कभी नही करते कि कोई महत्त्वपूर्ण वात छूट जाय। यद्यपि आलोच्य लेखक के प्रति आपकी सहानुभूति रहती है, किन्तु कृति के दोपो पर दृष्टि गये विना नही रहती। गंधाक्षत और साहित्य विहार मे इनके कुछ अध्ययनपूर्ण विवेचन हैं, जो न्हानालाल, शामल, गुजराती नाटक साहित्य के विकास तथा अर्वाचीन साहित्य आदि पर अच्छा, प्रकाग डालते है। आपने गुजराती साहित्य के मध्यकालीन गुजराती साहित्य का वहुत सुन्दर इतिहास लिखा है। आपने कुछ श्रेप्ठ ग्रथो का सम्पादन भी किया है, जिनमे विद्वत्तापूर्ण भूमिकाएँ लिखी है। इनके विवेचन विस्तृत, सूचनाओ से पूर्ण, निप्पक्ष और सहानुभूतिपूर्ण मूल्यांकनवाले होते है, इनमे समभाव रहता है। ये गुजरात के प्रमुख आलोचक हैं और यद्यपि इनकी आलोचना ठोस, पाडित्य पूर्ण और सूक्ष्म होती है, किन्तु आक्रमणात्मक नही होती।

पन्नालाल न्हानालाल पटेल—(१९१२) सावरकाठा के एक गाव के है। इनके मित्रो ने 'प्रस्थान' और 'फूलछांव' आदि पत्रो मे लिखने, के लिए प्रोत्साहित किया और इन्होने ग्राम-जीवन का चित्रण करने वाले उपन्यास लिखना आरभ किया। चल-चित्रो की कहानियाँ भी आपने लिखी, किन्तु वाद मे इसे छोड़ दिया और उपन्यास ही लिखते रहे। ग्राम निवासी होने के कारण ग्राम्य जीवन का आपको प्रत्यक्ष अनुभव था; एक तो इस कारण, दूसरे कहानीकार की विलक्षण

प्रतिभा तथा स्पष्ट परिस्थितियों और नाना प्रकार के वास्तविक पात्रों के निर्माण की शक्ति होने के कारण शीघ्र ही ये प्रकाश में आए। प्रमुख उपन्यासकार बन गये। 'मळेला जीव' आपका प्रथम उपन्यास था, जिसमें ग्रामीणों के वस्तुतानतर प्रेम की कहानी वर्णित है। 'मानवीनी भवाई' आपका सर्वोत्तम उपन्यास है, जिसमें दुष्काल के समय गरीब ग्रामीणों की यातनाओं का वर्णन है। भीरु साथी, सुरभी यौवन, पाछले बारणे, वळामणां, वैरनां वाळे इनके कुछ अन्य उपन्यास हैं। ग्राम्य जीवन के चित्रण करने में जितनी सफलता आपको मिली है, उतनी सफलता नगर-जीवन के चित्रण करने में नहीं मिली। लोक भाषा तथा ग्रामीण मुहावरों के प्रयोग से स्वाभाविकता और बढ़ गयी है। जीवादोर, सुख दुःखना साथी, पानेतर ना रंग, वात्रकना काठे में आपकी कहानियाँ तथा जमाईराज में नाटक संगृहीत हैं। वर्तमान समय में गुजरात के आप प्रमुख उपन्यासकार हैं।

इन्द्रवदन उमियाशंकर वसावडा—(१९१७) यद्यपि जूनागढ़ के थे, किन्तु आपका बचपन राजस्थान में बीता, क्योंकि आपके पिता कोटा में नौकरी करते थे। आपने हिन्दी और गुजराती दोनों भाषाओं में लिखा है। 'नामू नगी' और 'घर की राह' आपके हिन्दी उपन्यास हैं, जिनकी प्रशंसा प्रेमचन्द जी ने भी की थी। 'घर की राह' का अनुवाद बाद में गुजराती में भी हुआ। गुजराती में आपने शमणां, रंगाना नीर, सदा, प्रमाण आदि उपन्यास तथा कुछ कहानियाँ लिखीं। आपके विषय, वर्णन, संवाद आदि आकर्षक होते हैं। आपके उपन्यास गुजरात में बहुत प्रसिद्ध हैं।

प्रह्लाद जेठालाल पारेख—(१९१२) की कविताओं के संग्रह हैं बारी बहार और सरवाणी। आपकी शिक्षा दक्षिणामूर्ति भवन तथा शान्तिनिकेतन में हुई और शिक्षा-क्षेत्र की ओर चले गये।

नाथालाल भाणजी दवे—(१९१२) का काव्य-संग्रह 'कालिन्दी' है और 'गद्रा' तथा 'नयु जीवन' आपके कहानी-संग्रह हैं। 'विराट जागे' नाम का एक नाटक भी आपने लिखा है। टगोर के रहस्यवाद से आपको प्रेरणा प्राप्त हुई और आपने प्राकृतिक कविताएँ लिखीं।

मनुभाई राजाराम पचोली—(१९१४) 'दर्शक' उपनाम से लिखते हैं

और सौराष्ट्र के एक दक्षिणामूर्ति स्कूल में काम करते हैं। गांधीजी, स्वामी आनंद, नाना भाई, रविशंकर महाराज तथा मेघाणी से आप बहुत प्रभावित हैं। आपने सरल शैली में कई उपन्यास लिखे हैं, जैसे बन्धन अने मुक्ति, प्रेम अने पूजा, बन्दीघर, दीप निर्वाण, तथा तेर नो पीनो छे जाणी जाणी। आपके उपन्यासों में बड़ी मार्मिक परिस्थितियां होती हैं और चरित्र-चित्रण अत्यन्त प्रभावोत्पादक होता है। आप इतिहास और संस्कृति के अच्छे विद्वान् हैं। आपका गंभीर चिंतन न केवल आपके उपन्यासों में, वरन् 'आपणो वैभव अने वारसो' तथा 'त्रिवेणी तीर्थ' जैसी पुस्तकों में भी स्पष्ट है। आपका प्रथम उपन्यास 'जलियावाला' है, जो १९३५ में प्रकाशित हुआ था।

मुकुन्दराम विजयशंकर पट्टणी—(१९१४) पाराशर्य उपनाम से लिखते हैं और अब तक दो काव्य-संग्रह प्रस्तुत कर चुके हैं—'अर्चन' और 'संसृति'।

प्रेमशंकर हरिलाल भट्ट—(१९१५) गुजराती के प्राध्यापक थे और अब प्रिंसिपल हैं। आपने कविताएँ और साहित्यिक आलोचनाएँ लिखी हैं। 'चयनिका' और 'धरित्री' इनके काव्य-संग्रह हैं। इनकी कविता में गेयता-तत्त्व होता है और भाषा प्रासादिक होती है। इनकी समीक्षाओं का संग्रह 'मधुपर्क' है। 'जीवनरनी बाजी' नाम का एक उपन्यास भी आपने लिखा है।

ईश्वर भाई मोती भाई पटेल—(१९१६) 'ईश्वर पेटलीकर' के नाम से अधिक प्रसिद्ध हैं। आप का जन्म पेटली गांव में हुआ था और एक गाव में अध्यापक के रूप में आपने जीवन आरंभ किया। 'प्रजाबन्धु' के चुनीलाल शाह के सम्पर्क में आये और धारावाही रूप में अपना प्रथम उपन्यास 'जनमटीप' लिखने लगे जो बहुत पसन्द किया गया। एक के बाद एक आपने कई पत्रों का सम्पादन किया, जैसे 'पाटीदार', 'आर्यप्रकाश', 'रेखा' आदि। इनके उपन्यासों में हम प्रभावपूर्ण चरित्र-चित्रण, देहातियों की मुहावरेदार सबल भाषा, वास्तविक परिस्थितियां, आकर्षक कथावस्तु और तत्कालीन समाज के नर-नारियों का मानसिक संघर्ष पाते हैं। इनके दूसरे उपन्यास हैं—लख्या लेख, धरतीनो अवतार, पखीनो मेलो, पाताल कुवो, कलियुग, हैयानेगडी, तरणाओथे डूंगर आदि। आपकी कहानियों के संग्रह हैं—ताणा वाणा, पटलाईना पेच, पारसमणि, नवलिकाओ आदि। रमणलाल देसाई का आप पर बहुत प्रभाव है। समाज-

सुधारक की दृष्टि से आप अनेक सामाजिक समस्याओं पर विचार करते हैं। आप गुजरात के प्रमुख उपन्यासकारों में से हैं।

भोगीलाल जयचंद साडेसरा—(१९१७) ने प्राचीन तथा मध्यकालीन गुजराती साहित्य के अनेक ग्रंथों का सम्पादन किया है और भाषा विज्ञान, भारतीय धर्म संबंधी शोध तथा जैन-साहित्य के अच्छे विद्वान् हैं।

हरिवल्लभ चुन्नीलाल भायाणी—भाषाविज्ञान, प्राचीन तथा मध्यकालीन गुजराती साहित्य, अपभ्रंश तथा प्राकृत साहित्य के प्रकांड पंडित हैं। आपने 'वाग्व्यापार' नामक ग्रंथ में भाषाविज्ञान संबंधी अपने लेखों को प्रकाशित किया है और भारतीय विद्याभवन से कई ग्रंथों का सम्पादन किया है, जिनमें सिंघी-जैनमाला भी सम्मिलित है।

चुनीलाल कालीदास मडिया—(१९२२) ने ग्राम्य जीवन चित्रित करने-वाले उपन्यासों से साहित्यिक जीवन आरंभ किया। आपने घघवतो पूर तथा पत्रजा आदि में कहानियां लिखीं। 'जय गिरनार' में आपने प्रवास वर्णन लिखा और 'हु अने मारी वहू' नाटक। 'व्याजनो वारस', 'पावक ज्वाला' और 'ऊंधन जाछा पडया' मडिया के सर्वश्रेष्ठ उपन्यास माने जाते हैं, जिनकी बड़ी प्रशंसा हुई है। इनमें शक्तिमती लोकभाषा और सौराष्ट्र का वातावरण है। कहानी-लेखन में भी इन्हें काफी सफलता मिली है। केवल ग्राम जीवन ही नहीं, वरन् नागरिक जीवन को चित्रित करने की भी चेष्टा आपने की है। इब्सन, चेखोव, ओनील और सारोयान आपके प्रिय लेखक हैं और इन सबका प्रभाव आपकी कृतियों में यत्र-तत्र स्पष्ट है। साहित्य के विविध रूपों में सफलतापूर्वक आपने सर्जन किया है। आप उच्चकोटि के साहित्यकार हैं विविध रूपों वाले अनेक साहित्य-ग्रंथ अभी और रचने की आपकी अभिलाषा है।

आधुनिकतम काव्य जगत् का झुकाव अतिशय अर्थघनता, अगेयता, यथार्थ-वाद और प्रवाहिता के विरुद्ध है। इसकी प्रतिक्रिया स्वरूप हम फिर गेयता, छंद तथा गीत-माधुर्य, छन्द-बंधन, लोकप्रिय होने का प्रयास, सभारंजनत्व का तत्व, कोमल-कांत पदावली और मधुर ध्वनि से गायन आदि पाते हैं। राजेन्द्र-शाह, निरंजन भगत, वेणीभाई पुरोहित, अविनाश व्यास, पिनाकिन् ठाकोर, उशनस्, हसित बूच, जयन्त पाठक, अनामी प्रजाराम तथा अन्य अनेक कवियों

मे उपर्युक्त विशेषताएँ पायी जाती है। इस विकास को मुशायरा, कवि-सम्मेलन, रेडियो-कार्यक्रम तथा नृत्यनाटिकाओ आदि से काफी प्रोत्साहन मिला है। शयदा, घायल, रादेरी आदि मे गजल-शैली भी गुजीवित है।

× × ×

उपर्युक्त कवि तथा लेखको के अतिरिक्त और भी बहुत-से साहित्य सर्जक है, जिन्होने अपने-अपने ढंग से साहित्य के विविध क्षेत्रों मे योग दिया है। उनके नाम इस प्रकार है :—

काव्य—जनार्दन प्रभास्कर, देशल जी परमार, जहांगीर माणिकजी देसाई, भानुशंकर व्यास (बादरायण), कोलक, रामप्रसाद शुक्ल, हरिश्चन्द्र भट्ट, रमणलाल देसाई, पतील, अमीदास काणकिया, रतुभाई देसाई, प्रीतम दास मजमूदार, मूलजी भाई शाह, दुला भगत, स्वप्नस्थ, रमणीक अरालवाला, प्रबोधभट्ट, गोविन्द स्वामी, प्रजाराम रावल, सुरेश गाधी, मकरन्द दवे, भोगीलाल गाधी, निरंजन भगत, तनसुख भट्ट, राजेन्द्र शाह, सुधांशु, जेठालाल त्रिवेदी, मनुहदवे, वेणीभाई पुरोहित, प्रशान्त, अविनाश व्यास, जयन्त पाठक, अनामी, मोहिनीचन्द्र, उशनस्, नन्दकुमार पाठक, रतिलाल छाया, हसित बुच, जगभाई पटेल, प्रियकान्त मणियार, पिनाकिन, ठाकोर, गोविन्द ह० पटेल, उपेन्द्र पड्या, गीता कापडिया, गनी दहीवाला, रमेश जानी, बकुलेश जोशीपुरा, चम्पकलाल व्यास, चन्द्रिका पाठक जी तथा अन्य।

गजल—शयदा, अमृत घायल, असीम रादेरी, बरकत वीराणी, गनी, अमीन आजाद, नसीम आबुवाला, पतिल, जमीयत पंड्या, अकबर, माणेक, वेणीभाई पुरोहित, बालमुकुन्द तथा अन्य।

उपन्यास—जयभिक्खु, कृष्णप्रसाद भट्ट, रामचन्द्र ठाकुर, राजेन्द्र सोमनारायण, चन्दुलाल व्यास, धनशंकर त्रिपाठी, मोहन लाल धामी, वचुभाई शुक्ल, रामनारायण नागरदास पाठक, पुष्कर चन्दरवाकर, निरंजन वर्मा, जयमल्ल परमार, सोपान, गोविन्दभाई अमीन, विनोदिनी नीलकठ, यशोधर मेहता, नीरुदेसाई, बीरजलाल, धनजीभाई शाह, प्रेमशंकर ह० भट्ट, प्रबोध मेहता, उछरंगराम् ओझा, रघुनाथ कदम, चंदुलाल दलाल, प्राणलाल मुनशी, दिलहर भचेच तथा अन्य।

नाटक—जयन्ती दलाल के अतिरिक्त यशोधर मेहता ने भी अनेक प्रकार के नाटक लिखे हैं, जैसे रणछाडलाल अने बीजा नाटको, जिनमें इन्होंने पाच महापुरुषों के चरित्र सशक्त-प्रभावपूर्ण ढंग, उत्तम चरित्र चित्रण तथा सजीव संवादों द्वारा प्रस्तुत किये हैं। इनके कुछ प्रहसन भी हैं, जैसे 'घेरो वगड' और 'सवो-जसो' आदि। शिवकुमार जोशी ने भी कई सामाजिक नाटक लिखे हैं, जिनमें मानसिक संघर्ष तथा पात्रों की विविधता है। ये नाटक शिष्ट तथा रंगमंच के लिए बहुत ही उपयुक्त हैं। आपने कई रेडियो-रूपक भी लिखे हैं। 'सुमगला', 'अधारा उचेलो' आपके रूवे नाटक हैं। डाह्याभाई घोल्शाजी, मूलशंकर मूलाणी, प्रागजी डोसा, जगवल ठाकोर, फीरोज आदिया, अनन्त आचार्य, भगवानदास भूखणवाला, अदी मर्जबान, गजेन्द्रशंकर पड्या, इन्दुलाल याज्ञिक, भास्कर व्होरा, गोविन्द भाई अमीन तथा अन्य नाटककार भी हैं। अन्तर्महाविद्यालय नाटक प्रतियोगिताओं, रेडियो-रूपकों तथा सरकार द्वारा आयोजित प्रतियोगिताओं ने नाटक के विकास में बड़ा योग दिया है।

कहानी—पुष्कर चन्दरवाकर, भवानी शंकर व्यास, उमेदभाई, रमणिकलाल जयचन्द दलाल, मुरली ठाकुर, चन्दुलाल पटेल, रमणलाल सोनी, पूर्णानन्द भट्ट, जयन्ती खत्री, अशोक, हृप, ब्रजलाल मेघाणी, सत्यम्, चकुलेश, सुरेन्द्र त्रिपाठी, देवशंकर महता, स्वप्नस्थ, कुन्दनिका कापडिया, डाह्याभाई पटेल, विनोदिनी नीलकंठ तथा अन्य।

महिला साहित्यकार—दीपकला देसाई, जमना दूरवाल, श्रीमती मुन्शी, सुमति लल्लूभाई शामलदास, जयमनगौरी पाठकजी, विद्याबहेन नीलकंठ, शारदाबहेन मेहता, विजयालक्ष्मी त्रिवेदी, सरोजिनी महता, ज्योत्स्ना शुक्ल, ताराबहेन मोडक, श्रीमती चार्टिट, हीराबहेन पाठक, विनोदिनी नीलकंठ, चैतन्यबाला मजमूदार—हंसाबहेन मेहता, कुंदनिका कापडिया, गीताकापडिया चन्द्रिका पाठकजी, धीरुबहेन पटेल, लाभुबहेन मेहता, रम्भाबहेन गाधी, धैर्यबाला वोरा, सरला जगमोहन, कलावती वहाग, प्रेमलीला मेहता तथा अन्य।

हास्य-साहित्य—दलपतराम, नवलराम, रमणभाई, नरसिंहराव, क० मा० मुन्शी, धनसुखलाल, ज्योतीन्द्र दवे, गगनबिहारी मेहता, विनोद वकील, औल्पिया

अध्याय २५

व्याकरण तथा भाषा-विज्ञान आदि

पाणिनि ने अनेक व्याकरण-शास्त्रियों का उल्लेख किया है, जिनमें १२ के नाम 'अष्टाध्यायी' में है। बोपदेव ने इन्द्र-चन्द्र तथा अन्य छ का उल्लेख किया है। कात्यायन, पतञ्जलि तथा दूसरो ने पाणिनि की परंपरा को ही विकसित किया। इन सस्कृत-व्याकरणाचार्यों के अतिरिक्त प्राकृत में भी कई व्याकरण-ग्रंथ पाये जाते है, जिनमे वररुचि, चड, हेमचन्द्र, त्रिविक्रम तथा लक्ष्मीधर के व्याकरण प्रमुख है। प्रथम भाग के प्रथम अध्याय मे हम यह बता चुके है कि किस प्रकार अपभ्रश से गुजराती का विकास हुआ। हेमचन्द्र के व्याकरण 'सिद्धहैम' के अंतिम अध्याय मे अपभ्रश-व्याकरण का वर्णन है।

आधुनिक काल मे १९ वी शताब्दी के आरभ से ही अनेक विद्वानो ने गुजराती भाषा का व्याकरण लिखा है। ड्रमैंड (१८०८), फार्बस (१८२९), गगाधर (१८४०), राम मे (१८४२), बालफोर (१८४४), क्लार्कसन (१८४७), लेकी (१८५७) नर्मदाशंकर (१८५६), होप (१८५९), भरुचा (१८५९), शापुन्जी (१८६७), टेलर (१८६७), हरगोविद दास और लालशंकर (१८६९) महीपतराम (१८८०), मचेर शाह पालनजी के कोवाद, टिसडल (१८९२), वेस्ट, तथा कुछ अन्य।

राय बहादुर कमलाशंकर प्राण शकर त्रिवेदी का 'बृहद् व्याकरण' १९१९ प्रकाशित हुआ। इन्होने १९१६ मे 'लघु व्याकरण' तथा १९१७ मे 'मध्य व्याकरण' भी प्रकाशित किये थे। आप सस्कृत के प्रकांड विद्वान्, महाभाष्य तथा अन्य ग्रथो के आरूढ़ पडित और प्रमुख वैयाकरण थे। राजकीय पुस्तक माला के अन्तर्गत आपने 'षड्भाषा चन्द्रिका' तथा अन्य ग्रथो का सम्पादन भी किया। आपके विचारो से विशेषकर व्युत्पत्ति विभाग—यद्यपि कुछ विद्वान् सहमत नही रहे, तथापि आपके पाडित्यपूर्ण विवेचन बहुत उपयोगी सिद्ध हुए

हैं और आज भी वहाँ विश्वविद्यालयों में गुजराती के बी० ए० तथा एम० ए० के विद्यार्थियों के लिये 'बृहद् व्याकरण' के कुछ उत्तम अध्याय सर्वसम्मति से स्वीकृत किये गये हैं। इन अध्यायों का सम्पादित संस्करण इनके पुत्र प्रिंसिपल ए० के० त्रिवेदी ने—जो कई वर्षों तक बड़ौदा कालेज में गुजराती के प्राध्यापक थे, प्रकाशित किया है।

स्कूल-कालेजों के लिए गुजराती के अध्यापकों प्राध्यापकों ने व्याकरण लिखे, जैसे मनसुखलाल झवेरी, कान्तिलाल व्यास, केशवराम शास्त्री तथा अन्य। अधिकांश व्याकरणों में संस्कृत तथा प्राकृत व्याकरणों की शैली और परिभाषा का अनुसरण किया गया है। गुजराती एक जीवित और विकासोन्मुख भाषा है, अतः एक ऐसे व्याकरण की आवश्यकता अभी भी है, जिसमें सभी वर्तमान प्रयोगों, मुहावरों तथा बदलते हुए बहुविध रूपों पर विचार किया गया हो। दूसरे शब्दों में रूढ़िबद्ध व्याकरणों के स्थान पर एक वर्णनात्मक व्याकरण ग्रंथ लिखा जाना चाहिए, जो नवीन और प्रचलित धारणा के अनुकूल हो। अनेक विभक्तियों को कैसे पहचाना जाय? प्रत्ययों और अनुस्थिता में भेद कैसे किया जाय? प्रवक्ता-कथन (direct Speech) तथा अन्य-कथन (Indirect Speech) में अंतर कैसे किया जाय? क्या व्याकरण का सरलीकरण संभव है? इन तथा इनसे सम्बन्धित अन्य प्रश्नों पर विचार अवश्य किया गया है, किन्तु नयी धारणाओं के अनुकूल कोई सम्पूर्ण व्याकरण अभी तक नहीं लिखा गया।

भाषा-शास्त्र के क्षेत्र में इस समय तक बड़ा महत्त्वपूर्ण कार्य हुआ है। व्रजलाल शास्त्री, नर्मदाशंकर तथा नवलराम ने इस विषय का अध्ययन आरम्भ किया। व्रजलाल शास्त्री के ग्रंथ 'गुजराती भाषानो इतिहास' तथा 'उत्सर्ग माला' बड़े उपयोगी हैं। नर्मदाशंकर ने अपने व्याकरण में तथा 'नर्मकोश' की भूमिका में इस विषय का विवेचन किया है। नवलराम ने १८७० में 'व्युत्पत्तिपाठ' लिखा, जो उस समय स्कूल-कालेजों में बहुत प्रचलित था। बीम्स, ग्रियर्सन, टेसीटोरी तथा अल्फेड मास्टर कुछ यूरोपीय लेखक हैं। रामकृष्ण गोपाल भांडारकर तथा गुणे ने भी तुलनात्मक भाषाशास्त्र का विवेचन किया है।

यद्यपि केशवहर्षद ध्रुव, आनन्दशंकर ध्रुव, कमलाशंकर त्रिवेदी तथा रमण-

भाई ने भाषाशास्त्र विषय पर कुछ-न-कुछ लिखा है, किन्तु नरसिंहराव दिवेटिया का प्रयास सब में उत्तम है। 'विल्सन भाषाशास्त्रीय व्याख्यान माला' के दो भागों में इस विषय का आपने गहन अध्ययन प्रस्तुत किया है, जो अत्यन्त महत्त्व-पूर्ण तथा मौलिक है। उनकी रुचि पांडित्य, गुरुता तथा परिश्रम की ओर अधिक थी। यद्यपि इस क्षेत्र में उनके विचार नवीन थे, तो भी उनके ग्रंथ का अधिकांश अब भी आदर की वस्तु माना जाता है।

सी० पी० पटेल, डा० टी० एन० दवे, केशवराम शास्त्री, पंडित बेचरदास, डोलरराय मांकड, विष्णुप्रसाद त्रिवेदी, मुनि जिन-विजयजी, भोगीलाल सांडेसरा, कान्तिलाल व्यास, हरिवल्लभ भायाणी, मधुसूदन मोदी, प्रबोध पंडित, मंजुलाल मजमूदार तथा दूसरों ने भी इस विषय पर लिखा है।

पिंगल विषय पर दलपतराम, नर्मदाशंकर, हीराचंद कहानजी, जीवराम गोर, रणछोड भाई उदयराम, केशव हर्षद ध्रुव, खबरदार तथा रामनारायण पाठक का अमर ग्रंथ 'बृहत्पिंगल' है।

अलंकार और रसशास्त्र पर नर्मदाशंकर, छोटालाल नरभेराम भट्ट, सविता-नारायण, रणछोडभाई उदयराम (नाटचशास्त्र), कवि नथुराम सुंदरजी (नाटचशास्त्र एवं काव्यशास्त्र), रामनारायण पाठक, ध्रुव, डोलरराय मांकड, रामप्रसाद बक्षी तथा लक्ष्मीनाथ शास्त्री के ग्रंथ हैं।

अध्याय २६

उपसंहार

दयाराम के बाद गुजराती साहित्य पर पाश्चात्य सभ्यता का गहरा प्रभाव पड़ा। धर्म के अतिरिक्त साहित्य में दैनिक जीवन, समाज सुधार आदि के विषय भी स्थान पाने लगे। समितियां और मंडल बने, छापाखाना शुरू हुआ, सरकारी स्कूल खुले, गुजराती में पाठ्य-पुस्तकें लिखी गयीं, कुछ अंग्रेज अधिकारी गुजराती साहित्य के प्रति रुचि रखने लगे, "इंडियन नेशनल कांग्रेस" की स्थापना १८८५ में हुई, जिससे गुजरात को भी अन्य प्रान्तों के सम्पर्क का लाभ मिला।

दलपतराम ने ऐसी कविता लिखी, जो सभारंजनी थी और जिसमें शब्द तथा अर्थ की चमत्कृति थी। नर्मदाशंकर के काव्य में प्रेम, वीरता, आत्मचिंतन, प्रकृति-वर्णन और उद्बोधन सब कुछ था। १८५७ में बंबई विश्वविद्यालय की स्थापना हुई, जिसके फलस्वरूप पंडितयुग का आगमन हुआ, जिसमें लेखकों और कवियों का संस्कृत तथा अंग्रेजी का अच्छा अध्ययन था।

नर्मदाशंकर का देहान्त १८८६ में हुआ और १८८७ में नरसिंहराव ने अपनी 'कुसुम माला' प्रकाशित की। इसी वर्ष गोवर्धनराम के 'सरस्वतीचन्द्र' का पूर्वार्ध प्रकाशित हुआ। विषय तथा भाव को व्यक्त करने में नरसिंहराव ने विशेष कला का परिचय दिया और उन्होंने प्रकृति, परमात्मा, जन्म, मृत्यु एवं इसी प्रकार के अन्य गंभीर विषयों पर चिन्तनात्मक कविताएँ लिखीं। ये बड़े संयम से लिखते थे, वर्णविन्यास और अभिव्यक्ति के सम्बन्ध में बहुत सावधान रहते थे तथा संस्कृत और अंग्रेजी साहित्य के अच्छे विद्वान् थे। आप गुजरात में आधुनिक काव्य के मार्गदर्शक थे। अपने सुदीर्घ साहित्यिक जीवन में आपने कई काव्य-संग्रह प्रदान किये। रमणभाई ने कुसुममाला की नयी कविता का स्वागत किया। वे उन चिन्तन प्रधान काव्यों को, जिनमें भाव तत्त्व की प्रमु-

रखता हो, उत्तम काव्य मानते थे। मणिशंकर भट्ट—कान्त—ने श्रेष्ठ खंडकाव्य रचे। इनके जीवन मे आतरिक संघर्ष बहुत था, इसलिए ये बहुत भावुक थे। इनके खंडकाव्य शब्द, अर्थ, भाव, सौन्दर्य, वृत्ति और अलकार की दृष्टि से निर्दोष और उत्तम है। यद्यपि औरो की अपेक्षा इनके काव्य का परिमाण कम है, किन्तु बलवन्तराय ठाकोर जैसे आलोचक ने इन्हे पिछले सौ वर्षों का सर्वश्रेष्ठ कवि माना है।

नानालाल का 'वसन्तोत्सव' १९०५ मे प्रकाशित हुआ। गुजराती काव्य-क्षेत्र मे इनका आगमन वसन्तऋतु के आगमन के समान माना जाता है। इन्होने अपद्यागद्य अथवा रागबद्ध गद्य लिखा। बड़ी उत्सुकता के साथ गुजरात मे इस गद्य की सराहना हुई। किन्तु बाद मे कोई भी सफल अनुकरण नहीं कर कर सका। इन्होने गुजरात का समूचा वातावरण बदल दिया और अपने तेजस्वी शब्दो से पाठको को वशीभूत कर लिया। भावना की अपूर्वता, अर्थ-गौरव, पद-लालित्य, अलकारो पर अधिकार तथा उनका अधिकता से प्रयोग, वाक्छटा, प्राचीन आर्य-संस्कृति के प्रति आदर की भावना, रचना का अधिक परिमाण— इन सब गुणो ने इन्हे गुजरात का सर्वोत्तम कवि बना दिया। जीवन के आदर्शो तथा भावनाओ का चित्रण करने मे आपको आनन्द प्राप्त होता था। अपनी डोलन शैली से इन्होने गद्य-पद्य दोनो को समृद्ध किया। इनके रास और ऊर्मि-गीत अत्यन्त काव्यात्मक तथा अद्वितीय है, जिनमे से कुछ तो ऐसे है जो ससार की कुछ सर्वोत्तम रचनाओ मे स्थान पा सकते हैं। 'कलापी' ने स्पष्टता और ईमानदारी के साथ सादे प्रवाहपूर्ण संस्कृत-छंदो मे रचना की तथा सफल गजलें भी लिखी, जिनमे प्रेम और आसुओ की प्रधानता है। गजल लिखना बालाशंकर ने आरभ किया था, फिर 'कलापी' मणिलाल और सागर ने उनका अनुसरण किया। मणिलाल ने 'आत्मनिमज्जन' तथा 'अभेदोर्मि' मे प्रेम एवं अद्वैत का वर्णन किया है। पारसी कवि खबरदार ने १९०१ से लिखना आरंभ किया और शुद्ध सस्कृत शैली में कई काव्य-संग्रह दिये, जिनसे छंदो पर उनका अधिकार सिद्ध होता है। अग्रेजी के 'ब्लैंक वर्स' की तरह आपने गुजराती मे भी मुक्तधारा तथा अमीरी महाछन्द मे लिखने का प्रयोग किया। आपने कुछ राष्ट्रगीत, तत्त्वचिन्तन की कविताएँ तथा कुछ अच्छे प्रतिकाव्य लिखे। बोटादकर ने पाँच

काव्य-सग्रह प्रदान किये, जिनमें सस्कृत शब्दो की बहुलता है पर समयन में सरल है। छदो पर आप का अच्छा अधिकार था। जमशकर बुच-ललित जी ने कुछ अच्छे गीता की रचना की है।

रमणभाई भावतत्त्व को काव्य के लिए परम आवश्यक मानते थे, नानालाल भावना को महत्त्व देते थे और बलवतराय ठाकोर विचार तत्त्व को काव्य का सर्वोत्तम अग समझते थे। ठाकोर का कहना था कि विचार प्रधान कविता ही उत्तम जाति की है और केवल इसी शैली में महाकाव्य की रचना हो सकती है। आपने अनेक छन्दो का प्रयोग किया तथा प्रवाहपूर्ण पृथ्वीछद और सौनेट का सन्निवेश सफलता पूर्वक किया। इनके अनुसार काव्य के लिए गेय तत्त्व आवश्यक नही है। आसूभरी दुर्बल कविताओ के आप घोर विरोधी थे। ठाकोर ने नयी पीढी के कवियो को प्रभावित किया और उनके कुलगुरु बन गये। इस काल मे और भी अनेक साहित्यकार हुए है, जैसे हरि हर्षद ध्रुव, बालाशकर कथारिया, केशवराम हरिराम भट्ट, छोटालाल नर्मदाराम भट्ट, श्रीमन्नृसिंहाचार्य, सागर, त्रिभुवन प्रेमशकर, नथुराम सुन्दरजी, डाह्याभाई देरासरी तथा अन्य।

नयी पीढी के कवियो ने जैसे ठाकोर को अपना कुलगुरु बनाया, उसी प्रकार उन्होंने गाधीजी से जीवन तथा जनता को एक नवीन दृष्टि से देखना सीखा। गाधीजी एक विश्ववन्द्य युगपुरुष थे और वे सादी, प्रत्यक्ष तथा गौरवपूर्ण शैली मे अनेक समस्याओ पर ऐसे सरल ढग से विचार करते थे कि समूचा वातावरण का रंग बदल देते थे। उन्होने भारत को अपने प्राचीन वैभव पर अभिमान करना सिखाया। उन्होंने सत्य-अहिंसा तथा अन्य मौलिक सिद्धान्तो पर जोर दिया। सर्वोदय, विश्वप्रेम, सर्वधर्म समभाव, निर्धनो तथा दलितो के प्रति सहानुभूति, राष्ट्रीय आन्दोलन, जिसका उन्होने सचालन किया—इन सब बातो ने और विश्व-युद्ध, पश्चिम की नयी विचारधारा, रूस का समाजवाद तथा साम्यवाद, पुरानी गुजराती, सस्कृत और अग्रेजी का अध्ययन, अन्य प्रान्तो के साहित्य का अध्ययन इन सबके कारण एक परिवर्तन उपस्थित कर दिया और कविता को एक नया रूप प्रदान किया। परिणामत भाषा में प्रसाद गुण और वाक्छटा आयी, कठोरता को हटाने का प्रयत्न किया गया। नये छन्दो का प्रयोग हुआ। सभी विषयो पर कविता लिखी जाने लगी। निर्धनो तथा दलितो के प्रति प्रेम

की अभिव्यक्ति हुई। कविता में लोकभाषा को भी स्थान मिला। कान्त, न्हानालाल और ठाकोर का प्रभाव दृष्टिगोचर था। इस काल के प्रमुख कवि है चन्द्रवदन मेहता, रामनारायण पाठक, मेघाणी, गजेन्द्र बुच, सुन्दरम् तथा उमाशंकर। पाठक ने अपने संग्रह 'शेषना काव्यो' मे विविध विषय दिये हैं। गजेन्द्र का देहान्त कम उम्र मे हो गया था, फिर भी उनकी कविताएँ 'गजेन्द्र मौक्तिको' मे संगृहीत है, जिनमें से कुछ तो बहुत ही कलात्मक हैं। मेघाणी ने 'युगवन्दना', 'एक तारो' और 'रवीन्द्र वीणा' की रचना की। सुन्दरम् के ग्रंथ हैं, 'काव्य मंगला', 'कोया भगतनी कड़वी वाणी' और 'वसुधा यात्रा'। उमाशंकर ने 'गंगोत्री', 'निशीथ', 'आतिथ्य', 'प्राचीना', 'वसन्त वर्षा' आदि काव्य-पुस्तकें लिखीं। सुन्दरम् और उमाशंकर इस युग के प्रमुख कवि है तथा दोनो ने स्थायी साहित्य का निर्माण किया। सुन्दरम् में ऊर्मि, चिन्तन, भाव, प्रसाद, सुरेखता तथा भावनावैविध्य है। उमाशंकर में निर्मलता, आदर्श, प्रसाद, माधुर्य, विचार-समृद्धि तथा दाक्षिण्य है। दोनो की शैली रोचक है। चन्द्रवदन मेहता ने बाल-जीवन तथा भाई-बहन का प्रेम 'इला काव्य' मे चित्रित किया है। पूजालाल ने अपने 'पारिजात' और 'ऊर्मिमाला' मे विशिष्ट विश्वास तथा दार्शनिक चिन्तन से युक्त भक्ति सम्बन्धी सच्चे काव्य का सर्जन किया हैं। करसन मानिक ने कुछ व्यंग्यात्मक काव्य तथा रोचक गीत लिखे हैं। इनके ग्रंथ है 'आलबेल', 'महोबतने मांडवे', 'कल्याणी', और 'वैशंपायननी वाणी।' स्नेहरश्मि ने 'अर्घ्य' और 'पनघट' मे कुछ अच्छे गीत और बंगला शैली मे कुछ कुछ कविताएँ लिखी हैं। बेटाई ने 'ज्योतिरेखा', 'इन्द्रधनु' तथा 'विशेषांजलि' मे संयम तथा कोमलता के साथ प्रभु-प्रेम एवं चिन्तन पर कुछ अच्छी कविताएँ लिखी है। इन्दुलाल गांधी ने, 'खंडित मूर्तिओ' तथा अन्य संग्रहों मे अच्छे गीत लिखे है। मनसुखलाल झवेरी ने विशुद्ध शैली मे संस्कृत-बहुल काव्यों तथा खंडकाव्यो की रचना की है, जिनमे छन्दो की विविधता है। इनके गीतो मे वर्णन, भाव-विचार और चिन्तन है। इनके कुछ खंडकाव्यो ने आधुनिक गुजराती काव्य-क्षेत्र मे इन्हे ऊँचा स्थान दिलाया है। पतील, बादरायण, स्वप्नस्थ, रमणीकलाल, अरालवाला, बालमकुन्द पटेल, दुर्गेश शुक्ला, निरंजन भगत, नाथालाल दवे, मकुन्द पाराशर्य, प्रियकान्त मनियार, राजेन्द्र शाह तथा दूसरे

कवियों ने भी अपनी रचना द्वारा काव्य की इस नवीन धारा को समृद्ध किया है।

काव्य के यथार्थवाद, विचार प्रधान, जगेय और प्रवाही गुणों की प्रतिनिधिया वर्तमान काल में हुई। कवि-सम्मेलनों और मुशायरों का आयोजन हुआ, रेडियो तथा नृत्य नाटिका में गाये जानेवाले गीतों को शब्द-माधुर्य तथा संगीत प्रदान किया गया, छन्द-बन्धन और लोकप्रियता फिर लौट आयी, कर्णप्रिय और तेजस्वी शब्दों का प्रयोग तथा जन-समूह के समक्ष गाकर कविता-पाठ करना—इन तत्त्वों का प्रवेश फिर हुआ। निरंजन भगत, राजेन्द्र शाह, वेनीभाई पुरोहित, अविनाश व्यास, पिनाकिन ठाकोर, उशनस, हसित बुच, जयन्ती पाठक, अनामी, प्रजाराम तथा दूसरे कवियों में ये गुण पाये जाते हैं। ग़ज़ल लिखने वालों में शैदा, अमृत घायल, असीम रांदेरी, बरकत वीराणी, गनी, जर्मन आजाद, नसीम, आजूवाला, पतील, जमियत पंड्या, अकबर मानिक, वेणीभाई, बालमुकुन्द तथा दूसरे हैं।

अब तक गुजराती में एक भी महाकाव्य की रचना नहीं हुई। अनेक छन्दों का प्रयोग अवश्य हुआ है, जैसे वनमाली, अपद्यागद्य, पृथ्वी मुक्तधारा, अनुष्टुप्। गीत और आख्यानों की संख्या अधिक है, खण्डकाव्य भी कम नहीं मिलते, जिनमें कुछ बहुत सफल और सर्वगुण सम्पन्न हैं। इन खंड काव्यों के रचयिता हैं कान्त, नरसिंहराव, खबरदार, नेटाई, मनसुखलाल तथा अन्य। अनवर, अर्जुन भगत, त्रिभुवन प्रेमशंकर तथा दूसरों ने गरबी और भजन लिखे हैं। गीत-काव्यों के रचयिता हैं भोलानाथ, नरसिंहराव, खबरदार और ललित। दीर्घ काव्यों के नाम हैं स्नेह मुद्रा, विभावरी स्वप्न, कलापीनो विरह, स्मरण महिला, चित्रशान्ति, गवाक्ष वहुस्या, इन्द्रधनु, खामना पोषणा, स्मशानमां आदि। दौलतराम पंड्या ने महाकाव्य के ढंग पर 'इन्द्रजित्वध' लिखा तथा इसी ढंग पर भी राव भोलानाथ ने 'पृथुराज रासा' की रचना की है। दोनों ने संस्कृत के महाकाव्यों की शैली ग्रहण की है। यद्यपि महाकाव्य लिखने के प्रयत्न अनेक हुए, किन्तु सफल एक भी नहीं हुआ। इस दिशा में दौलतराम और भीम राव के प्रयास प्रशंसनीय हैं।

आधुनिक गुजराती गद्य का विकास नर्मदाशंकर के बाद आरंभ हुआ।

इन्होंने शुद्ध, प्रवाहपूर्ण और सबल शैली में निबंध, जीवनचरित्र, आत्मचरित्र, नाटक, इतिहास और आलोचनाएँ आदि लिखी। ये एक प्रकार से गद्य-लेखन के मार्गदर्शक बने। इनके कुछ निबंध तो बहुत ही अध्ययनपूर्ण है। नवलराम एक उच्चकोटि के आलोचक, सतुलित विचारवाले तथा अंतर्द्रष्टा थे। इनकी शैली सादी, किन्तु मधुर है। तत्पश्चात् पंडितयुग का आगमन हुआ। इस युग में विद्वत्ता, गहन अध्ययन, ठोसपन, संस्कृत-बहुल-भाषा, प्रौढता और कहीं-कहीं दुर्बोधता थी। मनसुखराम, गोवर्धनराम, मणिलाल, नरसिंहराव, रमणभाई, बलवन्तराय ठाकोर, आनन्दशंकर—इनमे से प्रत्येक ने अपने-अपने ढंग से गद्य को पुष्ट करने मे योग दिया। मणिलाल तथा आनदशंकर का गद्य सर्वोत्तम माना जाता है। इसके बाद गांधीजी आये। ये युगपुरुष थे और इन्होंने अनेक लेखकों को प्रोत्साहित किया। इनकी शैली सचोट, अर्थघनमय एवं मिताक्षरी थी। प्राचीन संस्कृति के लिए आदर, लोकसाहित्य, दलितों के प्रति प्रेम, सेवा-भाव, भारत गौरव आदि गुण इन्ही के प्रभाव से आये तथा अध्यात्मरंग में रंगी हुई एक जीवन दृष्टि भी लोगो को गाधीजी से मिली। कालेलकर, मशरुवाला, महादेव, भाई, नरहरि परीख और चन्द्रशंकर शुक्ल कुछ ऐसे लेखक है, जो गाधी जी के साथ रहकर काम करते थे। कन्हैयालाल मुन्शी अपने गद्य मे सरसता, जीवन-उल्लास, ओजस्, प्रवाहिता, कथारंग, कलाविधान, नाटकीयता और चित्रात्मक निरूपण ले आये। इन्होंने गद्य के लगभग सभी रूपों मे लिखा है। गोवर्धनराम सामाजिक उपन्यास लिखने मे सर्वश्रेष्ठ थे और मुन्शी ऐतिहासिक उपन्यास लिखने मे। रमणभाई मे माधुर्य, सौष्ठव और नागरिकता है। मेघाणी लोकभाषा का ओजस् ले आये। रामनारायण मुख्य विषय को ग्रहण करके सूक्ष्मता से विश्लेषण करते है। इनकी शैली सहज, विशद और अत्यन्त शुद्ध है। धूमकेतु को बुद्धिगत सविधान के साथ ऊर्मितत्त्व चित्रित करने मे आनद आता है। समीक्षा और साहित्यिक आलोचनाओ के लिए विजयराम ने एक नवीन और शिष्ट शैली ग्रहण की है। विष्णुप्रसाद ने उत्तम ढग से आलोचना के सिद्धान्तो का निरूपण किया है। इस प्रकार अनेक रूपो मे गुजराती गद्य ने शक्ति, वैविध्य एवं सस्कार अर्जित किया। ये शिष्ट सस्कार जनता की साधारण भाषा, दैनिक पत्रो, रेडियो, रंगमचो, सभाभवनो तथा साहित्यिक

पत्रों में दृष्टिगोचर होते हैं। अब उच्च शिक्षा के लिए गुजराती भी माध्यम बन गयी है तथा उन अनेक क्षेत्रों के अतिरिक्त, जिनमें गुजराती गद्य ने समृद्धि और सामर्थ्य प्राप्त की है, अनेक नये क्षेत्र भी खुल गये हैं, जिनमें इसका विकास हो सकता है।

उपन्यास-क्षेत्र में 'करणघेलो' सब प्रथम उपन्यास था और 'सरस्वतीचन्द्र' सर्वश्रेष्ठ सामाजिक उपन्यास। मुन्शी ने अपने ऐतिहासिक उपन्यासों तथा प्रतापी और जीवन्त पात्रों के निर्माण के कारण इस क्षेत्र में सर्वोच्च स्थान प्राप्त किया। चुनीलाल वर्धमानशाह, धूमकेतु, रमणलाल देसाई, दर्शक, जयभिक्खु, गुणवन्तराय आचार्य, रामचन्द्र ठाकुर, मजुलाल देसाई, पन्नालाल, पटलीकर, जयन्ती दलाल, रामू अमीन, शिवशंकर शुक्ल तथा कुछ दूसरों ने भी ऐतिहासिक उपन्यास लिखे हैं। न्हानालाल, रामभोहनराय, जसवन्तराय, मुन्शी, रमणलाल, धूमकेतु, चुनीलाल वर्धमानशाह, पन्नालाल, पेटलीकर, चुनीलाल मडिया तथा कुछ दूसरों ने सामाजिक उपन्यास दिये हैं।

अनुवाद-क्षेत्र में बंगाली से टैगोर, शौरीन्द्रमोहन, बनफूल, निरुपमा देवी तथा दूसरों की कृतियों का अनुवाद हुआ है, मराठी से वा० म० जोशी, अत्रे, गनेगुरुजी, आप्टे, खाडेकर तथा दूसरों का, हिन्दी से प्रेमचन्द, जैनेन्द्रकुमार तथा दूसरों का। टाल्स्टाय, पर्ल बक, कुछ साम्यवादी उपन्यासकारों तथा अन्य कृतियों का भी गुजराती में अनुवाद हुआ है। गांधी जी तथा मुन्शी के गुजराती ग्रंथों का अनुवाद भारत की अन्य भाषाओं एवं अंग्रेजी में भी हुआ है।

कहानी, एकांकी, सरल निबंध—इन रूपों को पत्र-पत्रिकाओं, समाचार-पत्रों तथा साहित्यिक प्रतियोगिताओं से प्रोत्साहन मिला। कहानी-क्षेत्र में मल्यानिल, मुन्शी, धूमकेतु, रामनारायण, मेघाणी, गुलाबदास ब्रोकर, पन्नालाल, पेटलीकर, मडिया तथा दूसरों में से प्रत्येक ने अपने विशेष ढंग से कहानी-लेखन में सफलता पायी है।

नाटकों का उतना विकास नहीं हुआ, जितना उपन्यास-कहानियों का। कुछ शिष्ट नाटक रंगभूमि के अनुकूल नहीं थे। किन्तु इधर हाल में नाटकों के प्रति रुचि बढ़ी है। सरकार द्वारा आयोजित प्रतियोगिताओं, रेडियो, संस्थाओं, अन्तर्महाविद्यालय प्रतियोगिताओं तथा बड़ौदा, अहमदाबाद और अन्य स्थानों में

स्थापित अव्यवसायी-नाटक-मडलो के कारण लोगो का ध्यान साहित्य के उस रूप की ओर फिर गया है, जो दृश्य और श्राव्य दोनों है। रमणभाई, न्हानालाल, ठाकोर, मुन्शी, लीलावती मुन्शी, उमरवाडिया, चन्द्रवदन मेहता, उमाशकर, धनमुखलाल मेहता, शिवकुमार जोशी, यशोधर मेहता, जयन्तीदलाल, मडिया, तथा दूसरों ने इस क्षेत्र मे महत्त्वपूर्ण योग दिया है।

मोपासां, चेखोव, सारोयान के नाटको का; बगाली से टैगोर और द्विजेन्द्र-राय के, सस्कृत से कालिदास, भवभूति, भास, विशाखदत्त, हर्ष, शूद्रक तथा तथा दूसरो के एवं शेक्सपियर, शा, इब्सन, वेरी तथा दूसरो के नाटको का अनुवाद गुजराती मे हुआ। उरेडियो द्वारा इस क्षेत्र मे बहुत प्रोत्साहन और मार्ग-दर्शन मिला। चन्द्रवदन मेहता ने रेडियो-रूपान्तर करने मे सबका मार्ग-दर्शन किया।

हास्यरस का साहित्य लिखने मे रमणभाई, ज्योतीन्द्र दवे, धनसुखलाल, दूरकाल, रामनारायण, उमाशकर, मुनिकुमार, नवलराम त्रिवेदी, मस्त फकीर, जदुराय खंडिया, बकुल त्रिपाठी तथा अन्योने अधिक योग दिया है। पत्र-पत्रिकाओके कारण भी इसके विकास का अच्छा अवसर मिला।

साहित्यिक आलोचको मे नवलराम पंड्या, मणिलाल, रमणभाई, नरसिंह-राय, ठाकोर, आनन्दशकर, केशवलाल ध्रुव, मुन्शी, रामनारायण पाठक, कालेल-कर, विष्णुप्रसाद, विजयराय, विश्वनाथ, उमाशकर, सुन्दरम्, अनतराय रावल, मनमुखलाल झवेरी, कान्तिलाल व्यास, धीरुभाई ठक्कर, मंजुलाल मजमूदार-यशवन्त शुक्ल, नवलराम त्रिवेदी, हीरा पाठक के नाम उल्लेखनीय है तथा विभिन्न विश्वविद्यालयो के गुजराती एव संस्कृत के कुछ प्राध्यापको का नाम भी सम्मिलित किया जा सकता है। पत्रो तथा रेडियो का अवलोकन विभाग, पी एच डी. के विद्यार्थियो के शोध-निबध, ठक्कर बसनजी व्याख्यान माला जैसी व्याख्यानमालाएँ तथा ग्रंथो की आलोचनाएँ—इन सबने मिलकर विवेचन साहित्य को बहुत आगे बढाया है।

गुजराती साहित्य के विभिन्न कालों का इतिहास लिखने वाले है गोवर्धन-राम, देरासरी, हिम्मतलाल अजारिया, कृष्णलाल झवेरी, मुन्शी, विजयराय वैद्य, अनन्तराय रावल, केशवराय शास्त्री, मनसुखलाल झवेरी, रामप्रसाद शुक्ल तथा सुन्दरम्।

गुजराती साहित्य का सवर्धन करनेवाली प्रमुख सस्थाएँ हैं—गुजरात विद्यासभा, बडोदा राज्य का प्राच्य विद्या मदिर, भारतीय विद्या भवन, गुजराती साहित्य परिषद्, गुजरात विद्यापीठ तथा विभिन्न विश्वविद्यालय। शोध-क्षेत्र के विद्वान् हैं—दल्पतराम, भगवानलाल इन्द्रजी, केशवलाल ध्रुव, नरसिंहराव, हरगोविन्ददास काटावाला, मुनि जिनविजय जी, रसिक लाल परीख, दुर्गाशकर शास्त्री, केशवराम शास्त्री, साडेसरा, माकलिया, कान्तिलाल व्यास, भायाणी, मजुलाल मजमूदार, पडित बेचरदास, विष्णुप्रसाद त्रिवेदी, टी एन दवे, मधुसूदन मोदी, प्रबोध पडित तथा अन्य।

क्रमस्थ लोकसाहित्य तथा लोकवार्ता साहित्य पर सबसे पहले शोधकार्य करनेवाले हैं दल्पतराम। बाद में मेघाणी ने इस क्षेत्र में बहुत काम किया, जिनका अनुसरण रायचुरा, मधुभाई पटेल तथा दूसरो ने किया।

गुजराती का प्रथम कोश नर्मदाशकर ने तैयार किया। गुजरात विद्यापीठ ने जोडणी कोश निकाला। विश्वकोष की भाति कई भागो मे भगवद्गोमडल कोश तयार हुआ। पापटलाल शाह ने विज्ञान विषयक पारिभाषिक कोश तैयार किया। इसी प्रकार यशवत नायक, विट्ठलदास कोठारी, अरविन्द कार्यालय, विश्वनाथ भट्ट तथा दूसरो ने अनेक विषय के पारिभाषिक कोश तैयार किये। बडोदरा सरकार ने वैधानिक शब्दो का कोश तैयार कराया। ये सभी कोश बडे परिश्रम से तैयार किये गये है।

विश्वनाथ भट्ट ने निबन्धमाला में चिन्तनात्मक निबधो का मूल्याकन किया है और विष्णुप्रसाद ने गुजराती में चिन्तनात्मक गद्य पर बहुत महत्त्वपूण ग्रथ लिखा है। गोवर्धनराम, मणिलाल, आनन्दशकर, किशोरलाल, गाधीजी, कालेलकर, नथुराम शर्मा, नृसिंहाचाय, नर्मदाशकर मेहता तथा दूसरो ने अनेक दार्शनिक, धार्मिक, सामाजिक एव अन्य समस्याओ पर मार्मिक तथा गभीर विचार प्रकट किये है। गाधीजी, मुन्शी, न्हानालाल, रमणलाल, धूमकेतु तथा दूसरो के विचार-कण सगृहीत किये गये है।

सिद्धान्तसार मे मणिलाल तथा नर्मदाशकर मेहता ने तत्त्वज्ञान का इतिहास लिखा है। नरहरि परीख तथा मगनभाई दसाई ने गाधीवाद का विवेचन किया है। रविशकर महाराज, रग अवधूत, हरप्रसाद शुक्ल, बबलभाई मेहता

तथा दूसरो ने अपने-अपने ढंग के चिन्तन प्रस्तुत किये है। चन्द्रशंकर शुक्ल ने कई दार्शनिक ग्रंथो के उत्तम अनुवाद दिये है। छोटालाल मास्टर, कौशिकराम मेहता तथा मगनभाई चतुरभाई पटेल ने भी साहित्य-सर्जन किया है। केदारनाथ जी तथा विनोबा भावे ने अपनी विचार सरणी द्वारा लोगों को प्रभावित किया। अम्बालाल पुराणी तथा सुन्दरम् अरविन्द के तत्त्वज्ञान से लोगो को परिचित करा रहे है। पंडित सुखलाल जी का असाधारण पाडित्य और दर्शन का गहन अध्ययन उनके लेखों और संपादित ग्रथो मे परिलक्षित है। कला एवं स्थापत्य मे रविशंकर रावल, हरिप्रसाद देसाई, बचुभाई रावत, अम्बालाल पुराणी तथा रणछोड़लाल ज्ञानी के नाम प्रमुख है। इतिहास तथा समाज शास्त्र के क्षेत्र मे भगवानदास इन्द्रजी, दुर्गाशंकर, मुन्शी, रमणलाल, विजयराय, रत्नमणिराव, अमृत पंड्या, मुनि जिनविजयजी, गिरजाशंकर आचार्य, सांडेसरा, साकलिया, माकड, रामलाल मोदी तथा अन्य प्रमुख है। भोगीलाल गांधी, नीरु देसाई तथा दूसरो ने समाजवाद, साम्यवाद आदि का परिचय दिया। रसशास्त्र तथा अलकार पर विशेष रूप से माकड, रामप्रसाद बक्षी तथा दूसरों ने लिखा है। गोवर्धनराम, नदशकर, मुन्शी, विश्वनाथ तथा न्हानालाल ने साहित्यिक व्यक्तियों का जीवन चरित लिखा है। अम्बेलाल जोशी तथा दूसरो ने राजनीतिक नेताओ की जीवनियां लिखी है। आत्मचरित्र मे गांधीजी, नर्मद, नारायण हेमचन्द्र, कालेलकर, मुन्शी, धनसुखलाल, रमणलाल, चापसी उदेशी, धूमकेतु, चन्द्रवदन मेहता, इन्दुलाल याज्ञिक तथा दूसरो के नाम है। जवाहरलाल नेहरु तथा राजेन्द्रप्रसाद के आत्मचरित्रो का गुजराती मे अनुवाद हुआ है।

नरसिहराव, लीलावती मुन्शी, रमणलाल तथा दूसरों ने रेखाचित्र प्रस्तुत किये है; नरसिहराव, महादेवभाई, मनुबहन तथा दूसरो ने डायरी लिखी है: पत्र-साहित्य के निर्माता है—कलापी, कान्त, बालाशकर कथारिया, सागर, गाधीजी, कालेलकर, भिक्षु अखण्डानन्द, मेघाणी, अम्बालाल पुराणी। काल्पनिक नोधपोथी गुप्ता ने तथा काल्पनिक पत्र उमरवाडिया ने लिखे।

बाल साहित्य मे गिजुभाई, नानाभाई, सोमाभाई, नागरदास पटेल, जीवनराम जोशी, नटवरलाल वीमावाला, शारदाप्रसाद वर्मा, किशोर गाधी, मनुभाई जोधाणी तथा दूसरों ने अमूल्य योगदान दिया है।

गुजराती के प्रमुख सामयिक पत्रों (जिनकी सूची पिछले अध्याय में दी गयी है), साहित्य विषयक संस्थाओं, सस्तु-साहित्य-कार्यालय जैसी प्रकाशन-संस्थाओं तथा विभिन्न विश्वविद्यालयों ने गुजराती पुस्तकों के प्रकाशन में बड़ी सहायता दी है।

रणजीतराम सुवर्ण चन्द्रक, महीडा सुवर्णचन्द्रक, नर्मद चन्द्रक आदि पुरस्कारों, सरकारी पुरस्कारों, संस्थाओं एवं विश्वविद्यालयों की भाषणमालाओं, रेडियो-प्रतियोगिताओं, कवि-सम्मेलनों, मुशायरों तथा कलाकेन्द्र आदि के कार्यक्रमों द्वारा भी साहित्य को पर्याप्त प्रोत्साहन प्राप्त हुआ है।

गुजराती साहित्य के विकास का यह विवरण एक सकेतमात्र है। सीमित स्थान होने के कारण कहीं-कहीं तो विशिष्ट धाराओं का उल्लेखमात्र करके ही सतोष करना पड़ा है।

अततोगत्वा गुजराती साहित्य के आधुनिक काल का सारस्वत प्रवाह सतोषजनक है तथा गुजरात के लिए गौरव का विषय है। इसमें सर्जन एवं चिन्तन दोनों है। प्रभु प्रार्थना के साथ गुजराती साहित्य का यह पर्यवेक्षण हम समाप्त करते हैं तथा आशा करते हैं कि भविष्य में इसकी और भी अधिक उन्नति होगी, एवं भारत की अन्य भगिनी-भाषाओं तथा ससार की अन्य भाषाओं के साहित्य के बीच यह अपना स्थान बनायेगा।

परिशिष्ट–१

ग्रन्थ-सूची

१–अनन्तराय रावल–गन्धाक्षत, साहित्यविहार, गुजराती साहित्य (मध्यकालीन)

२–आनन्दशंकर ध्रुव–आपणो धर्म, दिग्दर्शन, काव्यतत्त्व विचार, साहित्यविचार।

३–उमाशंकर जोशी–अखो एक अध्ययन, समसंवेदन, गुल्रे पोलांड, गोष्टि।

४–कन्हैयालाल मुन्शी–Gujtrat and its Literature, अर्वाचीन साहित्यनो प्रधानस्वर-जीवननो उल्लास, आदि वचनो।

५–कमलाशंकर त्रिवेदी–पाठ्य बृहद् व्याकरण (Ed. Prin. A,. K. Trivedi)

६–कान्तिलाल व्यास–सपा०—वसन्तविलास

७–कृष्णलाल झवेरी–Milestones in Gujarati Literature, Further Milestones, the Present state of Gujarati Literature, Development of Gujarati Literature.

८–केशवलाल ध्रुव–साहित्य अने विवेचन, पद्यरचनानी ऐतिहासिक समालोचना, कादम्बरी, पंदरमा शतकना गुर्जरकाव्य।

९–केशवराम शास्त्री–आपणा कविओ, कविचरित भाग १–२ गुजराती साहित्यनु रेखादर्शन।

१०–गणेशजी अंजारिया–साहित्य प्रवेशिका

११–गोवर्धनराम त्रिपाठी–Classical poets of Gujrat, दयारामनो अक्षरदेह, साक्षर जीवन

१२–ग्रन्थ अने ग्रन्थकार भाग १–१०

१३–ग्रन्थस्थ वाङ्मय (वार्षिक विवेचनो)

१४–चन्द्रशंकर शुक्ल–Gandhi's View of Life
१५–जयन्तकृष्ण दवे–अखेगीतानु तत्वचिन्तन, जु० मा० प० नो सुवर्ण-महोत्सव अने अर्वाचीन सारस्वत प्रवाह, 1st P E N Conference Report Gujrati Literature Immortal India Vols 1 to 4 (Chapters Connected with Gujarat)
१६–झवेरचन्द मेघाणी–सोरठी सन्तवाणी
१७–डोलरराय माकड–काव्य विवेचन
१८–डाह्याभाई देरासरी–साठीनु साहित्य
१९–दुर्गाशंकर शास्त्री–शैव सम्प्रदायनो इतिहास, वैष्णव सम्प्रदायनो इतिहास
२०–धीरभाई ठक्कर–गुजराती साहित्यनी विकासरेखा भाग १–२
२१–नरसिंहराव दिवेटिया–मनोमुकुर भाग १–४, प्रेमानन्दना नाटको, Gujarati Language and Literature Part 1-2
२२–नर्मदाशंकर कवि–जूनु नर्मगद्य
२३–नर्मदाशंकर महेता–भक्ति अने शाक्त सम्प्रदाय
२४–नवलराम त्रिवेदी–वेटगाक विवेचनो
२५–नवलराम पंड्या–नवलग्रन्थावलि
२६–न्हानालाल कवि–आपणा साक्षर रत्नो
२७–न्हानालाल स्मारक, ग्रंथ
२८–परिषद् प्रमुखनो भाषणो
२९–बलवन्तराय ठाकोर–लिरिक, कविता शिक्षण, विविध व्याख्यानो, आपणी कविता समृद्धि
३०–भोगीलाल सांडेसरा–प्राचीन गुजराती साहित्यमा वृत्तरचना
३१–मंजुलाल मजमुदार–मध्यकालीन गुजराती साहित्यना स्वरूपो
३२–मध्यकालनो साहित्य प्रवाह
३३–मनसुखलाल झवेरी–थोडा विवेचन लेखो पर्येषणा, गुजराती साहित्य नु रेखादर्शन
३४–मोहनलाल देसाई–जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास, जैनगुर्जर कविओ भाग १–२

३५–रतन मार्शल–गुजराती पत्रकारित्वनो इतिहास
३६–रमणभाई नीलकंठ–कविता अने साहित्य भाग १–४
३७–रामनारायण पाठक–अर्वाचीन गुजराती काव्य साहित्य, अर्वाचीन काव्य-साहित्यना वहेणो, साहित्य विमर्श, आलोचना, साहित्यलोक, बृहत् पिंगल, पूर्वालाप
३८–रामप्रसाद शुक्ल अने विपीन झवेरी–आपणुं साहित्य
३९–विजयराय वैद्य–साहित्य दर्शन, गुजराती साहित्यनी रूपरेखा, गतशतकनुं साहित्य
४०–विश्वनाथ भट्ट–साहित्य समीक्षा, विवेचन मुकुर, निकषरेखा, निबन्धमाला
४१–विष्णु प्रसाद त्रिवेदी–विवेचना, परिशीलन, अर्वाचीन चिन्तनात्मक गद्य अक्षा, उपर प्रस्तावना
४२–सुन्दरजी बेटाई–गुजराती कवितामा सोनेट
४३–सुन्दरम्–अर्वाचीन कविता
४४–हरिवल्लभभायाणी–वाग्व्यापार
४५–हीराबहेन पाठक आपणु विवेचन साहित्य

परिशिष्ट–२

Thesis submitted in different Universities

(E)=English (G)=Gujarati (H)=Hindi, (P)=Published

1 A study of Gujarati Language in the 16th Century (V S) *T N Dave*, London 1931, Ph D (E) P

2 A study of the Shadāvashyaka Bālāvabodha of Tarunaprabha *Prabodh Pandit* London Ph D (E)

3 A model of 15th Century Gujarati Prose (with special reference to the Yogasastra Bālāvabodha by Somasunder Suri) *Ramanlal G Bhatt* Bombay 1945 M A (E)

4 Doubtful authorship of some of the works of Premānand (A Gujarati Poet of Medieval Period) *P N Likhi*, Bombay, 1947 Ph D (G) P

5 Pamanbhai, a study *B J Jhaveri*, Bombay, 1949, Ph. D (G)

6 Narsimha Rao Divetia *Sumati Mehta* Bombay, 1950 Ph D (G) P

7 Swara Bhara Ane Teno Vyāpar *G D Patel* Bombay, 1950 Ph D (G) P

8 History of Gujarati Novel *R J Patel* Bombay 1950 Ph D (E) Partly P

9 A critical survey of the three dramas Pothādarśikā satya bhāmākhyāna Panchaliprasannākhyāna and Tapatyākhyāna *Dahyabhai D Patel* Bombay, 1951, Ph D (G)

10 Treatment of nature in the Medieval Gujarati Literature *Tansukh L Dave*, Bombay 1951, Ph D (G)

11. Medieval forms of Gujarati literature *C. H. Mehta*, Bombay, 1952, Ph. D. (G) P.
12. Monilāl Nabhubhai Dwivedi, a study : *D. P. Thaker*, Bombay, 1953, Ph. D. (G).
13. Dr. Anandshankar Bapubhai Dhruva in his writings : *J. C. Pandya*, Bombay, 1954, Ph. D. (G).
14. Raje—a study (with a retrospect of his predecessors' poems on Identical subjects : *R. N. Jani*, Bombay, 1955, Ph. D. (G).
15. Dialect of character, a liguistic study : *Bahadurprasād R. Choksey*, Baroda, 1956, Ph. D. (G) being P.
16. A critical Edition of the Simhāsana Batrishi (1463 A. D.) of Malyachandra with a comparative study of that story in Gujarati literature) : *Ranjitbhai M. Patel*, Baroda, 1956, Ph. D. (G).
17. Dalpatram, an approach to his poetry : *T. P. Bhatt*, Bombay, 1957, Ph. D. (G).
18. Madhyakālin Gujarati Sāhityamā Bhāgavata mūlak kathās : *Parvati G. Sapara*, Bombay, 1957, M. A. (G).
19. Ranchhodbhai Udayram Ek Natakkār Tarike : *S. I. Patel* Gujarati; 1957, Ph. D. (G).
20. Kalapi Ek Adhyayan : *I. K. Dave*, Gujarat, 1958, Ph. D. (G)
21. Gujarati Vartā Sahityamā Parsi Lekhakono Phālo : *M. H. Parekh*, Gujarat, 1958, Ph. D. (G).
22. Gujarati Charitra Vāngmaya : *V. R. Bhatt*, Gujarat, 1958, Ph. D. (G).
23. Premanand-Shāmalnā Samayni Lok-Sthiti ane tenu Premānand ane Shāmalā Karavelu Darshan Parts 1-2. *I. J. Bhatt*, Gajarat, 1958, Ph. D. (G).
24. Ramanlāl Desai, his mind and Art : *H. M. Doshi*, Bombay, 1958, Ph. D. (G).

25 Vallabh Mevādo, Ek Adhyayan , *J G Shah*, Bombay, 1959, Ph D (G)

26 Kavi Nākar, Ek Adhyayan Chimanlal S Trivedi, Bombay, 1959, Ph D (G)

27 Bhalornā Dashama skandhanā Bhāvageetoni Adhikrit Vāchanā Ane Tatkālin Gujarati Bhāshānu Swarup *D T Doshi*, Gujarat, 1959, Ph D (G)

28 Tuljaram krit "Abhimanyu Akhyan" in Adhikrit Vāchanā Ane Gujarati Sahityamā Abhimanyuni Kathano Vikas *S I Jesalpura*, Gujarat, 1959, Ph D (G)

29 1920 Pachnini Gujarati Kavitani Sanskritik Bhoomika, tena Paribalo ane Siddhi *J N Pathak*, Gujarat, 1959, Ph D (G)

30 Nākarnā Nalākhyānni Adhikrit Vāchanā ane Madhyakalin Gujarati Sahityama Nalakhyanno Vikās *P V Patel* Gujarat, 1960 Ph D (G)

31 A critical edition of Jnāna Gita of Narahari (1816 A D) with a study of the life and work of the author and the tradition of Jnanamargi poets in old Gujarati literature *Suresh H Joshi*, Baroda, 1960, Ph D (G)

32 Meera, her life and work *N L Jhaveri*, Bombay, 1960, Ph D (G)

33 A critical study of old Gujarati Rasa form as determined from the specimens available between 12 th and 18th century A D *Bharati Medhu Kant Vaidya*, Bombay, 1960, Ph D (G)

34 The Development of literature of Nala and Damayanti with special reference to Gujarati literature *Ramanlal G Shah*, Bombay, 1960, Ph D (G)

35 Kevaladvaita in Gujarati Poetry *Y J Tripathi*, Baroda, 1952, Ph D (E) P

36. A critical Edition of Panchadandani Vartā in old Gujarati Prose (before v. s. 1738) with a comparative study of literary works on the same theme in Sanskrit and Gujarati : *Somabhai D. Parekh*, Baroda, 1961, Ph. D. (G).

37. Hindi Aur Gujarati Krishna Kavya ka Tulanātmak Adhyayan (15th, 16th, 17th centuries A. D.) : *Jagadish Gupta*, Prayāg, 1953, Ph. D. (H).